दूब जनम आयो

दूब जनम आयी

शिवसागर मिश्र





आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

DOOB JANAM AAI

a novel

by

Shiva Sagar Mishra

Rs 4 00

प्रकाशक

रामलाल पुरी, सचालक

आत्माराम एण्ड सस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	चार रुपए
प्रथम सस्करण		१ ९ ६ ०
आवरण	.	योगेन्द्र कुमार लल्ला
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

प्रकाशकीय

श्री शिवसागर मिश्र के नाम से हिन्दी का प्रत्येक प्रेमी परिचित है। 'दूब जनम आयी' उनका नवीनतम उपन्यास है। इस उपन्यास का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जो साधारण होते हुए भी महान् है, प्रेमी होते हुए भी सन्यासी है, चाकर होते हुए भी स्वाभिमानी है और दुनिया मे रहते हुए भी दुनिया से दूर है। लेकिन, 'दूब जनम आयी' एक व्यक्ति की ही नही, एक बदलती हुई व्यवस्था की भी कहानी है, स्वतन्त्रता के बाद के भारतीय ग्राम्य परिवर्तन, प्रत्यावर्तन और सामाजिक घात-प्रतिघात की कहानी।

स्वतन्त्रता का असर देहात पर भी पडा है। अभी तो समुद्र मन्थन हो रहा है। फेन, बुद्बुदे, विष, वारुणी, पहले यही सब निकलेगे। 'दूब जनम आयी' मे विष, वारुणी और फेन के साथ-साथ अखण्ड आस्था का प्रच्छन्न सन्देश भी है। सघर्ष, आसक्ति और परिस्थिति की प्रचण्ड लहरो मे भी आशा-दीप प्रज्ज्वलित रहता है, मानवोचित धर्म और मर्यादा की प्रतिष्ठा होती है।

उपन्यास के पात्र साधारण, सजीव और दिलचस्प है, कथानक विद्युन्मय है, घटनाएँ सहज और सजी हुई हैं, भाषा प्रवाहमय और शैली तादात्म्य-भाव स्थापित करने मे समर्थ।

शिवसागर मिश्र ने भारतीय ग्राम्य जीवन का वह दारुण चित्र प्रस्तुत किया है, जो यथार्थ होते हुए भी अनूठा और अज्ञात है और इसे जानना-समझना उतना ही आवश्यक है जितना आवश्यक भोजन-पानी। कारण—देश की समृद्धि, प्रगति और विकास इन्ही ग्राम्य देवताओ पर निर्भर करते है।

यह उपन्यास 'नवभारत टाइम्स' मे प्रकाशित हो चुका है और हमे खुशी है कि पाठको ने इसका अभूतपूर्व स्वागत किया। इस उपन्यास के सम्बन्ध मे देश के विभिन्न भागो से आने वाले पत्र लेखक की सफलता को सिद्ध करते है।

दो शब्द

परिवर्तन का परिणाम प्राय कल्याणकारी ही होता है। स्वतन्त्रता के उपरान्त, देश मे बडे-बडे परिवर्तन हुए और हो रहे है। जमीदारी खत्म हो गई, लाल पगडी का भय जाता रहा, समता के भाव जागृत हो उठे, अधिकार की चेतना मचलने लगी और कल-कारखाने, बॉध, जलाशय आदि का निर्माण होने लगा।

किन्तु, विरोधाभास देखिए—

आज, विकेन्द्रीकरण के युग मे भी कुछ स्थान, कुछ व्यक्ति और कुछ विचार ही गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र बनकर रह गये है।

लोग वे ही है, दृष्टिकोण ज्यो-का-त्यो है, सस्कार अपनी जिद पर अडा है। रग बदल गया, ढग वही है। नीति बदल गयी, रीति वही है।

प्रगति का रथ अभी सामने से गुजर ही रहा है। धूल के बगूले उठ रहे है। कुछ दिखायी नही देता। फिर कैसे कहा जाय कि रथ परम है या उत्तम। कैसे देखा जाय कि रथ-चक्र, ईषादड, अक्ष, युग, कूबर-आदि की लकडी गॉठ रहित है या पक्की, ठोस और गाभे की।

तथ्य के नाम पर धूल, गुबारे, बगूले हमारे-आपके सामने है। ढग, रीति, सस्कार और दृष्टिकोण से सत्य परिलक्षित हो रहा है।

किन्तु, निराश होने की जरूरत नही है। सघर्ष, उत्पीडन और परिवर्तन ही विकासशील जीवन का उद्गम-स्थल है।

दूब को हमारे यहाँ बडा ही पवित्र और अक्षर माना गया है। कारण—सदा पैरो तले रौदी जाने पर भी शस्य-श्यामल बनी रहती है। गीली जमीन हो या चट्टान की छाती, दीवार हो या दरार—जहॉ मौका मिला—जीवनदायिनी आशा का सदेश लेकर उद्भासित हो उठती है। इसे न आँधी का डर, न तूफान का भय!

प्रस्तुत पुस्तक मे, मैने, उपरोक्त विचारो को गॉव की पृष्ठ-भूमि मे

स्वरूप प्रदान करने की धृष्टता की है। गाॅव का आर्थिक ढाॅचा छिन्न-भिन्न हो चुका है। वहाॅ की पुरानी सामाजिक मान्यताऐ 'अण्डरग्राउण्ड' होकर अत्यधिक घातक बन उठी है। किन्तु, हम शहर वाले, अपनी रगीनी मे डूबे हुए, विकासशील सरल और स्वच्छ गाँव का काल्पनिक स्वरूप देख रहे है। कदाचित्, पूरी पुस्तक पढकर आप भी मुझसे सहमत हो जायें कि वास्तविकता कुछ और है, जरूरत कुछ और है। पहले ही इतनी देर हो चुकी हे कि शहर से गाँव आने वाली राह पर दूब जनम आयी हे।

नई दिल्ली,
शिवरात्रि, १९६०

—*शिवसागर मिश्र*

प्रमुख पात्र

जगनारायण (जग्गू)	:	सुलझे हुए मस्तिष्क का निर्भय, उदार और संवेदनशील आदमी, दुनिया और दुनियाबी बातो से अलग-थलग रहकर तीस-बत्तीस वर्षों तक निहग का जीवनयापन करता है, बाप से, विरासत मे, नाममात्र की ज़मीन और रेलवे-गुमटी पर चाकरी मिलती है, रेल की पटरी जैसी नीरस और अछोर जिन्दगी जीता चला जाता है कि प्रौढावस्था के द्वार पर पहुँचते ही अचानक भयकर भूचाल जैसी घटनाएँ घटित होकर उसके अस्तित्व को झकझोर डालती है, प्रेम और प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो उठती है, जीवन का क्रम बदल जाता है, दुनिया किंचित् रगीन हो उठती है, क्रूरता, कुरूपता और कर्कशता मुखरित हो उठती है, किन्तु, जग्गू जिस ईमानदारी के धरातल पर खडा है वहाँ विफलताओ के झाड-झखाड उगे हुए है अतएव
बिसेसरसिंह	:	क्रूरता के अवतार है किन्तु, मुखमडल पर करुणा का सागर उमडता होता है, उनकी नसो मे रक्त की जगह गरल प्रवाहित होता है किन्तु, जबान से अमृत की धार बरसती होती है, ज़मीदारी छिन जाने से चोट खाए साँप की तरह ऐंठ उठते है किन्तु, उनकी ऐंठन की मोहकता देखने वालो के मन मे उदारता का भ्रम उत्पन्न कर देती है। बिसेसरसिह समर्थ है, सजग है, सफल है, किन्तु पतित है। रुपये की भूख

उन्हे रेल के डिब्बे काटने की प्रेरणा देती है और तब

राघव : देहाती नेता है जो हमेशा ही अपने दुर्बल कन्धो पर देश के उद्धार की चिन्ता उठाये फिरता है, अनपढ है किन्तु, उसका चलना-फिरना, उठना-बैठना, सोचना-समझना—सब कुछ भाषण-शैली मे ही सम्पन्न होता है। अपनी आदतो के चलते वह बिसेसरसिंह से जा टकराता है। नतीजा यह होता है कि बेचारा

मुनिदेव : जग्गू का बचपन का साथी, व्यवहारकुशल किन्तु, गरीब दर्जी, दुख को दिनचर्या का अभिन्न अग समझकर अपने काम मे डूबा रहता है, समय को पहचानता है; दर्द महसूस करता है किन्तु, असमर्थ होने के कारण

रामपाल : पढा-लिखा ईमानदार अफसर, लगन के साथ काम शुरू करता है, आरोप-प्रत्यारोप के जाल मे फँसकर धीरज बनाये रखता है किन्तु, जिस 'भारत' मे द्रोणाचार्य जैसे शत्रु हो वहाँ, युधिष्ठिर का ईमान भी डोल जाता है। बिसेसरसिंह के जाल मे पडकर रामपाल की ईमानदारी और उत्साह

अनुराधा : विधवा, त्याग, प्रेम और धीरज की साक्षात् प्रतिमा, ससार-सागर की उद्दाम लहरो पर भटकने वाली परवश तिनका। बेचारी, प्रेम की सहज धारा मे बह जाती है, जग्गू को वह बचपन से देखती आयी है—जन्म-जन्मान्तर से देखती आयी है किन्तु, उँगलियो और भवो के बीच से गुजरने वाली विधवा को सिर झुकाकर चलना होता है अन्यथा

: पढी-लिखी, सजग-चचल होकर भी भोली-भाली तरुणी, ससार को भी सरल-स्वच्छ समझती है, भानुप्रताप सरीखे ग्रहकारी, धूर्त्त ग्रौर निकम्मे नौ-जवान के चक्कर मे पड़कर, माँ-बाप के घर से निकल भागती है। ग्रजाम वही होता है जो

१

रात के सन्नाटे मे, रेलवे लाइन के दोनो ओर घनीभूत अधकार, अपनी व्यापकता के अहकार मे जडीभूत हो रहा था। अभी-अभी ढाई बजे की गाडी पास हुई थी।

सुबह जो मेह बरसना शुरू हुआ, सो दो घटे हुए, थमा था। अजीब समा था—साँप की आँखो जैसा मोहक, सन्नाटे को मुखरित करती हुई मेढकों की टर्र-टो-टर्र-टो, दूर पर बाढ की जवानी मे चूर बूढी गडक की हरहराहट, छपाक से पानी मे गिरते-धँसते कँगार, पास ही मे—ऊपर, घने वट-वृक्ष के पत्तों में लुक-छिप करती हुई शैतान की आँखो जैसी सिगनल की दो लाल-लाल बत्तियाँ, और कभी-कभी, अधकार को शत-सहस्र खडो मे छिन्न-भिन्न करती हुई क्रुद्ध बिजली की कौध, वातावरण मे नमी, शरीर को नमक की तरह गला देनेवाली ऊमस और सबसे बीभत्स बात यह कि जग्गू को यह सब देखना-सुनना पड रहा था। अभी पूरब जानेवाली मालगाडी पास होने को थी। बीस साल से वह इस गुमटी पर नौकर था। लाइन के दोनो ओर फाटक लगा देना और गाडी पास होने पर फाटक खोल देना—बस यही काम वह बीस साल से करता चला आ रहा था। कभी कोई चूक नही हुई, कभी कोई स्वर्ग नही उतरा—बस एक जैसा सीधा-सादा जीवन चलता रहा, जैसे पूरब मे सूरज का उगना, पश्चिम मे डूब जाना।

जग्गू गौर से सिगनल की बत्तियो को देख रहा था। पहले उसका बाप इसी गुमटी पर नौकर था। जग्गू जब छोटा था, बडे कौतूहल से इन बत्तियो को देखा करता। रात के अधेरे मे लाल बत्तियाँ अजीब लगती—भयानक! डरावनी!! और वह चाह कर भी आँखे नही बन्द कर पाता। भय से उसके रोगटे खडे हो जाते, देह सिहर उठती, फिर भी वह देखता ही रहता। उसे

लगता जैसे उसने देखना बद करके सिर घुमाया नही कि शैतान की लाल लाल आँखे उसके सिर के पीछे चुभी नही। ये बचपन के टूटे-बिखरे अनुभव थे। अब वह प्रौढ था। बत्तीस-तैतीस साल का हट्टा-कट्टा स्वस्थ गेहुएँ रग का खूबसूरत निर्भय आदमी। डर उससे कोसो दूर, भ्रम, शका और बेईमानी की माया से परे, वह अकेला ही गुमटी मे जीवन व्यतीत कर रहा था—जीवन को बिना समझे, वृत्तियो को बिना अनुभव किये, अनुराग-विराग की अनुभूति से अछूता।

शैतान की एक आँख हरी हो गयी। दूर पर कुत्ते भूँकने लगे, हवा ज़रा तेज बहने लगी। ऊमस का पर्दा किंचित् लहरा उठा। बिजली कौधी तो जग्गू ने देखा—आकाश के जमे बादल फट चले थे। वह खाट पर उठकर बैठ गया। फेंट से सुर्त्ती निकालकर बाये हाथ की हथेली पर सँजोने लगा। पास ही के गाँव देसौरा मे चौकीदार की ललकार अधकार से टकरा उठी—जागले रहिह हो ऽऽऽऽऽ ! और जग्गू ने सुर्त्ती मलकर चुटकी से होठो मे दबा लिया। चारो ओर पूर्ववत सन्नाटा छाया रहा ! उसने सडक पर के फाटक बन्द किये क्योकि पश्चिम मे इजन की रोशनी चमक उठी थी।

जग्गू जब पाँच साल का था, उसकी माँ मर गयी और जब वह उम्र की बारहवी सीढी पर पहुँचा, उसके पिता भी चल बसे। दोमजिले मकान मे रहनेवाला आदमी, रोज ही सीढियाँ चढने से नवीनता के आनन्द का अनुभव नही करता। जग्गू एक जगह रहता हुआ, एक तरह का जीवन-यापन करता हुआ तेरह वर्ष का हो गया लेकिन उसके मन मे किसी नवीनता के लिए न तो कभी आनन्द जगा और न सदा-सर्वदा से गडी हुई रेल की पटरी की प्राचीनता के लिए दु ख। जीवन मे उसने एक ही स्वप्न देखा था। उसके घर के पास ही गुरुजी का घर था। गुरुजी की लडकी अनुराधा बहुत ही चचल, नटखट और खूबसूरत थी। वह जग्गू को देखते ही ताली बजा-बजाकर चिल्ला उठती—'पहलवान !' और जग्गू उसे पकडने दौडता, कभी-कभी पकडकर पीट भी देता। अनुराधा रोती हुई भाग जाती। लेकिन फिर दूसरे दिन ही वह उछलती-कूदती आ धमकती। जग्गू खुश हो जाता। बस,

सरसता के नाम पर यही एक अध्याय उसके जीवन मे 'ओयसिस' की तरह झलमला उठता। शेष सब निस्सार था! फीका था!

जग्गू के पिता महीनो बीमार रहे। जग्गू उसकी देखभाल भी करता और गाडी पास होते समय, हरी झडी खोलकर बन्द फाटक के आगे खडा होकर ड्यूटी भी बजाया करता। खट्-खटाक, खट्-खटाक-खट् करती हर-हराती हुई गाडी पास हो जाती। जग्गू झडी लपेटकर गुमटी के मोखे मे खोस देता और फिर अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा मे जुट जाता। और इस तरह महीनो बाद, जग्गू का पिता बीमारी से अच्छा होते-होते मौत की गोद मे जा गिरा। जग्गू आवाक्, किंकर्त्तव्यविमूढ-सा देखता रह गया। गाँववाले आये। जग्गू ने बिना कुछ सोचे-समझे, चुपचाप, सब काम किया। वह जाति का भूमिहार था। उसका पूरा नाम था जगनारायण चौधरी। इसलिए पुरोहितो, सम्बन्धियो और समाज की खातिरदारी मे उसे पिता की सारी अर्जित पूँजी लगा देनी पडी, यहाँ तक कि ऊपर से पाँच सौ रुपये का कर्ज भी चढ गया। इज्जत बचाने की ही बात नही थी, पिता को अतिम सम्मान देने की विषादपूर्ण इच्छा भी जग्गू मे जागृत हो चुकी थी।

जग्गू ने चुपचाप सभी सामाजिक नियमो-उपनियमो का पालन किया, दान-दक्षिणा दी, सम्बन्धियो को सामर्थ्य भर धन-वस्त्र देकर विदा किया और जब सब शेष हो गया, जग्गू भी अपने खपरैल घर को सदा के लिए प्रणाम कर गुमटी मे आकर रहने लगा। तब से, अपने घर मे रहने के ख्याल से वह लौट कर कभी नही गया। हाँ, हर दीवाली को वह अपना घर साफ करता, रात मे वहाँ दिये जलाता और नौ बजे की गाडी पास करने के समय, घर मे ताला लगाकर, गुमटी पर चला जाता। उसके घर के तीन ओर उसकी जमीन थी—कुल साढे तीन बीघा। सो अपनी मेहनत के बल पर, उसने एक साल मे ही, जमीन की उपज से पाँच सौ का कर्ज सधा दिया। और तब से वह बेफिक्री की जिन्दगी बिताता हुआ, जी रहा था। गाँववालो ने जग्गू को विवाह के बन्धन मे बाँधने की काफी कोशिश की। कुछ दिन तक लडकी वाले भी उसे परेशान करते रहे, लेकिन जग्गू की चुप्पी और दृढता के सामने

सभी हार मान गये और जग्गू अपनी जिन्दगी जीता रहा। जिन्दगी—रेल की पटरी जैसी नीरस, रूपहीन, पुरातन और अछोर!

पश्चिम की ओर रुख किये जग्गू खडा था। लगभग पाँच मिनट से मालगाडी के इजिन की रोशनी ज्यो क़ी त्यो दीख रही थी। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि मालगाडी खडी क्यो है। जग्गू कुछ तय नही कर पा रहा था। वह एक टक इजिन की रोशनी को देख रहा था कि पीछे से खटका हुआ। उसने घूमकर देखा—करीब पच्चीस कदम की दूरी पर दो मानव मूर्त्तियाँ चली आ रही थी। जग्गू को अन्धकार मे कुछ स्पष्ट दिखाई नही पडा कि सयोगवश गहरी बिजली चमक उठी। जग्गू ने देखा—आगन्तुको मे एक पुरुष और दूसरी नारी थी। दोनो मूर्त्तियाँ जग्गू के पास आकर रुक गयीं। पुरुष ने, थोडा हकलाते हुए, अशुद्ध हिन्दी मे पूछा—"यहाँ एक-दो रात ठहरने के लिए कही जगह मिलेगी?"

नारी अलग खडी थी। जग्गू ने अन्धकार मे उसे देखने की कोशिश की। लेकिन उसके हाथ कुछ लगा नही। उसने नम्रता से पूछा—

"आप लोग कहाँ के रहनेवाले हैं?"

"राजस्थान के।" पुरुष का सक्षिप्त उत्तर था।

"देखिए, पास ही मे बिसेसरसिंह का घर है। उन्ही के दालान पर चले जाइए। बहुत अच्छे आदमी हैं।"

"लेकिन, इतनी रात को हम लोग उसको कहाँ मिलेगा? यहीं इस गुमटी मे रात भर रहने दीजिये तो बडी मेहरबानी होगी।" पुरुष ने बड़ी दीनता से कहा। दूर पर वह स्त्री सिर नीचा किये खडी थी। जग्गू ने ज़रा सोचते हुए कहा, "गुमटी मे? यहाँ तो बहुत कम जगह है।" जग्गू ने ज़मीन की तरफ देखा और फिर वह अचानक ही बोल उठा—"अच्छा, मेरे साथ आइये।" यह कहकर जग्गू गुमटी के भीतर से सरकारी हाथबत्ती उठा लाया जिसकी एक तरफ से ही गोल मद्धिम रोशनी निकलती थी और अपने घर की ओर चल पडा। दोनो आगन्तुक उसके पीछे हो लिये। चार-पाँच मिनट मे ही जग्गू अपने घर पहुँच गया। फेंट से उसने चाभी निकाली, दर-

वाजा खोला और आगन्तुको को राह दिखाते हुए कहा—"जरा बच कर आइएगा, बरामदे का छप्पर नीचा है—हाँ, ठीक है—नीचे उतर जाइए। यह रही कोठरी ।" नारी बरामदे पर ही खडी थी। जग्गू ने पुरुष से सरल भाव से पूछा—

"वे ···आपकी पत्नी है?"

"जी नही, मै उनका नौकर हूँ।"

जग्गू क्षण भर कौतूहल और सम्मान से चुप रह गया। अपनी भूल सुधारने के ख्याल से उसने जल्दी से कहा—

"तो इन्हे इस कोठरी मे ठहरा दीजिए और आप बाहर बरामदे की कोठरी मे सो जाइए या चौकी निकाल कर उसी पर लेट जाइए। यह बत्ती मै यही छोडे जाता हूँ।" और जग्गू जल्दी-जल्दी कदम धरता हुआ घर से बाहर हो गया। गुमटी पर पहुँचकर वह अपनी मूँज की खाट पर सोना ही चाहता था कि उसे मालगाडी का ध्यान आया और वह हडबडाकर उठ खडा हुआ। इजिन की रोशनी बुझ चुकी थी लेकिन मालगाडी अब भी जहाँ की तहाँ खडी थी। जग्गू की बेचैनी बढने लगी। उसके दिमाग मे आज पहली बार कौतूहल, परेशानी, कोमलता, आशका आदि भाव जगे। वह वही चक्कर लगाने लगा। गहन अन्धकार को भेदती हुई, इजिन की सूँ-सूँ की हलकी आवाज जग्गू के मन मे आशकाओ का तूफान उठा रही थी। लाइन के साथ-साथ कच्ची सडक जाती थी और वह इसी गुमटी से रेलवे लाइन को पार कर गाँव से गुजरती थी। जग्गू को ट्रक की हडहडाहट सुनायी पडी। लेकिन कही कोई रोशनी नही थी। इसलिए उसे अपने कान पर भ्रम हुआ। हड-हडाहट की आवाज धीरे-धीरे निकट आती गयी—स्पष्ट होती गयी। जग्गू उस ओर गहरे अन्धकार मे देखता रहा। आवाज बिल्कुल निकट, गुमटी के पास आ पहुँची। जग्गू ने देखा कि ट्रको की एक लम्बी कतार गुमटी पर खडी थी। अगले ट्रक से आवाज आयी—

"जग्गू भाई, जरा फाटक खोल देना।"

"अरे बिसेसरबाबू!" जग्गू कौतूहल से चौक उठा।

"हाँ, मै हूँ बिसेसर। ज़रा जल्दी फाटक खोल दो।"

"लेकिन बिसेसर बाबू, अभी तो मालगाडी आ रही है। आइए, थोडी देर मेरी खाट पर बैठकर आराम कीजिए।" जग्गू पास आकर ट्रको की ओर देखता हुआ बोला—"कहाँ से आ रहे है ?"

"शैदपुर हाट गया था। आजकल मैने गल्ले का व्यापार शुरू किया है। बहुत थक गया हूँ। घर जाकर ही आराम करूँगा। फाटक खोल दो न। अभी तो मालगाडी टस से मस होती भी दिखाई नही देती।"

जग्गू ने सोचा—"ठीक ही तो। मालगाडी कब से खडी है और न जाने कब तक खडी रहेगी। बिसेसर बाबू गाँव के मुखिया हैं, बुजुर्ग हैं, सबसे धनी और समाजसेवी है, इनका अनुरोध टालना अच्छा नही। उसने फाटक खोलते हुए कहा—"देखो भाई, एक-एक करके ट्रक बढाओ।" गाडी पास होने लगी—एक, दो, तीन, चार और अन्त मे स्वय बिसेसर बाबू। जग्गू ने फिर फाटक लगा दिये। कुछ देर तक वह ट्रको का जाना देखता रहा और कुछ सोचता रहा, फिर न जाने क्या बुदबुदाता हुआ अपनी खाट पर बैठ गया। उसकी आँखों की नीद उड चुकी थी। वह सोचने लगा—'ये राजस्थानी आगन्तुक ··यह मालगाडी ··ये ट्रक ··बिसेसर बाबू · यह सब क्या हो रहा है आज ? गाँव के कुछ बदमाश ईर्ष्यालु लोग दबी जुबान से कहा करते कि बिसेसर बाबू डकैती करवाते है, तभी तो उनके पास हजारो रुपये है, इतने सुन्दर और ईट के मकान और दालान है ।"

"सुनना जग्गू भाई !" बिसेसरसिंह की पुकार सुनकर जग्गू चौक उठा। पास गया तो बिसेसरसिह ने कहा—

"गाँव मे या किसी बाहरी आदमी से इन गल्लो की चर्चा मत करना। लोग मुझसे बहुत जलते है। इसीलिए मै, छिपकर, चुपचाप व्यापार करता हूँ। और भी कई बाते है जो कल इत्मीनान से बताऊँगा। समझे ?"

"अच्छी बात है।"

"तो वचन देते हो ? यही पूछने मै वापस आया हूँ।"

"हाँ, हाँ, आप जाकर आराम कीजिए।" जग्गू ने तपाक से अनजाने

ही कह दिया। 'बिसेसर बाबू जैसे जमीदार ने आज उससे पहली बार अनुरोध किया है, उससे इस तरह सगा होकर बात की है।' इस उत्साह से जग्गू अपने अस्तित्व के प्रति चेतन हो उठा। बिसेसरसिह ने निर्लिप्त भाव से इजिन की रोशनी की ओर देखते हुए कहा—

"माल गाडी अब तक खडी है। मालूम पडता है बिल्कुल निकट है।" बिसेसरसिंह, टॉर्च जलाकर, कुछ देर तक इजिन और गुमटी के बीच की दूरी नापने का उपक्रम करते रहे और फिर अचानक ही बोल उठे—

"अच्छा, अब चलता हूँ जग्गू भाई। कल मिलूँगा।" बिसेसरसिह तेज रफ्तार मे गॉव की ओर न जाकर स्टेशन की ओर चल दिये। क्षण भर बाद ही मालगाडी के इजिन ने सीटी दी और उसकी रोशनी से पानी मे भीगी हुई रेल की पटरी चमक उठी, अन्धकार के बीच रोशनी की राह निकल आई। पूरब मे आकाश खुलने लगा। दूर पर वृक्षो की ऊँची-नीची कतार अस्पष्ट हो उठी। शैतान की ऑखे मद्धिम पड गयी।

२

"किसी चीज की जरूरत है ?" जग्गू ने बरामदे पर खडे होकर आगन्तुक नारी के नौकर से ऊँची आवाज मे पूछा। नौकर आँगन के उस पार सामने वाले बरामदे पर झाडू दे रहा था। वह कुछ बोले तब तक नारी स्वय कोठरी से बाहर निकल आई और बहुत ही सकोच से बोली—

"डाक-घर कहाँ है ?"

जग्गू ने देखा—श्याम-वर्ण, दुबली-पतली, लम्बी, सुगढ, कोमल देह, बडी-बडी आँखे, चेहरे पर स्निग्धता, भोलापन और अपरिमेय आकर्षण, नारी युवती थी—लगभग बीस-बाईस साल की। जग्गू का निश्छल, निर्विकार मन, शायद पहली बार, किसी पीडा से तडप उठा कि वही पूर्ववत मधुर स्वर फिर गूँज उठा—

"नही है ?" युवती के स्वर मे वेदना और बेचैनी थी। जग्गू ने झेंपते हुए सूखे कठ से कहा—

"हाँ, हाँ, है क्यो नही। लाइए, दीजिए चिट्ठी, मै छोड आता हूँ।" युवती चचल चरणो से कोठरी मे गयी और चिट्ठी लाकर देती हुई बोली—

"एक्सप्रेस कर दीजिएगा। अच्छा ?" और जग्गू के हाथ मे दस रुपये का एक नोट रख दिया।

"अच्छी बात है।" जग्गू जाने लगा कि उसे कुछ ध्यान आया। रुककर उसने नौकर से कहा—

"यही सामने दाये हाथ जो सडक जाती है, उसी पर आगे बट-वृक्ष के नीचे रामू साह की दुकान है। वहाँ सब सामान मिल जायेगा।" और तब जग्गू घर से बाहर निकल आया।

डाक घर वहाँ से पौन मील दूर था—रेलवे स्टेशन से लगभग सौ गज

की दूरी पर, छोटे से बाजार के बीचोबीच। बाजार क्या था—स्टेशन से आनेवाली सडक के दोनो ओर फूस की दस-पन्द्रह छोटी-छोटी पुरानी झोपडियाँ, पाँच-छ खपरैल-मकान—बेतरतीब ढग से बने हुए आगे-पीछे, छोटे-बडे। सेठ मँहगीराम बुलाकीमल की आलीशान इमारत, बेशक, इस बात को सिद्ध कर रही थी, 'निकालनेवाले बालू से भी तेल निकाल लेते हैं।' आस-पास के इलाके मे ऐसी शानदार इमारत कही नही थी। बाबू बिसेसरसिह की हवेली भी इसके सामने फीकी थी। लेकिन बिसेसरसिंह तो दूर, यदि इलाके का कोई मामूली किसान भी सेठ बुलाकीमल की दुकान पर आ जाता तो सेठ हाथ जोडकर खडा हो जाता—बहुत ही दीन मुद्रा मे। बिसेसरसिह कहा करते—'सारे सेठ ने दाँत निपोड के इलाके को लूट लिया।' बिसेसरसिह के इस कथन के पीछे भाव जो हो लेकिन, यह एक तथ्य था कि सेठ बुलाकीमल का बाप सेठ मँहगीराम एक लोटा और फटी हुई मिरजई पहनकर वहाँ आया था और सबो को देखते-देखते उसने चन्द थान कपडे की दुकान को हजारो गाँठ कपडे और हजारो मन गल्ले की दुकान मे बदल दिया।

जग्गू रेलवे लाइन पकडकर चला था। सो उसे रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही फौजा खलासी मिल गया। झुर्रीदार चेहरे पर सुफेद डाढी की बड़ी-बडी खूटियाँ निकली हुई, सिर मे गन्दा घिनौना अँगोछा बँधा हुआ, नगी देह मे थोडा उभरा हुआ बेडौल-पेट, हड्डियो से भरी चौडी धसी हुई छाती, मोटे-मोटे काले ओठो पर खिचडी-मूँछ, लबी काली बाहे जिनकी मास पेशियाँ श्रम गठित किन्तु ढलती उम्र और अभाव के सकेत मे झूलती हुई—यह था फौजदार महतो जो, प्लेटफार्म के किनारे अपने दोनो पाँव नीचे लटकाये, सुर्ती मल रहा था। जग्गू को देखते ही बोल उठा—

"आओ, जग्गू बाबू! कहाँ चले?"

"यही डाक-घर तक जा रहा हूँ।" जग्गू ने चँगुल पर बैठते हुए कहा—"कल रात भर सो नही पाया सो मन कैसा न कैसा हो रहा है।"

"अच्छा तो डाकदर के यहाँ जा रहे हो?"

"अरे नही फौजा, डाकदर के यहाँ नही, डाक-घर जा रहा हूँ—चिट्ठी डालने।" जग्गू ने किंचित मुस्कराते हुए कहा।

प्लेटफार्म पर लगभग सूनापन ही था। बीच में, स्टेशन के सामने आम की सैकडो टोकरियो का अम्बार लगा था और उसी के पास दो आदमी बैठे बाते कर रहे थे। प्लेटफार्म के दूसरे छोर पर, एक अधनगा भिखमगा सोया हुआ था। स्टेशन प्लेटफार्म के सामने, लाइनो के उस पार, मालगोदाम था—टीन के शेड का और उसके दोनो ओर काफी ऊँचा प्लेटफार्म था, जिस पर, जहाँ-तहाँ बहुत सी चीजे रखी हुई थी जैसे लकडी की सिल्लियाँ, पाल से ढकी हुई कुछ गाँठे और टीन के शेड मे भरे हुए बोरो के छोटे-बडे अम्बार। माल गोदाम की बायी ओर तीन वैगन खडे थे। फौजदार ने लाइन पर थूक फेकते हुए कहा—

"जुलुम हो रहा है। अब तो चलती गाडी रोककर लोग-बाग डाका डालने लगे है। कल रात मालगाडी का एक पूरा डब्बा कट गया। और वह सारा अनाज मधुबनी जा रहा था—सरकार की ओर से गरीब लोगो को मुफ्त बाँटने के लिए। वहाँ भी कमला मइया ने पापियो के अत्याचार से बिगडकर हजारो घर बहा दिया है, सैकडो-हजारो बीघा जमीन अपने पेट मे रख लिया। परलय मचा दिया है, परलय!!"

"किस मालगाडी का?" जग्गू चौंक उठा।

"अरे चौंकते क्या हो? यह कोई नयी बात तो है नही। यह इलाका तो डाकुओ का अड्डा बन गया है। अच्छे-अच्छे बाबू भइया अब चोरी-छिनाली करने लगे है।" अन्तिम वाक्य फौजा ने फुसफुसाहट के स्वर मे कहा।

"रात तो मेरी गुमटी से कुछ दूर पर पूरब जानेवाली मालगाडी भी बहुत देर तक खडी थी।" जग्गू ने फौजदार के करीब सरकते हुए धीमी आवाज मे कहा। फौजदार जग्गू की तरफ तिरछे देखकर ऐसे हँसा जैसे यह सब होना ही था। उसकी हँसी के तीन बार हूँ-हूँ की ध्वनि निकली और फिर वह उसी विश्वास भाव से बोला—"उसी मालगाडी की तो बात कर रहा हूँ। ढाई सौ चावल के बोरे काटकर गिरा दिये। आधा घंटे से ऊपर मालगाड़ी खडी

रही और लूट चलती रही। और जानते है जगनरायन बाबू, इजिन का सरवा डराइवर भी डाकुओ से मिला हुआ था। भला बताओ तो, लाइन पर लाल बत्ती देखकर उसे गाडी रोकने की क्या जरूरत थी और जब ट्रक पर बोरे लादकर, डाकू काफी दूर निकल गए तब जाकर उसने गाडी चलायी।"

"क्यो ?" जग्गू कुछ सोचने समझने का प्रयत्न करता हुआ बोला।

"अरे डराइवर तो कहता है कि दो आदमी बनूँक लेकर उसे घेरे रहे और जब बहुत दूर से टारच जलाकर डाकुओ के सरदार ने सिगनल दिया तब दोनो आदमी उसे छोडकर धान के खेत मे भाग गये।" फौजा एक चुटकी सुरती जग्गू को देता हुआ मुँह बिचका कर बोलता रहा—"लेकिन मुझे उस साले किरस्तान डराइवर पर बिसवास नही है। पुलिस ने उसे तो हवालात मे ठूस ही दिया। अब आगे देखे—किसकी बारी है।"

जग्गू को सारी बाते समझते देर नही लगी। रात की सारी घटना उसकी आँखो के सामने तैर गयी। बिसेसर बाबू के उस वाक्य का अर्थ और उद्देश्य भी जग्गू के सामने स्पष्ट हो गया कि क्यो उन्होने दुबारा लौटकर कहा था 'गाँव मे या किसी बाहरी आदमी से इन गल्लो की चर्चा मत करना' और अन्त मे उन्होने टार्च जलाकर चार-पाँच बार इंजिन की ओर रोशनी फेंक-कर, टार्च वाला अपना हाथ भी हिलाया था। जग्गू वहाँ से चुपचाप उठ गया और स्टेशन से बाहर जाने के एक मात्र द्वार द्वारा बाहर निकला।

सामने बाजार था। काफी भीड-भाड थी। इलाके मे भयकर बाढ आई हुई थी। सैकडों गाँव जलमग्न हो गये थे। बूढी गडक जवानी के उन्माद को भी मात कर रही थी। रेलवे स्टेशन से काफी ऊँची पक्की सडक मदनपुर तक जाती है। बहुत पहले वहाँ एक निलहा अँग्रेज की कोठी थी। वह नील का व्यापार करता था। इतना रौब था उसका कि उसके अत्याचार की सैकडो कहानियाँ आज भी लोग घृणा और कौतूहल से कहते-सुनते पाये जाते है। घर बह जाने के कारण हजारो गरीब लोग उस पक्की सडक पर शरण लिये हुए थें। बाजार मे तो किसी को नही ठहरने दिया गया लेकिन बाजार खत्म होते ही सडक के दोनो ओर टाट, गुदडी या फटे कम्बल की दयनीय

छतो की कतार लगी हुई थी। बहुत छोटे-छोटे गन्दे अधनगे बच्चे, विकृत चेहरे, बीभत्स पेट, सूखी टाँगे, आँखो मे कीच और बालो मे दुनिया जहान का मैल इकट्ठा किये, बाजार मे चक्कर काट रहे थे या किसी हलवाई की दुकान पर, खाना खाते हुए पसिजर को ललचाई नजरो से टुकुर-टुकुर देख रहे थे। गरीब, अधनगी औरतें—बूढी-जवान, खूबसूरत-बदसूरत, खीसे निपोडकर, रोकर, गिडगिडाकर आने-जानेवालो और दुकानदारो के सामने अपनी हथेलियो की अजलि बनाकर मुँह के पास ले जाती, बोलती कुछ नही। देनेवाले डपट देते जैसे जबरदस्त कुत्ता कमजोर पिल्ले पर गुर्रा उठता है, कोई पैसा-दो पैसा दे देता तो भिखमगो की भीड उमड पडती जैसे यात्रियो पर वैद्यनाथ धाम के पडे या जैसे स्टेशन से बाहर निकलते ही पसिजरो पर तागे-फिटिनवाले। बेचारे अधकचडे सिनेमा प्रेमी बुभुक्षित नव-जवान जिन्हे शहर की बाहरी तडक-भडक ने दबोच रखा है, जो न गाँव मे खप पाये न शहर के हो पाये—अपने कुत्सित विचारो की अभिव्यक्ति का अनुपम अवसर समझते जब कोई जवान औरत भीख माँगती हुई उनके पास आती या सामने से गुजरती।

आकाश बादलो से अँटा था। पेड-पौधे स्थिर थे। मौसम मे तीव्र ऊमस भरी हुई थी। हलवाइयो की दुकानो से तेल-घी की कडवी गध निकल कर वातावरण मे घुटन पैदा कर रही थी। जग्गू की नजर से सारी चीजे गुजर रही थी, मौसम और वातावरण का भी भास उसे मिल रहा था। फौजा खलासी ने उसे जो कुछ सुनाया था, बिसेसरसिह ने उसे जो सावधान किया था, वह नारी जो अचानक ही उसके यहाँ आ पहुँची थी आदि सभी कुछ जग्गू के मस्तिष्क मे एक साथ एक दूसरे से उलझकर एक अजीब शोर उत्पन्न कर रहे थे—जिस शोर की ध्वनि से तो वह अवगत था लेकिन जिसका अर्थ और उद्देश्य वह समझ नही पा रहा था। कल्लू हलवाई की दुकान के आगे बहुत कौए काव-काव कर रहे थे।

जग्गू ने अट्ठाईस पैसे का टिकट खरीदकर लिफाफे पर चिपकाया और उसे लेटर-बॉक्स के हवाले किया। वह जल्दी से जल्दी गुमटी पर पहुँच जाना

चाहता था ताकि एकान्त मे बैठकर सारी बातो को समझने का प्रयत्न कर सके। इसलिए, वह सब कुछ अनदेखी-अनसुनी करता हुआ बाजार से गुजर रहा था कि किसी भर्रायी-फटी आवाज पर उसके पैर रुक गये। देखा मुनिदेव की दुकान पर पल्थी मारे राघव बैठा था और वही से आवाज दे रहा था—

"अरे जगनारायण बाबू! जरा इस अपने शेवक की बात तो सुनते जाइए।" शुद्ध बोलने की कोशिश मे गँवार नेता 'स' 'श' और स्त्रीलिंग, पुल्लिग का निर्णय अपनी इच्छा से कर लेता। जग्गू इस व्यक्ति से हमेशा कतराने की कोशिश मे रहता। राघव नाटे कद का, गठीला जवान था। पेशा के नाम पर वह कभी पत्रकार बन जाता तो कभी सी० आई० डी०, कभी सोशलिस्ट तो कभी जनसघी और कभी हलवाई यूनियन का सभापति तो कभी रिक्शा-यूनियन का मत्री। वह गूढ जीवी होते हुए भी बेजोड था। न तो उसे खाने की सुधि रहती न सोने की चिता। वह जुबान से मुँहफट, दिल से उदार, बुद्धि से कोसो दूर और शरीर से परिश्रमी था। स्टेशन के तथा कथित बडे लोगो ने कई बार उसे भगाने की कोशिश की, उसे बुरी तरह मारा-पीटा, बेइज्जत किया लेकिन वाहरे राघव! जमा रहा हमेशा अखाडे मे। जग्गू उसकी आवाज सुनकर रुक गया।

"जरा इधर तशरीफ लाइए, हुजूर।" राघव ने अपने भद्दे काले दाँत दिखाते हुए जोर से कहा। जग्गू, निकल भागने का कोई रास्ता न पाकर मुनिदेव की दुकान पर आकर खडा हो गया और अनासक्त भाव से बोला—

"कहिए।"

"ज़रा बैठिए तो। आपके दर्शन भी नही होते।" राघव ने बगल मे जगह बनाते हुए कहा। जग्गू जब चुपचाप बैठ गया तब राघव ने पूछा— "आपको तो मालूम ही होगा जग्गू बाबू कि रात आपकी गुमटी के पास मालगाडी लूट ली गयी?"

"जब आप कह रहे है तब मालूम ही हो गया।" जग्गू ने ऊब के स्वर में उत्तर दिया। राघव ठहाका मार कर हँसने लगा। मुनिदेव किसी ग्राहक

के कोट की ब्योत कर रहा था। मुनिदेव और जग्गू बचपन के दोस्त थे। मिडिल पास करने के बाद मुनिदेव कपडे की सिलाई की शिक्षा पाने के लिए पटना चला गया और जग्गू स्टेशन के हाई स्कूल मे दाखिल हो गया। मुनिदेव ने सिलाई का प्रशिक्षण प्राप्त करके अपनी दुकान खोल दी और जग्गू आठवी कक्षा तक पढने के बाद गुमटी पर ही रहने लगा।

राघव की हरकत मुनिदेव को पसन्द नही आयी। वह दाँत पीसता हुआ चीख उठा—

"अरे साला, यहाँ शोर क्यो मचा रहा है ?"

राघव के लिए यह नयी बात नही थी। वह हँसता हुआ बोला—"अरे प्यारे, तू अपना काम करता रह। हाँ, जग्गू बाबू ! तो आपको अभी मालूम हुआ ? लेकिन, आपको यह भी विदित हो कि वह अनाज, बाढ-पीडितो मे मुफ्त बाँटने के लिए, मधुबनी जा रही थी। वहाँ हजारो-लाखो इन्सान कुत्ते की मौत मर रहे है। लेकिन, मै जानता हूँ कि यह किसका कार्य है। इस इलाके के बडे-बडे लोगो का इसमे हाथ है और आप जग्गू बाबू···· "

"अरे चुप रहता है कि नही, लीडर का बच्चा !" मुनिदेव ने राघव को कैची से घोप देने का भय दिखाता हुआ चिल्ला कर कहा। जग्गू अपने चेहरे पर वही पूर्ववत् स्थिरता लिए उठ खडा हुआ और बिना किसी से कुछ बात किये वहाँ से चल पडा।

पूरब से आनेवाली डाक गाडी का समय हो गया था। गुमटी पर पहुँचते ही जग्गू ने फाटक बन्द किये और गुमटी की दीवार के पश्चिमी ओर छाँह मे खाट डालकर बैठ गया। जग्गू का मन बेचैन था। पिछली रात से जितनी घटनाएँ घट रही थी, जितनी चर्चाएँ चल रही थी उन सभी बातो के लिए जग्गू अपने को जिम्मेवार समझ रहा था। कुछ था जो उसके हृदय से कढ कर बाहर निकलना चाहता था, कुछ तीव्रता थी जो किसी भाव को ठहरने नही देना चाहती थी, कुछ घबराहट थी जो एक पल को एक युग जैसा बोझिल बना रही थी। और पश्चिम जानेवाली डाक गाडी का कही पता नही था।

जग्गू इसी उधेड-बुन मे पडा था कि सामने से गोपाल आता दिखायी पडा।

गोपाल बाईस-तेईस साल का नव जवान था—पिता का इकलौता पुत्र-लाड-प्यार मे पला हुआ। उसके घर मे कोई अभाव नही था। उसके पिता बिचित्तर सिंह कर्मठ किसान थे। नाम के प्रतिकूल के बहुत सरल स्वभाव के, हँसमुख, दयालु और सुलझे हुए आदमी थे। अपने बेटा गोपाल को नवी कक्षा तक पढा कर उन्होने उसे स्कूल जाने से मना कर दिया। घर पर दो कुशल पहलवान रखकर उन्होने गोपाल को कुश्ती-कसरत की शिक्षा दिलवानी शुरू की। दुबला-पतला गोपाल दो वर्ष के भीतर ही दारासिंह जैसा दीखने लगा। इलाके मे उसकी जोड का जवान कोई नही बचा। सब बिना आजमाये ही उसका लोहा मान गये। शरीर मे हाथी की शक्ति आ जाने पर भी गोपाल हृदय से गीली मिट्टी जैसा मुलायम बना रहा। स्पष्टवादी वह स्वभाव से था, जिसे लोग अहकार समझ लेते। लेकिन वह जिसके साथ रहता उसी का हो जाता। उसकी अपनी धारणा या अपना मत कुछ नही था। जग्गू को वह चाचा कहकर पुकारता था।

"प्रणाम, जग्गू चाचा।" गोपाल ने सहज मुस्कान के साथ हाथ जोड दिये।

"आओ, गोपाल, बैठो। किधर चले ?" कहकर जग्गू अपनी बेचैनी छिपाने के निमित्त मुसकराने लगा।

"आपको बुलाने आया हूँ। बिसेसर बाबू के दालान पर दारोगा बैठा हुआ है। रात मालगाडी रोककर किसी ने एक डिब्बा अनाज लूट लिया था। पूरे गाँव की तलाशी हो रही है।"

"तो मै क्या करूँगा जाकर ?" जग्गू के स्वर मे आक्रोश था। थोडा रुककर वह फिर उसी स्वर मे बोला—

"बिसेसर बाबू के घर की तलाशी हुई है या नही ?"

"क्या दारोगा के सिह फूटा है कि बिसेसर बाबू के मकान की तलाशी लेगा। बिसेसर बाबू गाँव के मुखिया है, जमीदार है, इलाके के नेता है और

सबसे बडी बात यह कि दारोगा के ऐश-मौज की चक्की मे 'घानी' डालने वालो मे वे सबसे आगे है। तलाशी तो होगी हमारे-आपके घर की ?"

"मेरे घर की ?"

"सो रहे थे क्या, जग्गू चाचा ? आपके घर की तलाशी तो हो भी चुकी है।"

"क्या कहा ?" जग्गू तमककर उठ खडा हुआ—"मेरे घर की तलाशी हो चुकी है ?"

"हाँ ! आपके यहाँ दो मेहमान ठहरे हुए है। दारोगा उनमे से एक को पकडकर बिसेसर बाबू के दालान पर ले गया है।"

"किसको ?"

"वह अपने को नौकर बतलाता है।"

जग्गू की बेचैनी उन्माद मे बदल गयी। वह खाट पर से अँगोछा उठाकर उसे क्रोध से झाडता गाँव की ओर लपका। गोपाल उसके पीछे हो लिया।

बिसेसरसिंह के दालान पर भीड लगी हुई थी। दारोगा कुर्सी पर बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था और राजस्थानी नौकर से डपट-डपट कर अजीबो-गरीब सवाल पूछ रहा था। जग्गू भीड को चीरता हुआ सीधे दारोगा के सामने पहुँचकर बोला—

"मुझसे बात कीजिए, दारोगा जी। वह मेरा अतिथि है।"

"ओह ! आप आ गये ?" दारोगा के चेहरे पर व्यगात्मक मुसकराहट और घृणा के भाव स्पष्ट हो उठे।

"जी हाँ !" जग्गू ने दृढता से कहा। बिसेसर बाबू किंचित् परेशान हो उठे। वह अचानक ही चिल्ला उठे—

"अरे कलुआ ! पता नही कहाँ मर गया साला !" फिर दारोगा से बोले—

"पहले नाश्ता कर लीजिए हुजूर, फिर तहकीकात कीजिएगा।"

जग्गू की दृढता देखकर दारोगा क्रोध से राख हुआ जा रहा था। पूरे गाँव के सामने, जग्गू जैसा साधारण गुमटीवाला—एक कुली—इस तरह

अकडकर बोल रहा था। 'ऐसा गुस्ताख!' दारोगा के रक्त मे प्रतिहिंसा की उष्णता व्याप गयी। लेकिन अपना क्रोध पीता हुआ उसने आँखे लाल करके पूछा—

"यह कौन औरत है जो इस आदमी के साथ तुम्हारे घर मे ठहरी हुई है?"

"इससे आपको मतलब?"

"हाँ, मुझे मतलब है!"

"ये लोग मेरे अतिथि है। इससे अधिक मै कुछ नही जानता।" जग्गू बिसेसरसिह की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखता हुआ बोला।

"वाह साहब, एक जवान औरत को बिना कुछ जाने-समझे घर मे बिठा लिया। मुझे बुद्धू समझ रखा है क्या?"

"किसी परदेसी अतिथि को अपने घर मे ठहराने के लिए अधिक जानने-समझने की जरूरत नही होती।"

"लेकिन चोर और उचक्को का मिजाज दुरुस्त करने के लिए जानने-समझने की जरूरत होती है और मुझमे इतनी अक्ल है!" दारोगा अपने क्रोध पर से नियत्रण खोता जा रहा था। जग्गू उबलता हुआ आया था लेकिन पता नही क्यो वह दृढता के साथ सहज भाव से जवाब देता रहा—

"आप स्वय ही कभी तो अपने को बुद्धू समझ लेते है और कभी अक्ल-मन्द। अब मै क्या जानूँ कि आप क्या है और क्या चाहते है?"

"चुप रहो, नही तो जुबान खीच लूँगा। छोटा मुँह, बडी बात!" दारोगा चीख उठा।

"आपने कुछ पूछना शुरू किया था इसीलिए बोल रहा था। यदि आप चुप रहने को कहते है तो फिर मेरी यहाँ कोई जरूरत नही है।" वह नौकर की ओर देखकर बोला—"चलो भाई। यहाँ से चले।"

"यह नही जा सकता।" दारोगा ने कहा।

"क्यो?"

"इस पर मुझे शक है।"

"वाह दारोगा जी, आपकी समझ भी निराली है! डाकुओ पर तो आप विश्वास करते है और निरपराधो पर शक!"

"कौन डाकू है?"

"आप अच्छी तरह जानते है।"

"मुझे तुम्हारे इस अतिथि पर शक है।"

"लेकिन मै जानता हूँ कि यह निरपराध है।"

"तुम्हारे पास इसका क्या सबूत है?"

"जिस समय मालगाडी लूटी जा रही थी, यह अपनी मालकिन के साथ मेरे पास था।"

"या आप अकेले इसकी मालकिन के पास थे?"

"खबरदार जो इस तरह की बात की!" जग्गू क्रोध से उबल पडा। बिसेसरसिह की परेशानी ने घबराहट का रूप ले लिया, लेकिन, वह बहुत ही पहुँचे हुए आदमी थे। वह दारोगा के पीछे चौकी पर बैठे थे। उठकर दारोगा के सामने आये और शात स्वर मे बोले—

"दारोगा जी, आप नाहक नाराज होते है। जग्गू-जैसा ईमानदार और साधु पुरुष इस गाँव में तो दूर, पूरे इलाके मे नही है और और तुम भी जग्गू भाई व्यर्थ ही क्रोध करते हो। दारोगा जी का तो काम ही है चोरी-डकैती का पता लगाना। यदि ये लोग न रहे तो हम लोगो का सोना, रहना हराम हो जाये। हम लोगो के लिए ही तो दारोगा जी इस तरह के अप्रिय काम करते है। जरा इनकी मजबूरी भी तो महसूस करो। अच्छा दारोगा जी, आप जरा भीतर कोठरी मे चलिए। एक कप चाय पी लीजिए, फिर यह सब काम कीजियेगा। चलिए, उठिए।" बिसेसरसिह दारोगा को आग्रहपूर्वक उठाकर कोठरी मे ले गये। दारोगा जाते-जाते अपने सिपाहियो से कहता गया—

"इन लोगो को जाने मत देना।"

"कहाँ चले, दारोगा जी?" इस भर्रायी फटी हुई आवाज़ को पहचानने मे किसी को देर नही लगी। ऐसी घटनाओ को तमाशा समझकर दिल-

चस्पी लेनेवाले, राघव के आगमन से, मन-ही-मन खुश हुए। दारोगा और बिसेसरसिंह थमक गये। इन दोनो को राघव का आना बहुत ही बुरा लगा। बिसेसरसिंह ने पितृ-भाव से हँसते हुए कहा—

"तुम जरा बैठो, राघव! दारोगा जी अभी चाय पीकर आते है। चलिए दारोगा जी, भीतर चलिए।"

दोनो कोठरी मे चले गये। भीड वाचाल हो उठी। सभी अपनी-अपनी बात, अपना-अपना तर्क उपस्थित करने लगे। आगतुक नारी का नौकर ठगा-सा घबराया-सा खडा था। राघव ने अपनी स्वाभाविक भाषण-शैली मे बोलना शुरू किया—

"देखो जग्गू भाई! हर जगह गरीब और कमजोर ही शिकार होते हैं, और असल डाकू मौज उडाते है। मै जानता हूँ कि कोठरी मे जाकर गरीबो को फाँसने का जाल रचा जा रहा है। लेकिन आप लोगो को होशनही है। आप लोग कायर की तरह सब-कुछ सहन करते हैं। बड़े शर्म की बात है।"

"तो आपने ही कौन-सा तीर मार दिया है! भाषण तो सभी दे सकते हैं। जरा आगे बढकर इस अन्याय का विरोध कीजिए तब जाने।" गोपाल तमककर दायाँ हाथ फैलाता हुआ बोला।

"मेरी बात मत करो, गोपाल। मै तो हमेशा आगे रहनेवाला आदमी हूँ। लेकिन तुम लोगो-जैसे पढे-लिखे नौजवानो के रहते हुए भी एक मामूली दारोगा ने पूरे गाँव को बेवकूफ बना दिया! मेरा क्या है? मै तो फक्कड आदमी हूँ। जहाँ कही भी मैने अन्याय देखा है, वहाँ डटकर विरोध किया है। और इसीलिए मै चारो ओर बदनाम हूँ। लेकिन मुझे अपनी बदनामी का डर नही है। मै आप लोगो के साथ हूँ। आपको चाहिए कि जो आपकी इज्ज़त पर हाथ डाले, आप उसका हाथ तोड दे।"

"किसकी माँ बाघ-ब्यायी है जो हमारी इज्जत पर हाथ डालेगा?" गोपाल आँखे लाल करके बोला।

"यही तो तुम भूल करते हो, गोपाल भाई। तुम्हे पता नही है कि इज्ज़त किसे कहते हैं। तुम समझते हो कि तुम्हारी इज्जत तुम्हारे घर में

है लेकिन ऐसी समझ तुम्हारी अज्ञानता को ही सिद्ध करती है। देसौरा गाँव तुम्हारा है, यहाँ के लोग तुम्हारे अपने है, यहाँ की अच्छाई-बुराई तुम्हारी अपनी अच्छाई-बुराई है और इसी तरह गाँव की इज्जत तुम्हारी अपनी इज्जत है।"

"यह तो मै भी मानता हूँ।" गोपाल ने गम्भीरतापूर्वक चीखकर कहा।

राघव उत्साह मे आकर बोला—

"मानने भर से क्या होता है? जग्गू बाबू तुम्हारे गाँव के रहनेवाले है, तुम्हारे अपने है। इस गाँव के जितने भी लोग है, सब एक दूसरे के सगे है। आज दारोगा ने जग्गू भाई के अतिथि को बेइज्जत किया है, कल आप लोगो की प्रतिष्ठा पर हाथ उठायेगा, बल्कि आपकी प्रतिष्ठा तो धूल मे मिल भी गयी। क्या शर्म की बात नही है कि आपकी आँखो के सामने आपके एक अतिथि को गाली दी जा रही है और आप खडे मुँह ताक रहे है?"

भीड से बहुत-सी आवाजे बुलन्द हो उठी—

"जरूर! बिल्कुल शर्म की बात है, आप ठीक कहते है।"

राघव ने विजेता की तरह एक बार भीड को देखा और फिर गोपाल से कहा—

"प्यारे भाई, तुम मेरे छोटे भाई हो। तुम्हे मुझ पर नाराज नही होना चाहिए।"

"आपने डरपोक क्यों कहा?" गोपाल ने कृत्रिम क्रोध से पूछा।

तभी बिसेसरसिंह बाहर आये। भीड का कोलाहल कुछ दब गया। बिसेसरसिंह शात स्वर मे बोले—

"आप लोग अपने-अपने घर जाइए। यहाँ भीड लगाने से क्या फायदा?"

भीड ज्यों-की-त्यो खडी रही। बिसेसरसिंह प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक कर घूरने लगे—"आप लोगो को कोई काम नही है क्या?"

"काम तो बहुत से है, लेकिन आप लोग करने दे तब तो।" राघव ने मुस्कराते हुए व्यग्य किया। बिसेसरसिह शायद इसी मौके की तलाश मे थे। बोले—

"आप बीच मे न बोलिए। जाइए स्टेशन जाकर हलवाइयो की यूनियन बनाइए। यह गाँव है।"

"आप मेरी जुबान पर ताला नही लगा सकते। इतनी बडी सरकार ने भी बोलने की आजादी दे रखी है।"

"कौन कहता है कि आप न बोलिए, लेकिन यहाँ नही। यह गॉव है, मेरा घर है।"

"पहले आप अपने गॉव मे होनेवाले जुल्म को रोकिए, फिर मेरी जुबान को रोकिएगा।"

बिसेसरसिह उसी शात मुद्रा से बोलते रहे—"हम गॉव के मामले मे बाहरवालो का दखल बर्दाश्त करने के आदी नही है। हम आपस मे कुछ भी करे, इससे बाहरवालो को मतलब ?"

"और यह दारोगा जी कहाँ के है ? इस दारोगा ने आपके गॉववालो को बेइज्जत किया है और आप उन्हे सम्मानपूर्वक नाश्ता करा रहे है, चाय पिला रहे है !"

"वे हमारे अतिथि है।"

"और मै ?"

"आप-जैसे अतिथियो से हमारे गाँव को भगवान बचाए !" भीड ठहाका मारकर हँस पडी। राघव ने चारो ओर देखा। उसकी हिम्मत पस्त होती जा रही थी। गोपाल पर जाकर उसकी नजर अटक गयी। वह मुस्करा रहा था। जग्गू एक आम की सिल्ली पर बैठा था—गभीर मुद्रा मे, दोनो हाथो की हथेलियाँ सिल्ली पर रखे हुए।

बिसेसरसिह ने मुस्कराते हुए कहा—"यहाँ जितने लोग बैठे है, सभी मेरे भाई-बन्द है। सब लोग मेरे है और मै सबो का हूँ। सुख-दुख मे, हम गॉववाले एक दूसरे के काम आते है और एक दूसरे से झगडते भी है। लेकिन बाहरवालो को पच नही बदते। आप-जैसे नेता लोग अपनी माया गॉव से दूर ही रखे तो अच्छा।"

"लेकिन ठाकुरसाहब, मेरी माया तो आपकी माया की छाया-भर है।

आप आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे। समझे ?" और बिसेसर बाबू पर एक अर्थ-पूर्ण दृष्टि डालता हुआ राघव वहाँ से चल दिया। राघव की उस दृष्टि से बिसेसरसिह क्षण-भर के लिए विचलित हुए, लेकिन तत्क्षण स्वस्थ हो गये।

"अच्छा, अब आप लोग भी जाइए।" बिसेसरसिह ने लोगो से कहा। भीड छँटने लगी। जग्गू ने उस नारी के नौकर को अपने पास इशारे से बुलाकर पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"बढमदेव।"

"अच्छा तो ब्रह्मदेव, तुम गुमटी पर चलकर बैठो। मै अभी आता हूं।" ब्रह्मदेव चला गया। तब तक भीड भी छँट चुकी थी। बिसेसर बाबू लोगो का जाना देख रहे थे। लेकिन उनका मन तो जग्गू की ओर ही टँगा था। जग्गू को चुपचाप सिल्ली पर बैठा देखकर बिसेसरसिह उसके पास पहुँचे—

"क्या बात है, जग्गू भाई ? मुझसे नाराज हो क्या ?"

जग्गू चुपचाप उठ खडा हुआ। बिसेसरसिह मुस्कराते हुए पितृ-भाव से देख रहे थे। बिसेसरसिह की आकृति, हाव-भाव और व्यवहार देखकर उन्हे पहचानना कठिन था। उनका गौर वर्ण, खडी नासिका, पतले फैले हुए होठ, बडी-बडी निश्छल आँखे और दोहरी देह, देखनेवालो के मन मे श्रद्धा उत्पन्न करती और उनका मधुर व्यवहार अनजान आदमी के अहकार को सहज ही जीत लेता। उनके चेहरे पर की स्निग्धता योगियो-जैसी थी। जग्गू ने उनकी आँखो मे आँखें डालकर आक्रोशपूर्ण स्वर मे पूछा—

"आप जानते थे कि मेरे अतिथियो का इस डकैती से कोई सम्बन्ध नही है, फिर भी आपने मेरे घर की तलाशी करवायी और मेरे अतिथियो को अपमानित करवाया।"

"तुम बडे भोले हो, जग्गू भाई। दारोगा मेरा नौकर तो है नही कि सब काम मुझसे पूछकर करेगा।" बिसेसरसिह ने स्नेह से अपना बायाँ हाथ जग्गू के कधे पर रखते हुए कहा। बिसेसरसिंह का तर्क जग्गू मे विश्वास नही भर सका लेकिन उनके मधुर व्यवहार के सामने जग्गू का क्रोध दब

गया। वह समझौतावादी ढग से क्रोध प्रदर्शित करता हुआ बोला—

"लेकिन अभी तो आपने ही सबो को रिहा कर दिया जैसे जैसे आप ही दारोगा हो।"

"पागल हो गए हो !" बिसेसरसिह ने हँसते हुए कहा—"अरे आखिर दारोगा भी तो आदमी है। समझाया-बुझाया, उसकी आरजू-मिन्नत की तब जाकर उसने मेरी बात मानी। और जरा तुम स्वय सोचो कि दारोगा ने क्या गलत काम किया ?" जग्गू ने कौतूहलपूर्ण क्रोध से बिसेसरसिह को देखा। बिसेसरसिह शात स्नेह-स्निग्ध स्वर मे बोलते रहे—"तुम्हे भी मालूम नही है कि तुम्हारे अतिथि कौन है और किस उद्देश्य से यहाँ आए है। वह स्त्री जवान है, खूबसूरत है और भले घर की मालूम पडती है। मै तुम्हे जानता हूँ कि तुम साधु पुरुष हो, सच्चे हो, लेकिन ससार या समाज कैसे विश्वास कर लेगा कि वह निरुद्देश्य ही भटक रही है या तुमने वैसे ही उन लोगो को अपने यहाँ ठहरा लिया है। जरा ठढे दिमाग से सोचो, जग्गू भाई। कोई काम बिना कारण के नही होता। इसीलिए कहता हूँ कि क्रोध न करो। जो कुछ हुआ उसे भूल जाओ।"

जग्गू किसी सोच मे पड गया। उसका हृदय क्रोध, घृणा और प्रतिहिंसा से फटा जा रहा था लेकिन उसकी समझ मे नही आ रहा था कि वह किस पर और क्यो क्रोध करे। बिसेसरसिह की बाते उसके मन मे जमी नही। वह महसूस कर रहा था कि बिसेसरसिह जो-कुछ कह रहे है झूठी, कृत्रिम, और भ्रमपूर्ण बाते है। लेकिन, वह अपने मन के भाव खोल नही पा रहा था। जग्गू बाजी हार चुका था। अब उसके परास्त मन मे विजेता का सामना करने की हिम्मत नही थी। वह चुपचाप वहाँ से चल पडा। उसके मन मे यही प्रश्न बार-बार उठ रहा था—"जीवन मे पहली बार आज उसने क्यो हार मान ली ? क्यो ? क्यो ? क्यो ?"

पश्चिम जानेवाली डाकगाडी हडहडाती हुई झमाक् से गुमटी पर से गुजर गयी। आज पहली बार वह अपनी ड्यूटी पर मौजूद नही था। यह सब क्या हो रहा है ? क्यो हो रहा है ? वह क्यो बर्दाश्त कर रहा है ? पता नही क्यो ? और इन हजारो-लाखो 'क्यो' का उसके पास कोई उत्तर नही था।

३

जग्गू ने गुमटी पर पहुँचते ही सबसे पहले दोनो ओर के फाटक खोल दिये। ब्रह्मदेव उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जग्गू उसके पास जाकर बैठ गया। कुछ देर दोनो चुपचाप बैठे रहे। ब्रह्मदेव ने चुप्पी तोडते हुए पूछा—

"क्या दारोगा मुझे पकडकर ले जायेगा ?" जग्गू ने देखा कि ब्रह्मदेव का चेहरा भय से पीला पडा हुआ था, उसके होठ सूख रहे थे और उसकी आवाज लडखडा रही थी। जग्गू मे अह-जनित दया आ गयी। वह अपनी सारी परेशानियाँ भूल गया।

"नही ब्रह्मदेव, तुम्हे कोई नही पकडेगा। असल मे, रात ही तुम लोग यहाँ आये और रात को ही मालगाडी रोककर, डाकुओ ने उसे लूट ली। दारोगा उसी की छान-बीन करता फिर रहा है।" ब्रह्मदेव आश्वस्त हुआ। दोनो फिर चुप हो रहे। आकाश मे बादलो की दौड़-धूप शुरू हो गयी। इस बार जग्गू ने ही चुप्पी तोडी। उसने सकुचाते हुए पूछा—

"तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"क्यो ?"

"मालकिन ने मुझे कुछ नही बताया कि वे कहाँ जायेगी।"

"तुम्हारी मालकिन की शादी हो चुकी है ?"

"नही।"

"क्या घर से भागकर आयी हैं ?"

"हाँ।"

"तुम लोगो ने बहुत बुरा किया। ज़माना बहुत ख़राब है। तुम लोगो को घर लौट जाना चाहिए।"

"मालकिन मानती ही नही है तो मै क्या करूँ ?"

जग्गू ने कौतूहल से ब्रह्मदेव को देखा। ब्रह्मदेव के चेहरे पर न दु ख का भाव था, न सुख का। वह अनासक्त भाव से देख रहा था। उसके होठो पर दयनीयता को व्यक्त करनेवाली हलकी मुस्कराहट काँप रही थी।

"अच्छा चलो, मै तुम्हारी मालकिन को समझाता हूँ ?"

दोनो चल पडे। घर पहुँचकर जग्गू बाहर बरामदे पर ही रुक गया। भीतर से ब्रह्मदेव की पुकार आने पर घर मे पहुँचा। आँगन के उस पार, बरामदे मे, खम्भे के सहारे मालकिन खडी थी—सद्य स्नाता, स्निग्धता बिखेरती हुई, निश्छल सौन्दर्य की साकार प्रतिमा-सी। उसके भीगे बाल खुले हुए थे जिस पर पडा हुआ आँचल लगभग भीग चुका था। जग्गू ठगा-सा देखता रह गया।

"चिट्ठी गिरा दी ?"

"ऐ · हाँ।" जग्गू चौककर शरमा गया।

"एक्सप्रेस कर दिया था न ?"

"हाँ, यह रहे बाकी पैसे।" जग्गू को पैसो का खयाल आया। उसने फेंट से पैसे निकालकर ब्रह्मदेव को दे दिये। फिर उसने कुछ हिचकते हुए कहा—

"मैने सुना है कि आप घर से भाग आयी है। क्या यह सच है ?"

"भागी नही हूँ, चली आयी हूँ।" मालकिन का सहज उत्तर था। जग्गू इस नारी की निर्भीकता से स्तम्भित रह गया। मालकिन बोलती गयी—

"स्त्री का अपना घर तो कोई होता नही। हर स्त्री को एक न एक दिन अपने माँ-बाप को छोडना ही पडता है। मै भी उसी तरह छोडकर चली आयी हूँ।"

"लेकिन, आपका आपका ब्याह तो हुआ नही है।"

"किसने कहा कि मेरा ब्याह नही हुआ है। मेरी माँग मे आप सिन्दूर नही देख रहे है ?" कहते-कहते मालकिन का मुखमडल सात्विक क्रोध से आरक्त हो उठा। जग्गू ने झेपते हुए कहा—

"ब्रह्मदेव ने कहा था।"

"यह तो बेवकूफ है। यह समझता है कि बाजे-गाजे के साथ, शोर-गुल करके, ब्राह्मण की उपस्थिति मे ही ब्याह हो सकता है—वैसे नही।" जग्गू को सारी बात समझते देर नही लगी। उसने किंचित गभीर स्वर मे कहा—

"लेकिन, समाज की मुहर लगे बिना कोई सम्बन्ध पक्का नही होता।"

"मुझे समाज से कुछ लेना-देना नही है।"

"लेकिन, यदि वह आदमी आपको धोखा दे दे तो फिर समाज पर ही आप लोगो की ज़िम्मेवारी आ जायेगी। आदमी से बढकर खतरनाक जानवर इस सृष्टि मे और कोई नही। इसलिए धोखा ···"

"यह सब मेरी अपनी बाते है। आपको 'उनके' बारे मे धोखा-फरेब-जैसे शब्द बोलने का कोई अधिकार नही है। यदि मेरा यहाँ रहना आपको भारी लगता है तो साफ-साफ कहिए, मै अभी चली जाऊँगी।" जग्गू को जैसे काठ मार गया। 'देखने मे इतनी खूबसूरत, इतनी कोमल और जुबान ऐसी कडवी—मिजाज इतना तेज?' जग्गू क्षण-भर सोचता रहा कि अचानक उसे होश आया। उसने सकपकाते हुए कहा—

"नही, नही, ऐसी बात नही है। मै तो आपके भले की बात कह रहा था। वैसे यह आपका घर है—जब तक इच्छा हो रहिए। मुझे तो इस घर की जरूरत भी नही होती। खाली ही पडा रहता है।" और अचानक ही, तेजी से घर के बाहर निकल आया। जग्गू हैरान था। 'यह कैसी स्त्री है? परदेश में किसी अनजान आदमी के घर ठहर गयी है। लेकिन दिल मे किसी तरह का कोई डर नही। दारोगा और पुलिस ने घर की तलाशी ली, उसके नौकर को परेशान किया लेकिन, इस बडी घटना के बारे मे उसने एक शब्द भी नही पूछा और पहला प्रश्न उसने किया—'चिट्ठी गिरा दी?' पता नही वह कैसा पुरुष है जिसका जादू इस स्त्री के सिर पर चढकर इस तीव्रता से बोल रहा है!

गुमटी पर पहुँचते ही उसने देखा कि राघव उसकी खाट पर बैठा कुछ लिख रहा है। "आइए जगदेव बाबू, मै आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

"कहिए।"

"जरा बैठिए तो, फिर इतमीनान से बात की जाय।"

जग्गू के बैठ जाने पर राघव अपनी छोटी-छोटी आँखे घुमाता हुआ बोला—

"हुजूर के यहाँ, सुना कोई परी उतरी है।"

"क्या मतलब ?" जग्गू ने भवे टेढी करके पूछा।

"मतलब तो साफ है।" राघव ने बेवकूफ की तरह हँसते हुए कहा।

"राघव जी, मै सीधा आदमी हूँ। मुझसे सीधे ढग से बात कीजिए। समझे ?" जग्गू क्रोध से उबल उठा।

"सीधे ढग से ही पूछ रहा हूँ, मित्र। लेकिन, आप तो बेकार ही नाराज हुए जाते है। मैने तो स्टेशन पर और आपके गाँव मे अजीबोगरीब चर्चा सुनी और असलियत जानने के लिए आपसे पूछ लिया। यदि आपको बुरा लगा तो क्षमा माँगता हूँ। खैर, छोडिए इस बात को। मै आपसे, दरअस्ल डकैती के बाबत कुछ पूछने आया हूँ।"

"पूछिए।" जग्गू का स्वर रूखा और कठोर था।

"मालगाडी आधा घटा से ऊपर, गुमटी से कुछ ही दूर पर खडी रही। फिर आपने इसकी खोज-खबर क्यो नही ली ?"

"मै पूरे रेलवे पर पहरा नही देता।"

"अच्छा, डेढ मील तक लाइन के साथ-साथ आनेवाली सडक इसी गुमटी से रेलवे लाइन को काटती है। फिर लूट का माल तो इसी ओर होकर गया होगा ?"

"क्यो ? पश्चिम की ओर से भी तो लाया जा सकता है।"

"सकने की बात छोडिए, जो हुआ सो कहिए।"

"देखिए राघव बाबू, आप व्यर्थ अपना और मेरा समय वर्बाद कर रहे है। इन बातो से कोई फायदा होनेवाला नही है।"

"अच्छा, इस बात को भी छोडिए।" राघव ने हँसते हुए कहा और फिर वह अचानक ही गभीर हो गया। जग्गू के निकट सरककर धीमी आवाज़ मे बोला—

"मुझे तो मालूम हो गया है कि किसने डाका डाला है।" और यह कह-कर राघव गौर से जग्गू को देखता रहा। जग्गू किंचित चेतन हो उठा और सम्हलकर बोला—

"फिर तो बडी खुशी की बात है। दारोगा से मिलकर उसे गिरफ्तार करवाइए।"

"अरे जग्गू भाई, यही तो मुशीबत है। दारोगा तो उस डाकू की मुट्ठी मे है।" जग्गू आवश्यकता से अधिक सावधान होता जा रहा है—यह बात राघव से छिपी नही रही। जग्गू ने अपनी आँखे बचाते हुए पूछा—

"कौन है वह आदमी ?"

"जग्गू भाई, मुझसे मत बनो! पूरा इलाका तुम्हे ईमानदार और सच्चा आदमी मानता है। आज तक तुमने किसी की खुशामद नही की, किसी से दबकर कोई भीख नही माँगी। सच्ची और खरी बात करने के कारण सभी तुम्हारे दुश्मन हो गये। फिर भी तुमने परवाह नही की और तुम अपनी राह पर चलते रहे। लेकिन आज तुम्हे क्या हो गया है कि सच्ची बात कहने से डर रहे हो? तुम अच्छी तरह जानते हो कि डाका किसने डाला है, फिर भी तुम मुझसे पूछते हो। अगर मुझसे ही जानना चाहते हो तो सुनो डाका डालनेवाले का नाम है बाबू बिसेसरसिंह। बोलो, सच बात है या नही?"

राघव अपने अनोखे ढग की भाषण-शैली का असर देखने के लिए जग्गू को घूरता रहा।

"मै नही जानता।" जग्गू ने सिर नीचा किये-किये कहा। राघव उछल कर खडा हो गया और खुशी से थिरकता हुआ बोला—

"बस मै जान गया कि तुम सभी बाते जानते हो।" जग्गू आश्चर्य और झेप के साथ राघव को देख रहा था। राघव बोलता गया—

"अगर तुम अनजान होते तो बिसेसरसिंह का नाम सुनते ही चौक उठते, आश्चर्य से देखते रह जाते और परेशानी-हैरानी की रेखाएँ तुम्हारे चेहरे को विकृत बना देती। लेकिन लेकिन तुम सब-कुछ जानते हो, प्यारे! बस

मै अभी जाकर ठाकुर बिसेसरसिह का हिसाब-किताब दुरुस्त करता हूँ। तुम्हे गवाही देनी होगी।" कहता हुआ वह जाने लगा।

"सुनिए तो!" जग्गू ने घबराकर पुकारा।

राघव थोडी दूर तक लौटकर आया और दूर से ही बोला—

"जग्गू भइया, तुमने सारी उम्र सत्य की राह पर बितायी है। अब इस उम्र मे झूठ का पल्ला मत पकडो।" इतना कहकर वह तेजी से स्टेशन की ओर चला गया।

जग्गू की परेशानी और बढ गयी। जितना ही वह इस जाल से छूटने की कोशिश करता उतना ही उसमे उलझता जाता। 'अब क्या होगा?' यही प्रश्न उसे पागल बनाये जा रहा था कि सामने से बिसेसरसिह आते दीख पडे।

"किस चिता मे डूबे हो जग्गू भाई?" बिसेसरसिह ने आते ही पूछा।

"अभी राघव यहाँ आया था। उसे किसी तरह मालूम हो गया है कि आपने ही डाका डलवाया है और वह कुछ कार्रवाई करने गया है। अब यदि मुझसे पूछा गया तो मै साफ-साफ सभी बाते बता दूँगा। मुझे दोष मत दीजिएगा। मुझसे ज्यादा झूठ बोला नही जायेगा।"

"तुम राघव की चिंता मत करो जग्गू भाई। वह क्या खाकर मेरे खिलाफ कार्रवाई करेगा, यह लो अपना हिस्सा।" बिसेसरसिंह ने मुस्कराते हुए नोट की एक गड्डी जग्गू की ओर बढायी।

"मुझे इसकी कोई जरूरत नही है। आप ही रखिए।"

"अरे रख भी लो। घर आयी लक्ष्मी को इस तरह नही ठुकराते।"

"यह लक्ष्मी नही है बिसेसर बाबू, चडिका है। अगर आप अन्याय करके इसे बलपूर्वक अपने पास रखेगे तो यह आपका सत्यानाश कर देगी।" जग्गू क्रोध और घृणा से काँप रहा था। बिसेसर बाबू ने हँसते हुए कहा—

"तुम बिल्कुल पागल हो। अच्छा, मै चलता हूँ। जरा रघुआ का प्रबध कर दूँ।" जग्गू भय से काँप उठा। आठ-नौ घटे मे ही जग्गू ने बहुत-सी नयी

बाते देख ली थी। इसी बीच वह बिसेसरसिंह को भी पहचान गया था। उसकी नजर मे बिसेसरसिंह-जैसा खतरनाक और चाडाल आदमी ससार मे कोई नही था। 'अब राघव का क्या होगा ?' इसी सोच से जग्गू मरा जा रहा था।

४

देर हो चुकी थी इसलिए जग्गू ने पाँच-छ मोटी-मोटी रोटियाँ सेक ली और प्याज-नमक-मिर्च के साथ खाने बैठा। अभी दो-तीन कौर ही खाये होगे कि मुनिदेव हाँफता हुआ आ पहुँचा। दौडने से उसकी साँस फूल रही थी, भय से उसका चेहरा पीला पडा हुआ था और घबराहट से उसके होठ-कठ सूख रहे थे। जग्गू के पास पहुँचते ही वह हाँफता हुआ किसी कदर बोला—

"जल्दी चलो जग्गू। अनर्थ हो गया।"

"क्या हुआ?" जग्गू ने मुँह तक आया हुआ कौर थाल मे गिराते हुए घबराकर पूछा।

"अरे उठो भी तो। रास्ते मे सभी बाते बता दूँगा। जल्दी चलो।" मुनिदेव उसकी बाँह पकडकर उठाता हुआ बोला।

रास्ते मे चलते-चलते जो कुछ सुना उससे जग्गू ग्लानि और घृणा से भीतर-ही-भीतर रो उठा। अभी मुश्किल से दो-तीन घटे हुए होगे—बिसेसरसिह के गुमटी पर से गये हुए, और इतनी देर मे सारी घटना घट गयी। बात यह हुई कि राघव चार बजे की गाडी से मुजफ्फरपुर जानेवाला था। उस बेवकूफ नेता ने स्टेशन पर शोर कर दिया कि बिसेसरसिंह ने ही डाका डलवाया है और दारोगा उसकी मुट्ठी मे है। इसलिए वह स्वय मुजफ्फरपुर जाकर एस० डी० ओ० से सारी बाते बतायेगा। सबो के मन मे इस तरह की शकाएँ घर किये हुए थी। लेकिन खुलकर कोई कुछ नही बोलता था। हवा अनुकूल थी। राघव की बात, आग की तरह फैल गयी। सबो की जुबान पर दो ही बाते थी—बिसेसरसिंह का डकैती से सम्बध और जग्गू का राजस्थानी औरत से सम्बध। इसी बीच, देसौरा के कुलदीप और मुनेश्वर

एक रिक्शा लेकर मदनपुर गये और वहाँ से उसी रिक्शे पर लौटकर स्टेशन आये। मुनेश्वर ने रिक्शावाले को आठ आने दिये। रेट के मुताबिक डेढ रुपया होता था। रिक्शावाले ने यह कहकर भयकर अपराध कर दिया कि "बाबू साहब, ये पैसे भी आप ही रखिए।" बस उन दोनो ने बेचारे रिक्शावाले को मारना शुरू किया। शोरगुल सुनकर राघव वहाँ आ पहुँचा। क्योकि वह रिक्शा यूनियन का नेता था उसने बीच-बचाव करना चाहा लेकिन देसौरा के दोनो गजेरी बाबू साहब राघव की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उन दोनो ने मिलकर राघव को इतना पीटा कि वह बेहोश हो गया।

जग्गू जब स्टेशन पहुँचा तब मुनिदेव की दुकान पर भीड लगी हुई थी। बाढ-पीडित गरीब, सहमे हुए, दूर खडे थे। राघव खाट पर लेटा कराह रहा था, उसका सिर एक पुरानी धोती से बँधा हुआ था जिसमे दो-तीन जगह खून के धब्बे पडे थे, उसका मुँह सूजा हुआ था, निचला होठ कट गया था, बाँयी आँख सूजकर ढक गयी थी, स्याह पड गयी थी और उसका कुर्त्ता-पायजामा चिथडा हो रहा था। जग्गू को देखते ही राघव के होठो पर उद्देश्यपूर्ण मुस्कराहट दौड गयी। वह धीमे स्वर मे बोला—

"देखो जग्गू भाई! मै मुजफ्फरपुर जाकर एस० डी० ओ० से नही मिल पाऊँ, इसलिए यह जाल रचा गया है। ऐसे है तुम्हारे बाबू बिसेसर-सिह जमीदार मुखिया!"

"फिर तुम अनाप-सनाप बकने लगे? चुपचाप पडे रहो। इन झझटो मे पडने की तुम्हे क्या जरूरत है?" वृद्ध सेठ मँहगीराम ने कृत्रिम स्नेह के वशीभूत होकर डपट दिया। राघव मुस्कराता हुआ क्षीण स्वर मे बोला—

"आप ठीक कहते है, सेठ जी।"

"ठीक तो कहता ही हूँ। लाख बार तुमको समझाया है कि बडे लोगो के झगडे मे मत पडो। लेकिन, तुम मेरी बात सुनो तब न। अरे मै तुम्हारा बूढा बाप हूँ। जो कहूँगा, तुम्हारे भले के लिए कहूँगा।"

भीड मे खडे कुछ लोगो ने भी सेठ की हाँ मे हाँ मिलायी। लेकिन वहाँ कोई ऐसा आदमी नही था जो बिसेसरसिह के खिलाफ कुछ बोलता। स्पष्ट

था कि बिसेसरसिह के इशारे पर ही राघव को मार लगी थी। और कुलदीप और मुनेश्वर, बिसेसरसिह के दो कुत्ते थे, जो उनकी रोटी पर पलते और उनके इशारे पर गरीब का गला घोट देने को तत्पर रहते। दोनो गँजेरी और अफीमची थे। जाति के राजपूत होते हुए भी, रात के अँधेरे मे, दुसाध-चमार के घर जाकर लबनी की लबनी ताडी पी जाते, वही पर किसी के घर मे सेंध डालने की योजना बनाते, रात-भर चोरी करते और सुबह होते ही खादी का कुरता, खादी की धोती और गाधी टोपी पहनकर पाक-साफ इसान बन जाते, छूआछूत का विचार रखते और मुखमडल पर गहन-गाम्भीर्य लिए गाँववालो को अनावश्यक राय देते फिरते। उन्हे देखकर लगता जैसे आचार्य विनोबा जी की मडली के दो जीवन-दानी रास्ता भूलकर इधर भटक आये हो।

"अच्छा सेठ जी, आप कृपा करके चुप रहिए।" मुनिदेव ने खीझकर कहा। सेठ जी ऐसे मौके पर चूकनेवाले नही थे। उन्होने छूटते ही कहा—

"मै तो चुप हो जाता हूँ लेकिन इसके दोस्त बनते हो तो कुछ दवा-दारू का प्रबंध भी करोगे या ऐसे ही तमाशा दिखाते फिरोगे? क्यो भाइयो! मै ठीक कहता हूँ या ग़लत? अभी इसके लिए दवा-दारू का प्रबध होना चाहिए। आप सब लोग चदा इकट्ठा कीजिए और इसे मदनपुर अस्पताल ले जाइए।" सेठजी ने अपनी तरफ से दो रुपये निकालकर, बडे गर्व से, मुनिदेव की ओर बढाये।

"अपना रुपया अपनी जेब मे रखिए।" मुनिदेव भडक उठा। लेकिन जब भीड से आवाजे आयी कि 'अरे ले क्यो नही लेते? ठीक तो कहते है सेठ जी,' तब मुनिदेव ने उपेक्षापूर्वक सेठ के हाथ से रुपये ले लिए। चन्द मिनटो मे चौदह-पन्द्रह रुपये इकट्ठे हो गये। जग्गू चुपचाप खड़ा था। उसके दिमाग मे तूफान उठ रहा था। मदनपुर ले जाने के लिए जब मुनिदेव एक रिक्शा पर राघव को लेकर बैठ गया तब राघव ने जग्गू को अपने पास बुलाया और कहा—

"मै जो काम नही कर पाया उसे आप ही कर सकेंगे जग्गू भाई। इसी-

लिए आपको बुलवाया है।"

"कौन सा काम ?"

"मुजफ्फरपुर जाकर एस० डी० ओ० को "अभी बात खत्म भी नही हुई थी कि बिसेसरसिह भीड चीरते हुए रिक्शा के पास आ खडे हुए। भीड खामोश थी।

राघव को देखते ही वह दु ख से भर उठे। उनका चेहरा वेदना, करुणा और सहानुभूति की रेखाओ से आक्रात हो उठा। अनायास बोल उठे—

"अहा हा, क्या कर दिया उन बदमाशो ने। मुझे तो अभी खबर मिली है और भागा चला आ रहा हूँ। लेकिन इसे रिक्शा पर बैठाकर कहाँ लिये जा रहे हो ?" अतिम वाक्य उन्होने चौककर पूछा।

"मदनपुर अस्पताल।" मुनिदेव ने जल-भुनकर कहा। राघव के चेहरे पर अब भी व्यग्यात्मक मुस्कराहट थिरक रही थी। बिसेसरसिह अधिकार-पूर्वक गरज उठे—

"नही जाना होगा मदनपुर अस्पताल।"

"क्यो ?" मुनिदेव ने बिगडकर पूछा।

"हम लोग क्या मर गये है कि तुम लौडो को मनमानी करने देगे ? बेचारा राघव घाव की पीडा से मरा जा रहा है और तुम इसे रिक्शा पर बैठाकर, इस धूप मे, चार मील दूर मदनपुर लिये जा रहे हो। इसे मारना चाहते हो क्या ? तुम लोगो को थोडी भी अक्ल नही है। बिलकुल पागल हो गये हो ?"

"तो क्या मै यही पडा-पडा मर जाऊँ ?"

"नही भइया राघव। तुम्हे मरने कौन देगा ? मै किस दिन काम आऊँगा ? डाक्टर यही आयेगा।" बिसेसरसिह ने पुचकारते हुए कहा।

नही चाहते हुए भी राघव को रिक्शा से उतरना पडा। डाक्टर को बुलाने के लिए दो आदमी साइकिल पर दौडाये गये। सब लोग जानते थे कि बिसेसरसिह ने ही राघव की यह दशा करवायी है, सब लोग समझते थे कि बिसेसरसिह डाकू और जुल्मी आदमी है लेकिन पता नही क्यो, बिसेसर-

सिह के सामने कोई उनकी बात का विरोध नही कर पाता। और विरोध करनेवाला भी झख मारकर वही काम करता जो बिसेसरसिह करवाना चाहते। अजीब ताकत थी उस आदमी मे। मन ही मन सभी उनसे भय खाते, कभी न कभी हर आदमी को उनसे ज़रूरत पड जाती और वे हर आदमी की मदद करते। समर्थ और सत्तावान का विरोध करने के लिए वैरागी का मन, शूर का तन और सतोष का धन चाहिए।

राघव को सहानुभूति और सक्रिय सहायता की आवश्यकता थी। बिसेसरसिह ने तुरत आधा सेर गरम दूध मँगवाया और उसमे हल्दी मिलाकर राघव को अपने हाथो से पिलाया। उन्होने पास ही के खादी भण्डार से एक जोडी अच्छी धोती और एक बनी-बनायी गजी मँगवायी, राघव से ज़बरदस्ती कपडे बदलवाये और वे बहुत ही सहानुभूतिपूर्वक, अपने स्वाभाविक पितृ-भाव से थोडी-थोडी देर पर हाल-चाल पूछते रहे। डाक्टर ने आकर मरहम-पट्टी बाँध दी। बिसेसरसिह ने ज़रूरत न होने पर भी एक सूई दिलवा दी और सारा खर्च, बिना किसी हिचक के स्वय किया। विरोधी होने पर भी राघव आभार से दब गया।

डाक्टर साहब को कुछ दूर तक बिसेसरसिह स्वय पहुँचा आये और पन्द्रह-बीस मिनट बाद लौटकर आये तो राघव के पास देर तक बैठे रहे। जग्गू चुपचाप एक ओर बैठा यह सब कुछ देख रहा था और न जाने क्या कुछ समझने का प्रयत्न कर रहा था। बिसेसरसिह का चरित्र एक अछोर-रहस्य बनकर जग्गू की बुद्धि का उपहास कर रहा था। उससे अधिक नही सहा गया तो उठकर चलने को तैयार हुआ कि बिसेसरसिह बोल उठे—

"चल रहे हो क्या ?"

"जी हाँ।"

"चलो, मै भी चलता हूँ।"

दोनों चुपचाप चलते रहे। स्टेशन पीछे रह गया, होमसिगनल भी निकल गया। लेकिन दोनो चुप रहे। अत मे जग्गू से नही रहा गया।

"आपने ऐसा अन्याय क्यो किया ?"

"कैसा अन्याय ?" बिसेसरसिह ने सहज-साधारण ढग से पूछा। जग्गू उनके इस अभिनय पर घृणा से फुत्कार कर उठा——

"आपने मालगाडी लूटकर हजारो बाढ-पीडितो के पेट पर लात मारी, गाँववालो के घर की तलाशी करवाकर उन्हे अपमानित करवाया और बेचारे राघव को बिना कसूर के पिटवाकर उसे अधमरा कर दिया। फिर भी पूछते है कैसा अन्याय ?"

बिसेसरसिह ठठाकर हँस पडे। बोले——

"चलो, तुम मे कुछ समझने की बुद्धि तो आयी। लेकिन जग्गू भाई, कोई किसी पर अन्याय नही करता। हर आदमी, बहुधा अपनी जान बचाने की कोशिश मे, अनजाने ही दूसरो का नुकसान कर बैठता है। यही ससार का नियम है।"

"यह कौन-सा नियम है कि दूसरो का हक छीन लो और जो इसके खिलाफ जुबान खोले उसकी जुबान काट लो। आपको ऐसी बात बोलते शर्म भी नही आती ?"

"यही आज का नियम है जग्गू भाई। सरकार मुझसे जमीदारी छीन रही है और यदि मै इन्कार करूँ तो जुबान दूर, जिन्दगी से भी हाथ धोना पडे। फिर मुझे भी तो अपना और अपने परिवार का भविष्य देखना है।"

जग्गू फिर निरुत्तर हो गया। घृणा के अतिरेक से उसका सिर घूमने लगा। 'बिसेसरसिह आदमी नही, हैवान है। इसकी सारी बाते हैवानियत से भरी है। इसलिए इससे मुँह लगाना व्यर्थ है।' ऐसा सोचकर वह चुप हो रहा। गुमटी पर वे दोनो अलग हो गये। जग्गू अपनी दुर्बलता पर मन ही मन मरा जा रहा था। शाम हो चुकी थी। आकाश मे घना-गहरा-काला बादल व्याप गया था। हवा गुम थी। दूर-पास से मेढको के टर्र-टो-टर्र-टो की आवाज आ रही थी। फिर पानी बरसेगा——यह अनुमान लगाकर जग्गू जल्दी-से-जल्दी दिशा-मैदान से फरागत होने के लिए लोटा लेकर खेत की ओर चला गया। लौटकर उसने देखा कि ब्रह्मदेव गुमटी के आगे खाट पर बैठा है।

"कहो ब्रह्मदेव, कब से बैठे हो ?" लोटा रखकर अँगोछा से हाथ पोछता

हुआ जग्गू बोला—

"मालकिन ने कहा है कि आप भी घर पर ही खाना खाये।"

"नही भइया, मै तो आज बीस साल से खुद बनाता हूँ और खाता हूँ। बाहर कही नही खाता।"

"बाहर खाने के लिए कौन कहता है ? वह तो आपका ही घर है।"

"सो तो ठीक है लेकिन, दूसरे के हाथ का बनाया भी मै नही खाता। इसलिए माफ कर दो। और आज तो मेरा मन भी ठीक नही है। वैसे भी कुछ खाने की इच्छा नही है।"

ब्रह्मदेव चुपचाप लौट गया। हलकी-हलकी बूँद पडने लगी थी इसलिए उसने खाट गुमटी के भीतर कर ली और हाथ-बत्ती जला ली। खाट पर लेटे-लेटे, उसके मन मे बहुत से विचार आने लगे—'आज तक उसने जो कुछ देखा-सुना क्या वह सब झूठ था। बचपन से उसने जो सच्चाई और सरलता की जिन्दगी बिताई सो क्या गलत किया ? क्या उसका जीवन व्यर्थ ही बीता ? समाज मे छल-प्रपच, स्वार्थ, घृणा और गन्दगी देखकर उसने अपने को समाज से अलग रखा। लोग अच्छे नही हैं, लोग अच्छे नही हो सकते, वह स्वय अच्छा है, पवित्र है इसलिए उसे अपनी पवित्रता बनाये रखनी चाहिए। उसे सबो से अलग रहना चाहिए, दलदल के पास जाकर वह दलदल मे फँसेगा। लेकिन ·· कल मे क्या हो रहा है ? आगे क्या होगा ? वह अपनी पवित्रता, अपनी ईमानदारी कहाँ खो बैठा ? उसे क्या हो गया है ? वह बोलता क्यो नही ? चीखकर, पुकारकर कहता क्यो नही कि दोषी कौन है ? क्या वह इसीलिए अच्छा बना रहा चूँकि बुरा बनने का मौका नही मिला ?" जग्गू बहुत देर तक घुटन से तडफडाता रहा लेकिन उसे कोई राह नही मिली। बेचैनी बढती ही गयी। वह गुमटी के बाहर निकल आया। बूँदा-बाँदी हो ही रही थी। वह पानी मे भीगता हुआ चक्कर काटता रहा लेकिन उसके मन की बेचैनी शात नही हुई। रात हो आयी थी। वह फिर गुमटी मे लौट आया और रामायण खोलकर सस्वर पढने लगा—

मातु नदि मैं साधु सुआली, उर अस आनत कोटि कुचाली।
करइ कि कोइव बालि सुसाली, मुकता प्रसव कि सबुक काली।
सपनेहु दोसक लेसु न काहू, मोर अभाग उदधि अवगाहू"

जग्गू इसके आगे नही पढ सका वह आँखे बद किए पडा रहा। उसकी आँखो से आँसू की धार बह चली। विषाद से हृदय फटने लगा। लेकिन वह समझ नही पा रहा था कि वह चाहता क्या है ? ससार मे उसे अपना कहने वाला कोई नही था—भाई-बहन, माँ-बाप सभी जा चुके थे, उसकी नजर के सामने जो कुछ भी आया—जाने के लिए ही आया, और इस अस्थिरता ने उसके मन मे जो असमय ही वैराग्य-भाव भर दिया था वह, आज अकेले मे, उसे शत सहस्र रूप धरकर डँसने लगा। समाज से भागनेवाला अपनी छाया से भी डरता है। आज जग्गू की अपनी आत्मा ही परायी बनकर उसका पीछा कर रही थी।

"बाबू जी !"

ब्रह्मदेव की आवाज़ सुनकर जग्गू चौक उठा।

"मालकिन कहती है कि यदि आप नही खायेंगे तो वे भी नही खायेगी।"

"ऐं अच्छा अच्छा चलो चलता हूँ।" अपनी स्थिति छिपाने की शीघ्रता मे वह घबराकर अनजाने ही ब्रह्मदेव का आग्रह स्वीकार कर बैठा। हाथ-बत्ती की रोशनी मे ब्रह्मदेव उसकी आँखे और चेहरा न देख ले इसलिए जग्गू जल्दी से बाहर अधेरे मे निकल आया। ब्रह्मदेव चुपचाप उसके पीछे हो लिया।

चारो ओर सन्नाटा और अधकार व्याप रहा था। झीसी पड रही थी। दिन डूबते ही गाँव वाले खा-पीकर सोने की तैयारी मे लग जाते है। धान की रोपनी भी सबकी खत्म हो चुकी थी। इसलिए, काम के नाम पर, एक दूसरे के सम्बन्ध मे गप्पे मारना और लम्बी तानकर सो रहना—यही दिन-चर्या रह गयी थी। जग्गू को उस रात का सन्नाटा बडा भयावना और वीभत्स लग रहा था।

जग्गू को देखते ही मालकिन मुस्कराने लगी। बोली कुछ नही। खाना परोसकर ले आयी। जग्गू भी चुपचाप खाने लगा।

"मुझे रसोई बनानी आती नही है इसलिए, आपको यह खाना अच्छा नही लगता होगा।"

जग्गू चुपचाप खाता रहा। उसके मन मे तो तूफान उठ रहा था। शादी-ब्याह या श्राद्ध-कर्म के अवसर पर ही वह किसी के यहाँ खाने जाया करता, अन्यथा नही। और आज वह एक अनजान, विजातीय स्त्री के हाथ की बनी रसोई, उसी के सामने बैठकर, चुपचाप ग्रहण कर रहा था। अचानक ही क्या हो गया कि बिल्कुल नयी-नयी बाते उसे देखने-समझने को मिल रही थी। लेकिन, उसके पास इसका कोई जवाब नही था—कोई तर्क नही था कि वह ऐसा क्यो किये जा रहा था? वह निमित्त मात्र बनकर रह गया था।

"आप सोच रहे है कि कहाँ से यह बोझ बनकर आ पडी।" मालकिन ने मुस्कराते हुए कहा। जग्गू चौक उठा—

"नही तो। बल्कि बोझ तो मै हूँ कि आपका खाना खा रहा हूँ।"

"यह तो मजबूरी है।" मालकिन ने कहा। जग्गू ने सिर उठाकर मालकिन को देखा। मालकिन बोली—

"मे इतना तो समझ ही सकती हूँ कि आप बे-मन से खाना खा रहे है।" जग्गू का स्वाभिमान जागृत हो उठा। एक नारी ने उसे चुनौती दी थी। वह अपनी परेशानियो को क्षण भर के लिए भूल बैठा और किचित दम्भ से हँसता हुआ बोला—

"आप भ्रम मे पडी है मालकिन! मैं अपने मन का आदमी हूँ। जो ठीक समझता हूँ, वही करता हूँ। मजबूरी के नाम पर कुछ करनेवाले ढोंगी होते है।"

"एकाध पूरी और लीजिए।"

"नही, अब कुछ नही चाहिए।"

"आपको खाना अच्छा नही लगा?"

"बहुत बढिया बना है। ऐसा भोजन मेरे भाग्य मे कहाँ ?"

"क्या आप हमेशा अकेले रहते है ?"

"हाँ।" सक्षिप्त उत्तर देकर जग्गू हाथ-मुँह धोने के लिए उठ गया। उस समय जोर की बारिश होने लगी थी।

ब्रह्मदेव के हाथ से सुपारी-लवँग लेकर जग्गू को खुद देती हुई मालकिन ने बडे निश्छल भाव से पूछा—

"आपने शादी क्यो नही की ?"

जग्गू हँसता हुआ टालने के भाव से बोला—

"शादी करता ही क्यो—यही समझ मे नही आया इसीलिए नही की।"

"बहाने मत बनाइए।"

"मै ठीक कह रहा हूँ मालकिन।"

"देखिए, मै आपकी मालकिन नही हूं। मेरा नाम है शारदा। आप शारदा कहकर पुकारिए।"

जग्गू इस लडकी की निश्छलता और सरलता पर मुग्ध होता जा रहा था। गाँव मे ऐसी वाचाल और निर्भय लडकियाँ नही होती। वे तो दूसरो के सामने बोल भी नही पाती। जग्गू ने गाँव के पुस्तकालय से लेकर कुछ उपन्यास पढे थे। जग्गू को लग रहा था, शारदा लडकी नही हे, उपन्यास की कोई पात्र हे। जग्गू ने हँसते हुए कहा—

"अब शारदा कहकर ही बुलाऊँगा।"

"अच्छा एक बात कहूं ?" शारदा ने हंसती हुई आँखो से जग्गू की ओर देखते हुए पूछा—"आप स्वीकार करेगे ?"

"पहले बात तो कहिए।"

"नही, पहले वचन दीजिए।" शारदा के स्वर मे मान करवाने की ध्वनि थी। जग्गू, न जाने क्यो, सावधान हो गया। घटनाओ की बाढ से वह अस्थिर हो उठा था।

"देखिए, शारदा जी ?"

" 'जी' नही, केवल शारदा' ", शारदा ने बात काटते हुए कहा—

"मै आपसे छोटी हूँ। छोटी बहन को भी कही 'जी' कहकर बुलाया जाता है ?" जग्गू क्षण-भर अवाक् देखता रह गया उस धृष्ट लडकी को ! लेकिन, उसकी स्निग्धता ने जग्गू मे करुणा भर दी। वह अपनी हार मानता हुआ बोला—

"कहिए, क्या बात है ?"

"कल से आप यही, इस घर मे, रहा कीजिए।"

"क्यो ?"

"हर वक्त कोई-न-कोई आता ही रहता है।"

"कौन आता है यहाँ ?"

"आपके गाँववाले आपको ढूँढने आते है।"

"लेकिन, गाँववालो को तो पता है कि मै घर पर नही, गुमटी पर ही रहता हूँ। फिर यहाँ क्या करने आते है ?" क्रोध मिश्रित कौतूहल से जग्गू की भृकुटी टेढी हो गयी, आँखे छोटी हो गयी और होठ खुले के खुले रह गये। शारदा ने कोई जवाब नही दिया। जग्गू वही बरामदे मे इधर-उधर चक्कर काटने लगा।

"आपको मेरे चलते काफी परेशानी उठानी पड रही है।" शारदा ने दयनीय स्वर मे कहा। जग्गू विचलित हो उठा। पता नही क्यो, जग्गू इस लडकी से मन ही मन स्नेह करने लगा था। उसमे मोह उत्पन्न हो गया था। उसने जरा झिझकते हुए कहा—

"नही, परेशानी की तो कोई बात नही है लेकिन, मुझे तो ड्यूटी भी करनी होती है, इसीलिए थोडी चिन्ता मे पड गया।"

"तो छोडिए, मै निबट लूँगी आपके गाँववालो से। चन्द रोज की ही तो बात है। फिर तो 'वह' आ ही जायेगे।" आत्मविश्वास और आकस्मिक उल्लास से शारदा मधुर हो उठी।

"आपने अब तक खाना नही खाया ?"

"खा लूँगी।"

"अच्छा तो आप खाना खाइए, मै चलता हूँ।"

"इस बारिश मे ?"

"अरे, बारिश तो रोज ही होती रहती है।" और अगोछा सिर पर रखकर जग्गू जल्दी-जल्दी आँगन पार करता हुआ घर के बाहर हो गया।

पानी बरसे जा रहा था। गाव मे कुत्ते भूँक रहे थे। जग्गू ने देखा—दूर पर बिसेसरसिह के दालान मे लालटेन की रोशनी झिलमिल कर रही थी। कही कोई पचम स्वर मे बारहमासा गा रहा था जिसकी आवाज, वर्षा के कारण, अस्पष्ट और कातर हो रही थी।

इन तमाम बातो से, इन तमाग घटनाओ से जग्गू का मन भीगता जा रहा था। उसके मन मे एक अजीब भाव जन्म ले रहा था—नयापन का भाव, डूबने का भाव, सहने और सामना करने का भाव, अपने और अपनी इन्द्रियो को समझाने का भाव और जिन्दगी की मुसीबतो मे भीगने का भाव। गरज यह कि वह ऊब और तटस्थता से तग आकर दिलचस्पी और जिज्ञासा के अछोर आकाश मे उड जाने को अपने पख तौल रहा था।

५

सुबह होते ही जग्गू, नित्यक्रिया से निवृत होकर, गुमटी पर ठहरने के बजाय अपने घर पहुँचा। शारदा चाय पी रही थी। जग्गू को देखते ही हर्ष से बोल उठी —

"आपकी ही याद कर रही थी।"

"मेरी ?"

"हाँ, सोच रही थी कि आप आ जाते तो साथ-साथ चाय पीते। बड़ा मजा आता। अभी बनाती हूँ। चाय का पानी बिल्कुल तैयार है।"

"नही, नही, रहने दीजिए। मुझे चाय पीने की आदत नही है।"

"आप बैठिए तो।" और भागकर मिनटो मे एक कप चाय बनाकर ले आयी। बोली—

"मुझे बचपन से चाय पीने की आदत है। 'उन्हे' तो चाय से इतना प्रेम है कि दिन-भर मे बीस-पच्चीस कप पी जाते है। आप बिल्कुल नही पीते ?" शारदा इतनी शीघ्रता से बोल रही थी कि जग्गू उसकी चचलता ही देख रहा था। शारदा ने अपना प्रश्न दुहराया तो उसका ध्यान टूटा। झेंपता हुआ बोला—

"कभी-कभी जब स्टेशन जाता हूँ तब मुनिदेव पिला देता है।"

"यह मुनिदेव कौन है ?"

"मेरे बचपन का साथी है। स्टेशन पर सिलाई का काम करता है। वह मुझे जबर्दस्ती चाय पिला दिया करता है।"

"मुझे भी 'उन्होने' ही यह आदत डाल दी। उनके लिए बनाकर लाती थी तो मुझे भी पिला दिया करते थे। क्या करती ? पी लेती थी। और अब एक दिन चाय नही मिले तो मन न जाने कैसा होने लगता है।"

"आप······बचपन से ही अपने पति को जानती है ?" जग्गू ने झिझकते हुए पूछा।

वह सहज सरलता से बोली—"नही, जब मै बारह साल की थी तब से।"

"अच्छा ?"

"वे मेरे घर आया करते थे। मेरे बडे भाई के साथी थे। मुझे वे पगली कहकर बुलाया करते। मैं उनसे लडती भी बहुत थी। हालाकि वे मुझसे दस साल बडे है लेकिन, हम दोनो खूब लडते थे—बन्दर की तरह।" कहकर शारदा खिलखिलाकर हँसने लगी। जग्गू को लग रहा था कि हो-न हो इस सरल लडकी को छला गया है, यह बिल्कुल भोली और निश्छल लडकी है। पढे-लिखे अच्छे घर मे पली मालूम देती है लेकिन, इसे दुनिया की बातो का कोई अनुभव नही है।

'वे करते क्या है ?" जग्गू ने पूछा। शारदा उसी सरलता से बोली—

"यह तो मुझे ठीक-ठीक मालूम नही है। जयपुर मे तो वे आठ साल से रहते है। कुछ दिनो तक शायद पढते रहे, उसके बाद किसी चीज का विजनेस करने लगे। अब तो आप देख ही लीजिएगा कि···"

"जग्गू भाई है ?" अभी शारदा ने वाक्य पूरा भी नही किया था कि बाहर से किसी की आवाज आई।

जग्गू ने बाहर जाकर देखा कि मुनेश्वर उचक्के की तरह, दरवाजे से, भीतर का दृश्य देखने की कोशिश कर रहा था।

"क्या है ?" जग्गू ने सख्त आवाज मे पूछा।

"कुछ नही, वैसे ही मिलने चला आया।" मुनेश्वर ने झेपकर खीसे निपोडते हुए कहा कि ब्रह्मदेव बोल उठा—

"यह तो कल से चार बार आ चुके है।"

"क्या काम है ?" जग्गू ने अपना प्रश्न दुहराया।

"आप भी अजीब आदमी है, जग्गू भाई ! क्या अडोसी-पडोसी से भेट-मुलाकात करने भी नही आये लोग ?"

"लेकिन, आप तो अच्छी तरह जानते है कि मै यहाँ कभी नही रहता। हमेशा गुमटी पर रहता हूँ। फिर वहाँ तो आपने कल से एक बार भी दर्शन नही दिया और यहाँ चार बार धमक गये।"

"चूँकि आपका घर रास्ते मे पडता है इसलिए, आते-जाते पूछ लेता हूँ। यदि इसमे आपको कोई नुकसान होता है तो अब नही पूछूँगा।"

"जी हाँ, मुझे नुकसान होता है। आप अपनी राह जाया कीजिए। 'मन मे आम बगल मे ईट' वाली बात मै भी समझता हूँ। मै राघव नही हूँ। समझे?"

"आप तो बेकार ही नाराज हो रहे है।"

"जी हाँ, मै तो व्यर्थ ही नाराज होता हूँ लेकिन, आपका मेरे घर का चक्कर लगाना बडा सार्थक है। गुण्डा कही का!" जग्गू आँखे तरेरता हुआ बोला। मुनेश्वर को भी क्रोध आ रहा था। उसने भवे टेढी करते हुए कहा——

"मुँह सम्हाल के बोलिए नही तो " अभी मुनेश्वर ने वाक्य पूरा भी नही किया था कि जग्गू का भरपूर तबडाक उसकी बायी कनपट्टी पर पडा। क्षण-भर के लिए तो उसकी आँखो के आगे बिल्कुल ही अँधेरा छा गया और काफी देर तक सामने चिनगारियाँ दीखती रही। बायी हथेली से अपनी कनपट्टी पकडे वह यह कहता-कहता गुर्राता हुआ चला गया——

"इसका नतीजा बहुत बुरा होगा सो जान लीजिए।" जग्गू दाँत पीसता हुआ उसे जाते हुए देखता रहा। ब्रह्मदेव घबराया हुआ खडा था। जग्गू ने घूमकर देखा——शारदा दरवाजे पर खडी अपने मुँह मे कपडा ठूँसकर हँसी रोकने की कोशिश कर रही थी। जग्गू को अपनी ओर आते देखकर वह हँसती हुई बोली——

"बेचारा मुझसे प्रेम करने आया था लेकिन, बहुत ही बेवकूफ बन गया।" शारदा की बात सुनकर जग्गू का क्रोध जाता रहा। उसे भी हँसी आ गयी। शारदा की बाते और उन्हे कहने का ढग अब जग्गू के लिए नया नहीं था। इसलिए, वह भी हँसता रहा। आँगन मे पहुँचकर शारदा ने हँसते

हुए कहा—

"अब बेचारा इधर कभी नही आयेगा।"

जग्गू अचानक गम्भीर हो उठा। उसके दिमाग मे कई आशकाएँ कौध गयी। मुनेश्वर चोर ही नही, नीच प्रकृति का आदमी था। जग्गू ने चिन्ता के स्वर मे कहा—

"नही शारदा, उस उचक्के से बेफिक्र होना खतरे से खाली नही है। वह बहुत ही बदमाश और पतित आदमी है।"

"तब क्या होगा ?" शारदा अचानक ही घबरा उठी।

"होगा क्या, थोडी सावधानी से रहना होगा।"

कुछ देर तक जग्गू वही बैठा रहा। फिर चुपचाप गुमटी पर चला आया। वहाँ अनमने भाव से वह इधर-उधर चक्कर काटता रहा। उसका मन कई तरह की आशकाओ और परेशानियो मे ऊब चूभ करता रहा। कभी वह रामायण खोलकर पढने बैठ जाता तो कभी भागवत गीता के श्लोक गुनगुनाने लगता, कभी खाट पर आँखे मूँदे पडा रह जाता तो कभी शून्य दृष्टि से आकाश मे बादलो की दौड-धूप को निरुद्देश्य देखता रह जाता। घुटन की तीव्रता से उसके अग-प्रत्यग शिथिल होने लगे, सिर चक्कर खाने लगा और तब वह स्वस्थ होने के विचार मे फिर खाट पर आँखे बन्द किये पड गया। उसकी आँखो मे नीद नही थी फिर भी पलके झुकी पड रही थी। वह कोई बात सोच नही पा रहा था। फिर भी उसकी सारी इन्द्रियाँ सजग हो रही थी। अचानक घटित हो जानेवाली एक साधारण घटना मनुष्य के जीवन-भर के अनुभवो को झुठलाकर उसके जीवन मे एक नया मोड पैदा कर देती है। वास्तव मे, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त घटित होनेवाली घटनाएँ ही मनुष्य को विकास या पतन की ओर ले जाती है—अनुभव या ज्ञान तो फल है। ऐसी घटना, जो मनुष्य के हृदय को छूकर उसमे जिज्ञासा, घृणा और रगीनी भर दे, मनुष्य के जीवन मे घातक अवस्था उत्पन्न कर देती है।

जग्गू का विश्वास, उसका चरित्र और उसके अनुभव, पिछले दिनो

घटित घटनाओं से उत्पन्न तीव्र भावों से उलझ रहे थे लेकिन, नयापन जवान था और पुरातन अत्यधिक वृद्ध, रूखा! बेचारा पुरातन हार पर हार खाता जा रहा था। जग्गू का मन नयापन की रंगीनियों में डूब रहा था 'सभी अपने अस्तित्व की रक्षा में लगे हैं, सभी अपने परिवार के लिए, पाप-पुण्य का भेद किये बिना सुख-ऐश्वर्य समेटने में जुटे हुए हैं, सभी बेहाल हैं अपनी-अपनी शगल में लेकिन वह क्यों घसीटा जा रहा है? उसे क्या लाभ है? शारदा, बिसेसरसिंह, राघव, मँहगीराम, मुनेश्वर सभी अपने-अपने मतलब में डूबे हुए हैं 'और वह व्यर्थ ही घसीटा जा रहा है अब वह अलग भी नहीं हो सकता लेकिन अपने अस्तित्व से उन लोगों को परिचित रखना आवश्यक है। वह केवल तमाशा देखनेवाला नहीं बना रह सकता कि 'खट्-खट्-खटाक्, खट्-खट्-खटाक्' की ध्वनि से जग्गू की तन्द्रा टूट गयी। हड़बड़ाकर बाहर आया तो देखा कि पश्चिम जानेवाली डाकगाड़ी पास हो गयी। उसने फाटक भी नहीं बन्द किये थे। अपनी स्थिति पर उसे हँसी आ गयी।

वह फिर गुमटी में पहुँचा। उसका मन अभी भी घुटन से तड़फड़ा रहा था। वहाँ उससे ठहरा नहीं गया। लाइन के दोनों ओर के फाटक बन्द करके वह चुपचाप स्टेशन की ओर चल दिया।

मुनिदेव चिउरा-दही का नाश्ता कर रहा था। जग्गू को देखते ही बोला—"आओ आओ, तुम भी बैठ जाओ।"

"तुम खाओ। मुझे भूख नहीं है," कहकर जग्गू वहीं चौकी पर बैठ गया। मुनिदेव एक भरपूर कौर उठाकर खाने ही जा रहा था कि जग्गू का स्वर सुनकर थमक गया। हाथ का ग्रास पत्तल पर रखता हुआ वह क्षण-भर जग्गू को देखता रहा, फिर बोला—

"आज बहुत उदास लग रहे हो। क्या बात है?"

"कुछ नहीं।" कृत्रिम हँसी हँसता हुआ जग्गू बोला। लेकिन मुनिदेव उसकी विषादपूर्ण हँसी सुनकर चुप नहीं रह सका—

"कोई बात तो जरूर है। मुझसे छिपाते हो।"

"अच्छा, पहले तुम नाश्ता कर लो फिर बात करना।"

"नही, पहले तुम बताओ कि बात क्या है ?" कहकर मुनिदेव अपनी दोनो बाँह अपने दोनो ठेहुनो पर रखकर सत्याग्रह करने-जैसी मुद्रा मे बैठ गया। जग्गू को सचमुच हँसी आ गयी। बोला—

"वैसे ही जरा मन घबरा रहा था। कुछ परेशानी है इसलिए तुम्हारे पास चला आया हूँ। नाश्ता कर लो, फिर सारी बाते बताऊँगा।"

"मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि भगवान शकर की शरण मे आ जाओ। लेकिन तुम मानो तब तो। योगी होना और शकर की बूटी से पर-हेज रखना—ये दोनो बाते एक साथ नही हो सकती।" मुनिदेव उछलकर खडा हो गया और छप्पड मे से कागज की पुडिया निकालकर उसे खोलता हुआ बोला—

"फस्ट क्लास का माजूम है। इसे खाते ही सारी परेशानियाँ और थकान छूमन्तर हो जायेगी। लो खाओ देखो जिद्द मत करो! खालो!" जग्गू ने अनिच्छापूर्वक माजूम लेकर खा लिया।

मुनिदेव जब नाश्ता कर चुका तब दोनो मित्र काफी देर तक अकेले मे बाते करते रहे। जग्गू ने शुरू से लेकर उस दिन तक की सारी घटनाएँ मुनि-देव को बता दी। मुनिदेव ने कहा—

'उस लडकी को घर मे रखकर तुमने अच्छा नही किया। खैर, अब तो उसकी देखभाल तुम्हे करनी ही होगी। मुनेश्वर बहुत ही बदमाश आदमी है। वह जरूर घात मे लगा रहेगा। पता नही क्या कर बैठे। लेकिन, बिसेसरसिह को तुम अपनी मुट्ठी से कभी नहीं निकलने दो।"

जग्गू के मस्तिष्क पर माजूम का असर छाने लगा। वह स्टेशन से सीधे बिसेसरसिंह के घर पहुँचा। दालान मे बिसेसरसिह का एकमात्र लडका सहदेव, मुँह मे सिगरेट दाबे, बन्दूक की नली साफ कर रहा था।

"तुम्हारे बाबूजी कहाँ है ?" जग्गू ने पूछा।

"बैठिए, अभी आते है।" सहदेव जग्गू की ओर बिना कोई ध्यान दिये अपने काम मे लगा रहा। जग्गू को मन ही मन हँसी आ गयी। 'बाप से ज्यादा

तो बेटा ऐंठा हुआ है। मुफ्त का माल खाने को मिलता है न।' जग्गू ऐसी ही बातें सोचता हुआ कुछ देर बैठा रहा लेकिन, बिसेसरसिंह नही आये। उसने फिर कहा—

"बन्दूक बाद मे साफ कर लेना। ज़रा अपने बाबूजी को बुला लाओ।"

सहदेव ने झल्लाहट के स्वर मे कहा—

"आप अजीब आदमी है। कह तो दिया कि अभी आ रहे है। बहुत जल्दी है तो स्वय बुला लाइए।" और फिर वह अपनी बन्दूक साफ करने लगा। जग्गू को क्रोध आ गया। उसने तमककर कहा—

"कैसा ऐंठा हुआ लडका है। मालूम पडता है जैसे लाट साहब हो। अरे, यह शेखी मुझ पर नही चलेगी। मै खुद ही बहुत टेढा आदमी हूँ। समझे!"

"अरे जग्गू भाई! कब से बैठे हो? खबर क्यो नही करवा दी?" बिसेसरसिंह ने दालान मे पहुँचते ही जग्गू को देखकर तपाक से पूछा। जग्गू जला-भुना बैठा था। बोला—

"खबर देने को तो आपके लाड़ले बेटे से कब से कह रहा हूँ लेकिन, यह सुने तब न।"

"बेवकूफ है! इतना बडा हो गया लेकिन, इससे यह भी नही पार लगता कि खेती-गृहस्थी के काम मे अपने बूढे बाप की मदद करे।" सहदेव अपने बाप की बात सुनकर मुँह बनाता हुआ ऐंठकर चला गया। बिसेसरसिंह अपने मन की ग्लानि छिपाने के लिए हँसकर अपने बेटे को जाते हुए देखते रहे। फिर बोले—

"किधर चले हो जग्गू भाई?"

"आपके पास ही आया हूँ। कुछ जरूरी काम है।" जग्गू ने गंभीर स्वर मे कहा।

"आज्ञा करो।"

"आपने जो यह नीच पेशा शुरू किया है उसे छोड दीजिए।"

"नीच पेशा? पागल हो गये हो? तुम तो ब्राह्मण हो। अभी उसी

रोज तो ब्रह्मस्थान पर पडित जी ने कथा कहते हुए उपदेश किया था कि कोई कर्म अपने मे अच्छा या बुरा नही होता, कर्त्ता की भावना देखी जाती है। मेरी नीयत खराब नही है। मै हमेशा गरीबो की मदद करने को तैयार रहता हूँ।"

"हजारो गरीबो को लूटकर, उन्हे भूख से तडपाकर, दो-चार गरीबो के आगे ताबे के चद टुकडे फेक देते है—वह भी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए।" जग्गू घृणा से उबल रहा था।

"फिर वही बात! कौन नि स्वार्थ भाव से काम करता है? क्या तुम मुफ्त मे गुमटी पर पहरा देते हो?"

"खैर, यह सब बेकार की बाते जाने दीजिए। मै जो कुछ कहने आया हूँ उसे कान खोलकर सुन लीजिए—यदि आपने यह पेशा नही छोडा तो " कि इसी समय कुलदीप वहाँ पहुँच गया जिसे देखकर जग्गू चुप हो रहा।

"क्या बात है?" बिसेसरसिह ने स्नेह से पूछा। कुलदीप कभी जग्गू को तो कभी बिसेसरसिह को देखता रहा लेकिन, बोला कुछ नहीं।

"अरे, जग्गू भाई अपना ही आदमी है। बोलो क्या खबर लाये हो?" बिसेसरसिह ने किंचित हँसते हुए कहा।

"बात यह है कि···राघव ने हमारे और मुनेसर के खिलाफ फौजदारी दायर कर दी है और और एस० डी० ओ० को सब बात भी बता दी है।" जग्गू सिर नीचा किये कुलदीप की बाते सुन रहा था कि बिसेसर-सिह की हँसी सुनकर चौक उठा। जग्गू ने सिर उठाकर देखा तो उसके आश्चर्य की कोई सीमा नही रही। इतनी भयानक बात सुनकर भी बिसेसर-सिह हँस रहे थे। फिर वह अचानक गभीर हो गये और बोले—

"देखा जग्गू भाई! डाक्टर बुलवाकर उसकी मरहमपट्टी करवायी और वह नमकहराम मेरे ही खिलाफ साजिश करने लगा। यही दुनिया है।"

"लेकिन, उस बेचारे को भी तो आपके आदमियो ने पीटते-पीटते अध-मरा कर दिया था।" जग्गू ने जुगुप्सा के भाव से कहा। बिसेसरसिह फिर हँसने लगे। जग्गू उनका मुँह देखता रहा और सोचता रहा—'कैसा विचित्र

आदमी है ! ' कि बिसेसरसिंह ने हँसते हुए कहा—

"मेरे तो सभी अपने है । क्या तुम मेरे नही हो ? लेकिन इसका मतलब यह तो नही हुआ कि जो कुछ तुम कर आओ उसकी जिम्मेवारी मेरी हो जाये ।" कुलदीप थोडी घबराहट के साथ बिसेसरसिह को देख रहा था । लेकिन बिसेसरसिह के चेहरे पर स्थित-प्रज्ञता मुखरित हो रही थी । उन्होने अपनी बात जारी रखी—"लेकिन मै मर्द हूँ और मर्द की जुबान एक होती है । यह भी कोई बात हुई कि अच्छे हुए तो दोस्त और बुरे हुए तो दुश्मन। जग्गू भाई, साधु और सुखी का साथ तो सभी देते है, लेकिन मर्द वह है जो गये-गुजरो का साथ दे, गिरे हुए को थाम ले । और तुम विश्वास करो जग्गू भाई, मै हमेशा ही कमज़ोर और जरूरतमन्दो की मदद करता हूँ । पीठ पीछे लोग मुझे भला-बुरा कहते होगे लेकिन मै इसकी परवाह नहीं करता । वही करता हूँ जो दस के भले की बात हो । लोग कहते है कि मुनेश्वर बदमाश है । फिर भी मै मुनेश्वर की सहायता के लिए तैयार रहता हूँ । लोगो का क्या ? वे तो तुम्हारे जैसे साधु आदमी के बारे मे भी तरह-तरह की बाते कहते है । तो क्या मै तुम्हारा दुश्मन हो जाऊँ ?" और बिसेसरसिह ने गौर से जग्गू के चेहरे पर का भाव-परिवर्तन देखा । जग्गू ने कौतूहल से पूछा—

"लोग मेरे बारे मे बाते करते है ?"

"हाँ " बिसेसरसिंह ने लापरवाही की हँसी हँसते हुए कहा—"लोग कहते है कि जगनारायण ढोगी है, न जाने किस जाति-कुल की औरत को अपने घर मे बिठाये है।"

"लेकिन वह तो मेरी अतिथि है बिसेसर बाबू ।" जग्गू ने क्रोध से और दुख से लाल होकर कहा—"लोगो को ऐसी बात कहने की हिम्मत कैसे हुई ?"

"नाराज होने की जरूरत नही है, जग्गू भाई । लोगो की जुबान हथिया नक्षत्र का पानी होती है । उसे रोक सकना किसी के बूते की बात नही । तुम क्या हो और तुमने उन लोगो को अपने यहाँ ठहराकर कैसी मुसीबत

ली है, यह मै जानता हूँ। तुम धन्य हो कि एक अनजान, बेसहारा स्त्री को अपनी बहन की तरह अपने घर मे रखे हुए हो। इस कलिकाल मे तुम्हारे-जैसा सच्चा आदमी मिलना मुश्किल है। मै कोई मुँहदेखी बात नही कर रहा हूँ।"

"लेकिन मेरे बारे मे ऐसी बात कही किसने ?" जग्गू के स्वर मे क्षोभ ध्वनित हो रहा था। बिसेसरसिंह ने पितृ-स्नेह से कहा—

"यह सब सुनकर क्या करोगे ? व्यर्थ मे दुख होगा, क्रोध आयेगा, फिर लडते फिरोगे। अच्छा है कि चुप लगा जाओ।"

"मै चुप ही रहूँगा। आप नाम बता दीजिए, मै किसी से कुछ नही कहूँगा।"

"वचन देते हो ?"

"हाँ।"

"तो इस वचन को भी वैसे ही निभाओगे जैसे उस रात को दिये हुए वचन निभा रहे हो ?"

"ऐं हाँ, निभाऊँगा।" जग्गू जरा चौक उठा।

"तुम्हारे खिलाफ प्रचार करनेवाले है, तुम्हारे मित्र गोपाल के बाप बाबू विचित्तरसिह।"

जग्गू आश्चर्य से अवाक रह गया। विचित्तरसिंह उसे अपने पुत्र से भी बढ़कर प्यार करते थे।

"क्यो ? तुम्हे विश्वास नही हो रहा है ? अरे भाई, यह संसार अजीब है। यहाँ सूर्य को देखकर भी सूर्य पर विश्वास नही होता है।" जग्गू चुप-चाप उठ खडा हुआ। तीसरा पहर बीत रहा था। बिसेसरसिंह ने जान बूझकर पूछ लिया—

"जा रहे हो क्या ?"

"हाँ, अब चलता हूँ।"

"अच्छी बात है। लेकिन जो कुछ मैने कहा है, अपने तक ही रखना। और कोई बात हो तो मुझसे कहना। मेरे जीते-जी तुम्हे फिकर करने की

कोई जरूरत नही।"

जग्गू वहाँ से चल पडा। उसे अपनी दशा पर हँसी और क्रोध आ रहा था। वह बिसेसरसिह को डरा-धमकाकर उन्हे अपनी मुट्ठी मे करने आया था लेकिन खुद उनकी मुट्ठी मे जकड़ गया। उसे विचित्तरसिहवाली बात पर आश्चर्य हो रहा था—'क्या आदमी ऐसा भी ढोंगी होता है ? और वह मुनेश्वर ' जग्गू आधे रास्ते से फिर लौट चला, क्योकि वह बिसेसरसिंह से मुनेश्वरवाली घटना का जिक्र कर देना चाहता था। लेकिन बिसेसरसिह के दालान मे कोई नही था। वह पुकारने ही जा रहा था कि दालान के दाहिने हाथवाली कोठरी से बातचीत का स्वर सुनायी दिया। उस कोठरी मे मदक पीने का इन्तजाम रहता था। जग्गू समझ गया कि दोनो गुरु-शिष्य मदक के सेवन मे तल्लीन है। वह कोठरी के बाहर ही चौकी पर बैठ गया। उसने सुना—कुलदीप कह रहा था—

"वह ढाई बजे की गाडी से जरूर आयेगा।" थोडी देर खामोशी रही।

बिसेसरसिह ने पूछा—

"उसके पास रिबिट तोडने का सामान है ?"

जग्गू का माथा ठनका। वह साँस रोककर कान लगाये सुनता रहा। कुलदीप ने कहा, "हा, हाँ, उसके पास सब है। लेकिन अगर गुमटी तक माल पहुँच गया तो ?"

"उसकी तुम चिंता मत करो। जग्गू मेरी मुट्ठी मे है। उसकी जुबान की ऐसी चाभी मेरे हाथ लग गयी है कि मेरी मर्जी के खिलाफ वह एक शब्द भी नही बोल सकता। लेकिल मुनेश्वर ने मुकदमे के लिए गवाह ठीक कर लिया या नही ?"

"जी हाँ।"

जग्गू यो ही इन्तजार मे बैठ गया था लेकिन इतनी बात सुन लेने के बाद उसे वहाँ बैठे रहने की हिम्मत नही हुई। वह चुपचाप वहाँ से रवाना हो गया। किसी गाडी के आने का समय नही था और यदि रहता भी तो क्या! सभी गुमटीवालो की तरह, फाटक बन्द कर वह भी अब ड्यूटी

से गायब रहना सीख गया था। इसलिए उसके पैर अपने-आप घर की ओर मुड गये। शाम होने मे थोडी देर थी। बथानो से कुट्टी काटने की आवाज, गाय-भैस और बछडो के रँभाने की आवाज और बथानो से मच्छर भगाने के लिए किया गया धुआँ गाँव के वातावरण पर छा रहा था। कोई चीज स्पष्ट नही थी, कोई बात या पुकार सही नही थी। मौसम न मोहक था न रूखा और वातावरण न सुखद था न दुखद। जग्गू के मन की हालत भी ठीक ऐसी ही थी। उसे जल्दी-से-जल्दी कोई फैसला करना था लेकिन, उसके सामने सब-कुछ अस्पष्ट, अर्थहीन और उलझन से परिपूर्ण था। खामोश हवा भयकर वर्षा का सकेत दे रही थी।

६

शारदा दरवाजे पर खडी थी। जग्गू को देखकर कुछ बोली नही। चुपचाप मुडकर घर मे चली गयी। जग्गू भी उसके पीछे-पीछे घर के अन्दर पहुँचा।

"ब्रह्मदेव कहाँ है?"

"मुझे नही मालूम।" शारदा ने सक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। उसकी नाराजगी देखकर जग्गू को मन-ही-मन हँसी आ गयी। क्षण-भर के लिए वह अपनी विकट स्थिति भूल गया। उसका मन हलका हो गया। उसने चिढाने के खयाल से हँसी-हँसी मे पूछा—

"मुनेश्वर फिर आया था क्या ?"

शारदा कुपित दृष्टि से जग्गू को देखती रही। जग्गू ने फिर पूछा—

"कुछ हुआ है क्या ? बोलती क्यो नही ?"

"मुझे क्या होगा ? लेकिन आप सब बिहारी लोग एक तरह के है—उचक्के!"—शारदा फूत्कार कर उठी। जग्गू हैरान होकर सोचता रह गया—'अजीब लडकी है!' लेकिन बोलने की हिम्मत नही हुई। शारदा का चेहरा क्रोध से आरक्त हो रहा था। वह उसी स्वर मे बोलती रही—

"आप लोगो को शर्म नही आती! एक बेसहारा औरत को घर मे रखकर फिर उसका तमाशा बनाते है।"

"लेकिन किसने आपका तमाशा बनाया ?"

"आप लोगो ने और किसने ? सुबह से आप गायब है। खाना खाने भी नही आये। आपको गुमटी पर ढुँढवाया लेकिन आप वहाँ भी नही थे। मै अच्छी तरह जानती हूँ कि आप मुझे बोझ समझते है, इसीलिए, चाहते है कि मै तंग आकर यहाँ से चली जाऊँ।"

जग्गू कुछ भी नही समझ पा रहा था कि शारदा की बातो का अर्थ

क्या है। वह घबराया हुआ, सकते की हालत मे शारदा की बाते सुनता जा रहा था। शारदा बोलती गयी—

"अभी एक पहलवान-जैसा नौजवान आया था।"

"पहलवान जैसा ?" जग्गू ने समझने-जानने की कोशिश करते हुए पूछा।

"हाँ, वह आपको ढूंढ रहा था। ब्रह्मदेव आपको बुलाने के लिए गुमटी पर गया हुआ है, इसलिए मै स्वय बाहर निकली। वह बदमाश अजीब दृष्टि से मुझे घूरता रहा और तरह-तरह की बाते पूछता रहा कि आज सुबह क्या हुआ था ? आप कहाँ की रहनेवाली है ? जग्गू चाचा को कब से जानती है ? आदि-आदि ··"

जग्गू सोच रहा था कि हो-न-हो यह गोपाल ही हो सकता है। बिसेसर बाबू ठीक ही कह रहे थे। निश्चय ही अपने बाप का इशारा पाकर गोपाल यहाँ जाँच-पडताल करने आया होगा। पता नही, ये लोग आदमी है या आदमी की शकल मे भेडिये ! जग्गू भीतर-ही-भीतर प्रतिशोध की ज्वाला मे सुलगता-झुलसता रहा। कुछ देर तक दोनो खामोश बैठे रहे, फिर जग्गू आर्द्र स्वर मे बोला—

"देखिए, आपने अपना घर त्यागकर ससार मे प्रवेश किया है। हमारे समाज के लिए यह घटना बिल्कुल नयी है और लोग इसे अच्छी दृष्टि से देखते भी नही। आपको इन बातो का हिम्मत के साथ सामना करना चाहिए। और जहाँ तक बोझ बनने का सवाल है, कहने को तो एक फूल भी आदमी का बोझ हो सकता है और आप तो एक औरत है। लेकिन मै ऊबता नही। लोग मुझसे भी तरह-तरह की बाते पूछते है, मुझ पर भी शक करते है जबकि यहाँ के लोग मुझे तीस-बत्तीस वर्ष से जानते-पहचानते है। इसके लिए क्या किया जाये ?"

"फिर आप दिनभर भागते क्यो रहे ? खाना खाने क्यो नही आये ?" शारदा के इस प्रश्न से जग्गू को मन-ही-मन हँसी आ गयी क्योंकि उसने कभी ऐसा नही कहा था कि वह अब से खाना यही खाया करेगा। लेकिन

अभी वह शारदा का दिल दुखाना नही चाहता था इसलिए हलके मन से हँसता हुआ बोला—

"इतनी-सी बात है तो लाइए, अभी खा लेता हूँ।"

शारदा चुपचाप उठी और खाना परोसकर ले आयी। जग्गू कौतूहल-जनित प्रसन्नता से खाने लगा। शारदा का व्यवहार उसे नया अनुभव जैसा लगा। दो रोज की जान-पहचान मे ही इतना अधिकार जताना उसे अजीब लगा। लेकिन जग्गू शारदा की निश्छलता, सहज-अनभिज्ञता और भोलेपन पर मुग्ध था। और दुनिया के विराट जाल से अनजान शारदा अपने स्नेह-जाल मे जग्गू को आबद्ध करती जा रही थी। जग्गू अपनी विवशता को उप-चेतन के सुख की पूँजी बनाकर सहेजता जा रहा था।

खाना खाने के बाद जग्गू चलते-चलते कहता गया—

"अब आज रात में मैं नही खा पाऊँगा।" और बिना कुछ जवाब सुने घर से बाहर निकल आया। काफी अन्धकार उतर आया था। दूर-पास के घरो से ढिबरी-लालटेन की मद्धिम रोशनी भयावने अन्धकार की माँग मे धुले हुए सिन्दूर की उदासी चित्रित कर रही थी। दूर चमर-टोली से दो कर्कशा औरतो के सस्वर लडने-झगडने का कोलाहल सुनाई दे रहा था।

जग्गू सिर झुकाये, कादो-कीच से बचता हुआ गुमटी की ओर चलता जा रहा था। उसका मन और मस्तिष्क कई बातो से उलझ रहा था। कुलदीप ने कहा था—"आज रात को ढाई बजे बिसेसरसिह ने कहा था कि विचित्तरसिह ऐसी-वैसी बाते कर रहे थे 'गोपाल सी० आई० डी० बन कर पता लगाने आया था ''और शारदा कैसी अजीब लड़की है?—मान न मान मैं तेरा मेहमान—जिसे देखो वही मुझे मूर्ख और बदमाश समझता है—आज रात को ढाई बजे—अगर माल गुमटी तक पहुँच गया तो—जग्गू मेरी मुट्ठी में है···"

"कहाँ थे, जग्गू?"

जग्गू इस कदर अपनी उलझनो मे डूबा था कि मुनिदेव की आवाज पर अकस्मात ही चौक उठा। पहचान लेने पर झेपता हुआ बोला—

"ओह, तुमने तो बिल्कुल डरा दिया। कब से बैठे हो ?"

"यही करीब बीस-पच्चीस मिनट से। क्या हुआ ? बिसेसरसिंह से मिले थे ?"

"हाँ !" और तब जग्गू ने मुनिदेव को सारी बाते बता दी। शारदा के निरर्थक क्रोध का भी जिक्र कर दिया। मुनिदेव सोच-विचार मे डूबता हुआ प्रतिशोध के स्वर मे अपने-आप बोल उठा—

"तो यह बात है। आज मुनेश्वर जी मुजफ्फरपुर से लौट रहे है।"

"राघव कहाँ है ?" जग्गू ने किंचित आशा के स्वर मे पूछा।

"अरे वह साला भी आज गायब है, वर्ना आज तो सारी कसर निकल जाती। खैर, कोई चिंता नही।"

"लेकिन मुनिदेव, बिसेसरसिंह यह क्या बोला कि मेरी चाभी उसके हाथ मे है।" जग्गू ने आश्चर्यमिश्रित चिंता से पूछा। मुनिदेव हँसने लगा—

"अरे बम भोले, अपने को जरा दूसरो की आँखो से भी देखा करो।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि आपको यह पता ही नही है कि गाँव मे रहते हुए आपने शहरवालो की नाक काट ली।"

"अरे भाई साफ-साफ कहो। क्यो मेरा सिर-दर्द बढा रहे हो ?" इस पर मुनिदेव हँसने लगा। जग्गू अवाक् उसकी ओर देखता रहा। मुनिदेव ने हँसते हुए कहा—

"तुमने उस अनजान लडकी को अपने यहाँ शरण दे रखी है। यह क्या गाँव के लिए साधारण बात है। तुम्हारे मुँह पर कोई नहीं बोलता लेकिन इन दिनो सभी जगह इसी की चर्चा होती है, डकैती और मारपीट की बात तो सुबह होते ही पुरानी पड गयी। और बिसेसरसिंह चाहे तो इस बात पर तुम्हारा गाँव मे रहना मुश्किल कर सकता है। समझे ?"

"बिसेसरसिंह मेरा कुछ नही बिगाड सकता।" जग्गू ताव मे आकर बोला और खाट पर से उठकर टहलने लगा।

"हाँ, वह तुम्हारा कुछ नही बिगाड़ सकता बशर्ते कि आज तुम भी

उसकी नकेल अपने हाथ मे ले लो ।"

"आज तो मै उसे हर्गिज नही छोड सकता ।" जग्गू दम्भ से बोला ।

मुनिदेव ने मुँह बनाते हुए कहा—

"इसी बुद्धि पर तुम बिसेसरसिह से लोहा लेने चले हो ? क्या करोगे ? दारोगा को बुलाकर गिरफ्तार करा दोगे ?"

"नही, अभी स्टेशन जाकर मुजफ्फरपुर फोन करवा दूंगा । मालगाडी के साथ मे पुलिस आयेगी और सब-के-सब पकडे जायेगे ।" जग्गू ने गम्भीरता से अपनी योजना रखी । मुनिदेव फिर हँसने लगा । जग्गू तमककर बोला—

"तुम रह-रहकर दाँत क्यो निपोडने लगते हो ?"

"तुम्हारी बुद्धि पर ! तुम क्या समझते हो कि स्टेशन मास्टर तुम्हारा गुलाम है ! अरे मूर्ख, स्टेशन मास्टर उधर मुजफ्फ़रपुर फोन भी कर देगा और इधर बिसेसरसिह को आगाह भी कर देगा । और उसके बाद तुम आसानी से सोच सकते हो कि बिसेसरसिह तुम्हारे साथ कैसा बर्ताव करेगा ?"

"फिर क्या किया जाये ? दारोगा भी तो उसी का आदमी है ।" जग्गू सोच और निराशा में डूबता हुआ बोला ।

"यह काम तुम मेरे ऊपर छोडो । मै ठीक बारह बजे यहाँ पहुँच जाऊँगा ।"

"थोडी देर बैठो न । कौन गाडी छूटी जा रही है ?"

"अरे आज ठीक दो महीने बाद घर जा रहा हूँ । तुम्हारा क्या ? आगे नाथ न पीछे पगहा । बस गुमटी पर पडे रहते हो ।"

"क्यो ? दो महीने बाद घर क्यो जा रहे हो ? स्टेशन से दस कदम पर यह रहा तुम्हारा घर । फिर भी तुम घर नही जाते । उस रोज तुम्हारी पत्नी मेरे सामने रो-रोकर अपना दुखडा सुना रही थी । ब्याह नही हो रहा था तब तो पागल की तरह रोते फिरते थे और आज दो-दो महीने तक घर से गायब रहते हो ।" जग्गू के स्वर मे स्नेहसिक्त फटकार थी । मुनिदेव

झल्लाकर बोला—

"क्या करने जाऊँ घर ? बापू रोज ही स्टेशन पहुँचकर दो-ढाई रुपया माँग ले जाते है और घर जाता हूँ तो माँ अपना रोना अलग शुरू कर देती है और बीवी अलग। मुश्किल से चार-साढे चार रुपये रोज कमा पाता हूँ, उसी मे कैसे अपना पेट भरूँ, कहाँ से बाप को दूँ, कहाँ से माँ को दूँ और कैसे अपनी पत्नी के नखरे सम्हालता फिरूँ ? घर पहुँचते ही दिमाग खराब हो जाता है।"

"जब गृहस्थी का बोझ उठाया है तब भागने से तो काम चलेगा नही। तुम्हारे पिताजी तो कुछ-कुछ उपार्जन कर ही लेते है।"

"खाक उपार्जन कर लेते है ! जिस काम मे हाथ डालते हैं, उसी को चौपट कर देते है। उन्होने तो और मेरा दिमाग खराब कर दिया है। घर मे तीन-तीन बेटे हैं, उन लोगो से कुछ नही कहते और मेरे पास चले आते है रुपया माँगने जैसे मेरी जेब मे गूलर का फूल रखा हो।"

मुनिदेव बहुत दुखी हो गया। उसके घर की हालत बहुत खराब थी। परिवार मे आठ सदस्य थे और कमानेवाला था एकमात्र मुनिदेव। उसके पास कुल पाँच बीघा जमीन थी जिससे साल मे दो महीने का खर्च भी नहीं निकल पाता था। मुनिदेव का सबसे छोटा भाई पाँचवी कक्षा मे पढता था, शेष दो भाई भैंसो की चरवाही करते, पोखर मे घटो तैरते रहते, चेत-कबड्डी खेलते या रात को गाँव की कीर्तन-मडली के साथ कीर्तन करते फिरते। मुनिदेव की पत्नी खूबसूरत और गवाँर थी। बीडी पीती थी और निश्छल भाव से सबो के आगे अपना दुखडा सुना देती थी। मुनिदेव उसे दिल से प्यार करता था लेकिन उसे अपनी गरीबी और परेशानियो के चक्कर से कभी फुर्सत ही नही मिलती थी कि प्यार की बातें सोचे-समझे। दिन-भर मशीन चलाता और शाम तक थककर चूर हो जाता—फिर छककर ताडी पीता, पान खाता, इधर-उधर भद्दे-भद्दे मज़ाक करता फिरता और रूखा-सूखा खाकर दुकान पर ही सो जाता।

जग्गू ने मुनिदेव के दुख को उभारना उचित नही समझा। इसलिए वह

सात्वना देता हुआ बोला——

"सब कुछ तुम्हे ही सहना है इसलिए, दु ख करने या खीझने से क्या फायदा। मर्द का दूसरा नाम हिम्मत है। उसे मत त्यागो। जाओ जरा अपनी बीवी से प्यार की बाते करना और उन्हे मेरी याद दिला देना। कहना कि तुम्हारा एक भक्त वीरान गुमटी मे अकेला पडा है।" और तब दोनो मित्र हँसते-हँसते विदा हुए। लेकिन दोनो का मन अप्रत्याशित आशकाओं की कडवी-मीठी अनुभूति के थपेडो से अस्थिर हो रहा था।

७

ज्यो-ज्यो रात चढती जाती, बारिश का जोर बढता जाता। चारो ओर काला धुध अधकार, झड-झड-झड झड वर्षा की अविराम झडी और बीच-बीच मे बादलो का भयकर गर्जन-तर्जन जैसे दो पहाड वेग से टकरा उठते हो और तब कडक के साथ बिजली की चकाचौध—लग रहा था जैसे शिव ने रौद्र रूप धारण कर लिया हो। हवा भी हहास-चडिका के अट्टहास जैसी ध्वनित हो रही थी जैसे आज फिर महाशक्ति सदलबल दैत्यराज रावण को अपने अक मे लेने जा रही हो। शेष जीव, डर से सहमे हुए, निस्पन्द-निष्प्राण हो रहे थे। न किसी मनुष्य के गाने-रोने की आवाज सुनाई दे रही थी, न किसी पशु के रभाने की। जैसे सवर्त-कल्प की स्थिति आ गयी थी।

जग्गू अपनी गुमटी मे दम साधे मुनिदेव की आतुर प्रतीक्षा मे खाट पर बैठा था। उसने समय का अनुमान लगाया—बारह से अधिक हो रहा होगा। लेकिन मुनिदेव का कही पता नही था। जग्गू बेचैनी की तीव्रता से छोटी-सी गुमटी के भीतर ही चक्कर काटने लगा। उसकी सारी इन्द्रियाँ प्रज्वलित हो रही थी। मुनिदेव ने उससे साफ-साफ बताया भी नही था कि वह क्या करनेवाला है। इसलिए उसका मन अत्यधिक उत्तेजित-उद्वेलित हो रहा था। रह-रहकर वह मोखे से झाँकने लगता और जब बिजली चमकती तो दूर गाँव तक सरसरी नजर से देख लेता। लेकिन पानी मे डूबी हुई सूनी सडक और झझा के चपेट से छटपटाते पेड-पौधो के सिवा वहाँ कुछ भी दिखायी नही देता। अत मे, निराशा और क्रोध से जल-भुनकर वह अपनी खाट पर सोने ही जा रहा था कि दरवाजे पर ज़ोर से थपथपाहट की आवाज़ हुई। लपककर उसने दरवाजा खोल दिया। पानी के भरपूर झोके के साथ मुनिदेव छाता मोडता हुआ भीतर घुस आया। जग्गू ने जल्दी से द्वार बन्द

करते हुए क्रुद्ध स्वर मे पूछा—

"इतनी देर क्यो लगा दी ?"

"ठहरो यार, यहाँ ठड से जान जा रही है और तुम्हे देर-सबेर सूझ रहा है !" मुनिदेव ने जग्गू की सरकारी पगडी देह पर लपेटते हुए कहा। जग्गू का क्रोध और भडक उठा। उबलकर बोला—

"तो आये क्यो ? वही अपनी लुगाई के पास चिपके रहते।"

"लेकिन वहाँ भी तो छप्पर चू रहा था। घर मे एक खाट रखने की भी जगह नही बची। सब जगह पानी चू रहा था।" मुनिदेव ने रुआँसा होकर कहा। जग्गू को उसकी दशा पर हँसी आ गयी। बोला—

"फिर तो आज तुम्हारा घर जाना बिल्कुल बेकार हुआ ?"

"अरे बेकार ही नही, बुरा भी हुआ। घर मे मकई की रोटी बनी थी और तरकारी के नाम पर आम का सूखा हुआ एक फाँक अचार। बस तबीयत फिरी ही नही—भिन्ना गयी। ऊपर से माय ने उपदेश देना शुरू कर दिया कि 'जरा धन जोडना सीखो, घर मे बाल-बच्चा है, शौकीन बीवी है, आदि आदि।' उसकी बात पर मैंने बरसना शुरू ही किया था कि इन्द्र भगवान भी बरसने लगे। घर मे गया तो बीवी जी छुई-मुई बनी बैठी थी। काफी समय मनाने मे ही कट गया और जब बहुत आरजू-मिन्नत के बाद मुस्करायी तो साला पुराना छप्पर रोने लगा—वह भी जार-बेजार। बस यही समझो मित्र कि घर जाकर बरसने और भीगने मे ही समय निकल भागा। सूखने भी नही पाया कि भीगता हुआ यहाँ भागा चला आ रहा हूँ। अब तुम बताओ कि तुम्हे नाराज किस पर होना चाहिए ?"

"अब तो मैं खुश हूँ कि भगवान की कृपा से तुम वहाँ सो नही पाये।" जग्गू ने हँसते हुए कहा।

"मैंने कही सुना था कि दुष्ट मित्र और दुष्ट पत्नी बडे दुखदायी होते है। आज उसका प्रमाण मिल रहा है।"

"और मैंने तो सुना है कि दर्जी कैंची चलाने मे बडे उस्ताद होते है सो आज देखना है कि यह बात कहाँ तक ठीक है।"

"चिता मत करो प्यारे ! ऐसी कैंची चलाऊँगा कि बिसेसरसिंह जिन्दगी-भर के लिए हमारे गाहक हो जायेगे।"

"अच्छा, तुमने यह तो बताया ही नही कि हम लोगो को करना क्या है। कही ऐसा न हो कि काम भी न बने और बिसेसरसिह जान के गाहक भी बन जाये।"

"तुम चुपचाप देखते रहो। अभी कोई इस ओर होकर गया तो नही ?"

"अभी तक तो कोई नही गया है।"

"ठीक है। बच्चू लोग अब आते ही होगे। माल ले जाने का दूसरा रास्ता तो है नही। अभी एक बज रहा है।" मुनिदेव ने अपनी कलाई की घडी देखते हुए कहा।

"क्यो, पश्चिम के रास्ते भी तो माल ले जा सकते है।" जग्गू ने सोचते हुए कहा। मुनिदेव हँसने लगा—

"तुम बिल्कुल बुद्धू हो। चोरी का माल उधर कहाँ ले जायेगे ? आठ मील दूर रेलवे स्टेशन है और रास्ते मे घनी बस्ती है। यदि चौर के पास गुमटी पार करके फिर अपने गाँव वापिस आयेंगे तो चार मील का चक्कर पड़ जायेगा। इतने में सुबह हो जायेगी। फिर तुम्हारे जैसा बमभोला गुमटी वाला कहाँ मिलेगा जो चुपचाप माल ले जाने देगा ? तुम्हे मालूम नही है—यह सारा माल महगीराम खरीद लेता है। आज मै तुम्हे उसका तमाशा भी दिखाऊँगा।"

दोनो मित्र चुपचाप घात मे बैठ रहे। कही से कोई आवाज नही आयी। वर्षा हुए जा रही थी। समय बहुत बेचैनी से कट रहा था। हलका-सा खटका होने पर भी दोनो मित्र सावधान हो जाते।

"देखना तो कितना बजा है ?"

"पौने दो।" मुनिदेव ने कहा। जग्गू ने मोखे से झाँककर देखा—कही कुछ नही था।

"कहीं तुम्हें यहाँ आते किसी ने देख तो नही लिया ?" जग्गू ने चिंता के स्वर मे पूछा।

"मै तो स्वय चारो ओर देखता आ रहा था। कही कोई नही था। और दूर से, ऐसे मौसम मे कोई किसी को पहचान नही सकता। किसी ने यदि देखा भी होगा तो समझा होगा कि जग्गू है। और तुमसे वे लोग डरते नही। अभी तो मालगाडी के आने मे ..."

तभी सडक पर का फाटक काँय-कॉयऽऽऽ कर उठा। जग्गू ने उछल-कर मोखे से देखा—कोई छाता लगाये फाटक के पास खडा था, दूसरा आदमी फाटक खोल रहा था। उस आदमी ने दोनो फाटक खोल दिये। अधकार होने के कारण दूर की चीज़ दिखायी नही पड रही थी। क्षण-भर के बाद ही बैलगाडियाँ आ पहुँची ... एक, दो, तीन, चार, पॉच। छाते वाला व्यक्ति ठेहुने तक बरसाती कोट पहने था। बिजली चमकने पर उसकी रोशनी मे जग्गू और मुनिदेव ने देखा—फाटक खोलनेवाला कुलदीप था और छाता लगाये स्वय बिसेसरसिह थे। बैलगाडियाँ लाइन पारकर चलती चली गयी—अंधकार मे विलीन हो गयी और उनकी चरमराहट वर्षा की हहास मे खो गयी।

"कुछ देर मे बिसेसरसिह तुम्हारे पास आयेगा। जरूर आयेगा। और यदि नही आये तो मालगाडी के पास होने तक तुम चुपचाप यही बैठे रहो।" मुनिदेव ने फुसफुसाहट के स्वर मे कहा। जग्गू का कलेजा जोर से धडक रहा था। ऐसे छल-प्रपच, जाल-फरेब और चोरी-डकैती से वह जीवन-भर अलग रहा। उसका मन बार-बार उसे धिक्कार रहा था कि वह पाप-कर्म का भागी बन रहा है। लेकिन मुनिदेव ने दुनिया देखी थी, तरह-तरह के लोग देखे थे, दुख सहा था और अपमान के घूंट पिये थे। सासारिक व्यक्ति समय को पूंजी के रूप मे देखता है लेकिन ससार से विरक्त व्यक्ति के लिए समय एक कसौटी के सिवा और कुछ नही। यदि विरक्त व्यक्ति एक बार भी समय के चक्कर में पड जाता है तो वह भोग की अतल गहराई से पहले नही रुकता। मुनिदेव सासारिक व्यक्ति था। वह मोखे पर खडा गुमटी की ओर देख रहा था कि अचानक घूमकर जल्दी मे फुसफुसाहट के स्वर मे बोला—

"वह आ रहा है। तुम उससे ऐसे मिलना जैसे उसके बडे भक्त हो और माल कटने न कटने की तुम्हे कोई परवाह नही है। मेरा जिक्र मत करना।" यह कहकर वह खाट के नीचे छिप गया। दरवाजे पर जब दो-तीन बार थपथपाहट हुई तब जाकर जग्गू ने चौककर पूछा—जैसे नीद से उठा हो—

"कौन है ?" और उठकर उसने दरवाजा खोला—

"अरे आप ? बिसेसर बाबू ? आइए-आइए, भीतर चले आइए।" बिसेसरसिह के भीतर आने पर उसने दरवाजा बन्द कर लिया। बिसेसरसिंह ने कृत्रिम गभीर स्वर मे कहा—

"बडे जोर की वर्षा हो रही है। देखते है कि इस साल धान की फसल बिल्कुल चौपट हो जायेगी।"

"जी हाँ। आसिन का महीना है लेकिन सावन-भादो भी मात खा गया। समय ही खराब जा रहा है बिसेसर बाबू। आप बैठते क्यो नही है। बैठिए न। आज तो आप पहली बार गरीब की कुटिया मे पधारे है। क्या बज रहा होगा ? बरसात मे समय भी मालूम नही होता।"

"यही करीब सवा दो का समय होगा।"

"सवा दो ?" जग्गू चौककर बोला—"मैने समझा कि सुबह हो गयी। लेकिन लेकिन इतनी रात को आप····· "

"मै तुम्हारे पास ही आया हूँ।" बिसेसरसिह ने अपनी विशेष मुस्कराहट से कहा।

"आज्ञा कीजिए।" जग्गू को अपनी आकस्मिक विनम्रता पर आप आश्चर्य हो रहा था। बिसेसरसिंह समझ रहे थे कि उस औरत के चलते और चूँकि वह स्वय उसकी गुमटी में पधारे है—जग्गू इतना विनम्र हो रहा है। उन्होंने हँसते हुए कहा—

"बस आज्ञा ही समझो जग्गू भाई। अब तो तुम मेरे अपने आदमी हो। तुमसे न मेरी बात छिपी है और न मुझसे तुम्हारी। बात यह है कि आज ढाई बजे की मालगाड़ी से कुछ कपडे की गाँठे काटकर गिरायी जायेगी, और वह माल तुम्हारी गुमटी के पास ही गिरेगा। तुम्हे कोई एतराज तो

नही है ?"

"नही, बिसेसर बाबू, ऐसा न कीजिए। यदि आप नही मानते तो गुमटी से थोडी दूर पर यह सब कुकर्म करवाइए। आखिर मै रेलवे का नौकर हूँ। मेरी नौकरी पर खतरा आ जाये तो ?" जग्गू के स्वर मे किंचित दीनता थी।

"अरे तो मै क्या मर गया हूँ ? जितनी तनख्वाह तुम्हे अब मिलती है उससे दसगुनी रकम हर महीने दूँगा। मर्द हूँ मर्द !" बिसेसरसिंह ने बडे रुआब से कहा।

"आप की कृपा चाहिए।"

"अच्छा तो मै बाहर चलता हूँ। तुम बेफिक्र रहो। जरा माल हाथ आ जाये फिर अभी मिलूँगा। यदि यहाँ आस-पास मे कोई गाँठ गिरे तो ध्यान रखना।" और दीवार से लगी बदूक कधे पर लटकाकर, बिसेसरसिंह बाहर हो गये। मुनिदेव खाट के नीचे से बाहर निकलकर मोखे से झाँकने लगा। कुछ देर बाद वह मुडकर बोला—

"वह तो गया। मै अब, लाइन के उस पार, झुरमुट मे छूमतर हो जाता हूँ। ज्यो ही बिसेसरसिंह दुबारा तुम्हारे पास आयेगा कि उसे तुम गुमटी मे ले आना। फिर मै भी पहुँच जाऊँगा।" यह कहकर उसने अपना छाता उठाया और दरवाजा खोलता हुआ घूमकर वह कहता गया—"इजिन की रोशनी देखते ही तुम भी बाहर आ जाना और जब तक बिसेसरसिंह यहाँ आये नही—बाहर ही रहना।"

मुनिदेव बाहर निकलकर कुछ देर इधर-उधर देखता रहा, फिर जल्दी से लपककर, रेलवे लाइन के उस पार, नीचे चला गया। जग्गू कुछ देर गुमटी मे बेसब्री से चक्कर काटता रहा कि उसे गाडी की धमक का अन्दाजा हुआ। मोखे से उसने झाककर देखा तो इजिन की रोशनी दिखायी पडी। वह बाहर निकल आया। थोड़ी ही देर मे इजिन करीब आ गया। गुमटी से थोडी दूर पर ही एक गाँठ गिरी और लुढकती हुई नीचे चली गयी। ठीक गुमटी के सामने झनाक् से कोई चीज गिरी। जग्गू ने देखा कि एक आदमी

मालगाडी के एक बन्द डिब्बे से नीचे कूदने के क्रम मे है—और वह कुछ ही दूर जाकर कूद भी पडा और दौडता हुआ अँधेरे मे गायब हो गया। जग्गू ने गाडी से फेकी गयी वस्तु को उठाकर देखा—एक बडी बाल्टी थी जिसमे लगभग ढाई हाथ लम्बा मजबूत रस्सा बँधा हुआ था और रस्से के ऊपरी छोर पर एक हुक लगा हुआ था। जग्गू समझ गया कि इसी हुक को गाडी मे अटकाकर मुनेश्वर जी बाल्टी मे खडे हो गये होगे और डिब्बे का रिविट काट दिया होगा। भय और ग्लानि से जग्गू मन-ही-मन काँप रहा था। उसे मुनिदेव पर भी इस समय क्रोध आ रहा था। उसने ही ऐसे खराब काम मे उसे फँसाया था। उसे शारदा पर भी क्रोध आ रहा था जिसके चलते वह कायर और नपुसक बनने पर मजबूर हुआ।

जग्गू काफी देर तक गुमटी के बाहर चहल-कदमी करता रहा। रेलवे लाइन के उत्तर दूर-दूर तक टार्च की रोशनी जलती-बुझती रही। करीब आधा घटे बाद एक बैलगाडी गुमटी पर पहुँची। जग्गू ने फाटक खोल दिये। फिर दूसरी गाडी आयी, तीसरी आयी, चौथी और पाँचवी भी आयी और उन्ही के साथ बिसेसरसिह भी आये। जग्गू वही खडा था। बिसेसरसिंह के पास आते ही जग्गू ने घृणा-मिश्रित गभीरता से कहा—

"एक गाँठ यही पास में गिरी है।"

"हाँ-हाँ, मुझे मालूम है। अभी दस मिनट मे दूसरी बैलगाडी आती है। आज मुनेश्वर ने तो कमाल कर दिया। मिनटो मे बहुत-सी गाँठे गिरा दीं।" बिसेसरसिह उल्लासपूर्वक बोले जा रहे थे—"चलो, तब तक भीतर गुमटी मे बैठा जाय।"

"चलिए।"

"ओ हो यह वर्षा है या प्रलय!" गुमटी मे पहुँचकर बन्दूक दीवार के सहारे खडी करते हुए बिसेसरसिह बोले।

"यह गाँठ भी यहाँ से जल्दी हट जाती तो अच्छा था।" जग्गू ने चिंतातुर होकर कहा।

"अभी हट जायेगी। तुम चिंता मत करो। असल मे मैंने सोचा कि

पाँच गाडी मे अधिक माल कट नही पायेगा लेकिन, मेरे चेले सब के सब अब तो कमाल करने " अभी वाक्य पूरा भी नही हुआ था कि दरवाजे पर थपथपाहट हुई। बिसेसरसिह ने उछलकर बन्दूक उठा ली। जग्गू ने सहज भाव से उनके हाथ से बन्दूक लेकर दीवार के सहारे रखते हुए कहा——

"बन्दूक वही रहने दीजिए और चुपचाप बैठिए। कोई बाहर का आदमी होगा तो आपको इस हालत मे देखकर शक करेगा।" बिसेसरसिह ने कोई विरोध नही किया। जग्गू के दरवाजा खोलते ही मुनिदेव भीतर धँस आया—

"ओफ, इस बारिश ने तो अरे, यह कौन है ?" मुनिदेव ने अनजान बनने के अभिनय मे चौककर पूछा।

"बाबू बिसेसरसिह है।" जग्गू ने कहा।

"बाबू बिसेसरसिह ? इतनी रात को तुम्हारे यहाँ ?"

"इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? जैसे तुम इतनी रात को यहाँ आये हो वैसे मै भी आ सकता हूँ।" बिसेसरसिह थोडा चिढकर बोले। मुनिदेव की नजर बन्दूक पर पडी। उसने बन्दूक अपने हाथ मे ले ली और कहा——

"मै तो मजदूर आदमी हूँ। कल ही गाहको को कपडे देने का वायदा कर रखा है इसलिए, कुछ देर घर पर बिताकर, अभी से मशीन चलाने स्टेशन जा रहा हूँ। लेकिन आप ?" बिसेसरसिह की बोलती बन्द हो गयी।

जग्गू ने कहा——

"आपने अभी मालगाडी से कुछ गाँठे गिरवायी है। उसी को ढुलवा रहे है।"

"वाह, तब तो बडी प्रसन्नता की बात है। फिर तो हम लोगो को भी कुछ ईनाम मिलना चाहिए।" मुनिदेव ने किंचित नम्रता से कहा। बिसेसर-सिह ने देखा कि अभी क्रोध करने से बात बिगडेगी ही इसलिए वह स्नेह-पूर्वक बोले——

"हाँ-हाँ, जरूर मिलेगा।"

"फिर निकालिए।"

"क्या बच्चो-जैसी बाते करते हो ? पास मे रुपया लेकर कौन चलता

है ? वह भी इतनी रात को ? कल दे दूंगा। विश्वास करो।"

"विश्वास ?" मुनिदेव ने व्यग्य से पूछा—"ऐसे काम मे कोई किसी का विश्वास कर सकता है ?"

"क्यो नही ? मै तो विश्वास पर ही ज़िन्दा हूँ। पूछ लो जग्गू भाई से।"

"जग्गू भाई से क्या पूछना ? यह तो बमभोले है। मै आपसे ही पूछता हूँ—क्या आप मुझ पर विश्वास करते है ?"

"क्यो नही ?"

"नही करते।"

"मैने तो तुमसे कहा कि मै विश्वास पर ही ज़िन्दा हूँ।"

"अच्छा तो कागज पर, जो मै कहता हूँ, लिख दीजिए।" मुनिदेव ने कागज-कलम देते हुए कहा। जग्गू अवाक् दोनो को देख रहा था।

"क्या लिख दूँ ?"

"लिखिए—लिखवाता हूँ। प्रिय मुनेश्वर, आज रात ढाई बजे पहुँचने वाली मालगाडी से जो तुम गाँठे गिरानेवाले हो, वे देसौरा गुमटी से काफी दूर लाइन के उत्तर मे गिराना क्योकि जगनारायण चौधरी गुमटीवाला बहुत बदमाश है। वह दिन-रात जगा ' "

"यह सब क्या लिखवा रहे हो ?" बिसेसरसिह ने घबराहट छिपाने के लिए कृत्रिम हँसी हँसकर पूछा। मुनिदेव ने छूटते ही कहा—

"आप मुझ पर विश्वास कीजिए। जिस रोज आपने विश्वासघात किया उसी रोज मै भी विश्वासघात करूँगा। कल आप चार हजार रुपया दे देगे तो आपको यह चिट्ठी सौप दूंगा। लिखिए, देर मत कीजिए वर्ना अच्छा नही होगा।"

"अच्छा लिखाओ।" बिसेसरसिह ने होठ काटते हुए कहा।

"लिखिए—क्या लिखा था ? जगा रहता है। पिछली बार जब मैने मालगाडी रोककर अनाज लूटा था उस रोज वहुत मुश्किल से जग्गू को बेवकूफ बनाकर गुमटी पार किया। नीचे अपने दस्तखत कीजिए।"

बिसेसरसिह ने कोई उपाय न देखकर दस्तखत कर दिए। मुनिदेव ने

वह चिट्ठी लेकर अपनी जेब के हवाले की और कहा—

"आप विश्वास रखिए, जब तक आप हम लोगो के साथ ईमानदारी से पेश आते रहेगे, तब तक हम लोग आपके इशारे पर चलते रहेगे।" बिसेसरसिह ने देखा कि इस समय चालाकी से काम लेने के सिवा और कोई रास्ता नही है इसलिए वह हँसकर बोले—

"मुझे तुम लोगो पर पूरा विश्वास है। तुम्हे और जग्गू को मै अपना सगा भाई मानता हूँ। तुम लोग मुझे भले ही पराया समझो।'

इसी समय कुलदीप पहुँच गया। गाँठ उठाकर गाडी पर लाद दी गयी। बिसेसरसिंह ने कुलदीप के कान मे कुछ कहा। लेकिन मुनिदेव बन्दूक लिए दूर से ही सब-कुछ सावधानी से देख रहा था। बिसेसरसिह ने मुनिदेव के पास आकर अपनी बन्दूक माँगी लेकिन मुनिदेव प्रेमपूर्वक टाल गया। वह जानता था कि बन्दूक के हाथ से जाते ही जान भी चली जायेगी।

बिसेसरसिह झख मारकर चले गये। मुनिदेव खुशी से उछलता हुआ बोला—

"देखा कैसी बेजोड नकेल हाथ लगी है?"

"लेकिन इस पाप मे तो अब हम लोग भी भागीदार बन गये।"

"कैसा पाप? जब पुलिस बेईमान है, रेलवे अधिकारी चोर है, तब तुम्हारे धर्मात्मा बनने से क्या होता है? ऐसी स्थिति मे जो कुछ हम लोगो ने किया उससे अच्छा काम और कुछ नही किया जा सकता था।" मुनिदेव ने गाँव जानेवाली सडक की ओर देखते हुए कहा। जग्गू अन्यमनस्क भाव से गुमटी मे चला आया। मुनिदेव की बाते और तर्क उसकी समझ मे नही आ रहे थे। जो कुछ हुआ वह तो होता ही रहता है लेकिन मुनिदेव ने जिस ढग से पत्र लिखवाया और रुपये की माँग की—जग्गू को वह ढँग और बात पसन्द नही आयी। ससार मे ही सब अच्छे-बुरे कर्म होते रहते है, लेकिन, जग्गू उन बातो से अलग-थलग रहता आया था। वह अभी भी अपने को अलग मानता था लेकिन उसे अपनी निष्क्रियता पर ग्लानि होने लगी थी। वह खुलकर विरोध नही कर पा रहा था। निष्क्रिय तटस्थता, दायित्व से

मुक्ति नही देती बल्कि नैतिक पतन की ओर उन्मुख कर देती है। जग्गू चुपचाप गुमटी मे चला आया और उसके पीछे-पीछे मुनिदेव। जग्गू खाट पर बैठने लगा तो मुनिदेव ने पूछा—

"सेठ महगीराम के करिश्मे नही देखोगे ?"

"मै इससे अधिक कुछ नही देखना चाहता। मुझे तुम इन बातो मे न घसीटो तो अच्छा हो," जग्गू ने अनमने भाव से कहा। मुनिदेव अपने स्वभाव के अनुसार तमककर बोला—

"इस बात मे तुमने मुझे घसीटा है या मैने तुम्हे घसीटा है ?"

"लेकिन मैने सौदेबाजी कभी नही की।"

"तुमने बार-बार सौदेबाजी की है। जब पहली बार डाका पडा तब तुमने खुलकर क्यो नही विरोध किया ? राघव ने तुमसे गवाही देने को कहा लेकिन तुम टाल गये—क्यो ? क्या यह सब सौदेबाजी नही है ? बल्कि मैने सौदेबाजी नही की है। अब तुम चाहो तो इस पत्र को दिखाकर बिसेसरसिह को गिरफ्तार करा सकते हो, उसे इस राह से हटने पर मजबूर कर सकते हो।"

"कुछ भी हो, तुम्हे रुपया नही लेना चाहिए। यह पाप है।" जग्गू ने दुर्बल स्वर मे कहा। मुनिदेव समझाता हुआ बोला—

"फिर वही बात ! प्यारे, मै रुपया नही लेकर कौन-सा पुण्य करूँगा ? माल तो लूट ही लिया गया, पुलिस भी नही आयी और अभी पाप का घड़ा भी नही भरा है कि अच्छी तरह फूटे। इसलिए, तुम चुपचाप देखते चलो कि मै क्या करता हूँ।"

जग्गू चुप रहा। दोनो मित्र काफी देर तक वही बैठे रहे। सबेरा हो गया। मुनिदेव हर्ष और उल्लास से भरा था और जग्गू पाप-पुण्य की उलझनो मे फँसा बेचैन हो रहा था। बीच की राह सत्य-असत्य के समानान्तर चलती है इसलिए वहाँ सतोष नही, निरर्थक लोभ का उदय होता हे जो मनुष्य को चैन नही लेने देता।

सूर्योदय के साथ ही वर्षा थम गयी। मुनिदेव अपनी दुकान पर चला गया। जग्गू तन्द्रावस्था मे खाट पर पडा रहा—गुमटी की छत देखता हुआ। गुमटी की छत अर्द्धवृत्ताकार खडो मे विभक्त थी। उन पर अधूरी तस्वीरे बनती-बिगडती रही !

८

"कोई साहब हैं ?"

"यह कौन शहरू आया !" जग्गू चौककर जिज्ञासा से भर उठा। देखा—दरवाजे के सामने ही पैंट-कोट पहने एक जेन्टिलमैन खडे थे—नाक जरूरत से ज़्यादा लम्बी और आगे की ओर झुकी हुई, आँखे बडी-बडी लेकिन अर्द्ध-उन्मीलित, लम्बा चेहरा, बीच से काढे हुए कघी के बूते पर दबे-उठे बाल, गेहुआँ रग, लम्बी-दोहरी देह। जग्गू, अँगोछा कधे पर रखता हुआ, लपककर बाहर निकला तो देखा—जेन्टिलमैन के पीछे फौजा खलासी, सिर पर चमड़े की अटैची और होलडॉल रखे, कह रहा था—

"मुँह क्या देख रहे हो जग्गू भइया ? यह तुम्हें ही ढूँढते हुए आये है।" फिर भी जग्गू बकर-बकर ताकता रहा। जेन्टिलमैन बडी गभीरता से बोले—

"आपके पास राजस्थान की कोई औरत आकर ठहरी है ?"

"जी हाँ।" जग्गू ने सोचते हुए कहा।

"वह कहाँ है ? मुझे उससे मिलना है।" जेन्टिलमैन ने पैंट की जेब मे दोनो हाथ डालते हुए पूछा। जग्गू को जेन्टिलमैन के बात करने का ढग कुछ अच्छा नही लगा। बोला—

"आइये मेरे साथ।"

शारदा मुँह धो रही थी। जेन्टिलमैन को देखते ही आत्म-विस्मृत-सी हो गयी, ब्रुश उसके हाथ से नीचे गिर गया, उसके चेहरे पर गहन मुग्धता के भाव उभर आये और उसके होठो पर खिलखिलाहट के अतिरेक का स्पष्ट सकेत, कँपकँपी के रूप मे, प्रकट हो उठा। जेन्टिलमैन पूर्ववत गभीर बना रहा। उसने घर-आँगन मे नज़र घुमाकर देखा, उसके चेहरे पर किंचित उपेक्षा का भाव अकित हो उठा और शारदा को एक बार ऊपर से नीचे तक

देखकर वह ब्रह्मदेव से बोला—

"बाहर से सामान ले आओ।"

जग्गू की ओर किसी का ध्यान नही था। यह बात समझते जग्गू को देर नही लगी कि यही वह पुरुष है जिसका जादू शारदा के सिर पर चढ कर बोल रहा है। उसके मन को बात कुछ जँची नही। उसे लगा कि वह व्यर्थ ही वहाँ खडा है—उपेक्षित। इसलिए चुपचाप बाहर निकल आया। हर चीज का रहस्य, खुलने के बजाय उसके मन की आँखो के सामने और दुरूह, और जटिल और अभेद्य बनता जा रहा था। जग्गू की मानसिक, अवस्था ठीक वैसी ही हो रही थी जैसी सैकडो की भीड मे बैठे उस बच्चे की होती है जो किसी जादूगर को कभी साँप चबाते देखता है, तो कभी शीशा कडकडाकर खा जाते। उसे सब-कुछ रोमाचकारी, भयप्रद, कौतूहलपूर्ण और वीभत्स लग रहा था। और अन्त मे—'यह ससार ही एक माया है—' ऐसा सोचकर वह बात की कडी ही छोड देता।

नित्यक्रिया से निवृत्त होकर जग्गू खाना बनाने बैठा ही था कि रूपनसिह के घर की ओर से लोगो का शोर-गुल सुनायी दिया। बाहर निकलकर उसने देखा कि बहुत से लोग रूपनसिह के घर की ओर भागे चले जा रहे है। शोर बढता ही गया। कुछ देर तक जग्गू गुमटी पर ही खडा रहा लेकिन शोर-गुल के बीच से जब चीख-पुकार और औरतो का रोना-चिल्लाना भी सुनायी पडने लगा तब जग्गू भी उस ओर लपका।

जग्गू के वहाँ पहुँचते-पहुँचते पूरा गाँव इकट्ठा हो गया था। रूपनसिह के सिर से रक्त की एक पतली हलकी धार बहकर ऊपरी होठ तक आयी हुई थी। वह रूआँसा चेहरा लिये, अपनी क्षीण आवाज मे कुछ कहने की कोशिश कर रहा था लेकिन अपनी बात कह नही पाता था, क्योकि बिचित्तरसिह हुहुआते हुए, वहाँ पहुँच जाते और फिर तू-तू, मै-मै के शोर-गुल मे रूपनसिह का क्षीण स्वर डूब जाता। एक हगामा मचा हुआ था। औरतो ने तो अपनी चीख-पुकार से आकाश सिर पर उठा लिया था। गोपाल फेटा बाँधकर इधर-उधर कूद रहा था और बिचित्तरसिह आँखे लाल-लाल किये, हाथ

भॉज-भॉजकर रूपनसिह के घर की औरतो से झगड रहे थे। रूपनसिह सबो से अपनी फरियाद करने का उपक्रम-मात्र करते कि बिचित्तरसिह गरजते हुए वहाँ आ पहुँचते। बेचारा कमजोर रूपनसिह इतना ही कहकर रह जाता—

"हॉ-हॉ, तो मुझे लूट लो, गॉव से निकाल दो। लेकिन याद रखो, भगवान सब देखता है।" यह सुनकर बिचित्तरसिह और गरम हो उठते।

जग्गू को देखते ही रूपनसिह ने उसके पास अपनी फरियाद करनी शुरू की ही थी बिचित्तरसिह बीच मे कूद पडे। गोपाल भी उछलकर वहॉ आ पहुँचा। जग्गू को यह बात बहुत बुरी लगी। वह तमककर बोला—

"आप दोनो बाप-बेटे मिलकर इस गरीब को चबा क्यो नही जाते? इस तरह केवल झॉऊ-झॉऊ करने से क्या होगा?" जग्गू की यह बात सुनकर विचित्तरसिह और गोपाल दोनो ही, क्षणभर के लिए ठिठक गये। जग्गू उनका अपना आदमी होकर भी ऐसी बात बोल सकता है—ऐसी उनको आशका नही थी। जग्गू ने शिकायत के स्वर मे कहा—

"आप लोग इनकी बात सुनने नही देते और खुद ताकत के वल पर अत्याचार करते फिरते है। गरीब पर दया भी नही आती!" बिचित्तरसिह को भी क्रोध आ गया। उन्होने व्यग्य मे कहा—

"तुम बडे न्यायी और दयालु हो तो इन्हे भी अपने घर मे थोडी-सी जगह दे दो। लेकिन मेरी जमीन पर कब्जा जमाने की कोशिश करेंगे तो खून हो जायेगा।" जग्गू को बिसेसरसिह की बात याद आ गयी। उसने भी व्यग्य किया—

"हॉ-हॉ, खून क्यो नही होगा? इसीलिए तो बेटे को पहलवान बनाया है। लेकिन यह मत भूलिए कि फॉसी का फन्दा मोटे गले को भी जकड सकता है।" जग्गू की इस बात से गोपाल का पौरुष धधक उठा। चीखकर बोला—

"मुझे फाँसी का डर नही है।"

"अरे चुप भी रहो। कमजोर पर हाथ उठानेवाले मे इतनी हिम्मत कहॉ कि मौत का सामना कर सके। जो अपनी जान की परवाह नही करता

वह छोटी-छोटी बातो की परवाह करेगा ?"

जग्गू की बातो मे रूपनसिह को थोडी हिम्मत हुई। उसने सरोष कहा—

"मै गरीब आदमी हूँ। आज तीस वर्ष से जिस जमीन को जोतता आया हूँ, वह जमीन मुझसे ये लोग छीनना चाहते है। माना कि यह जमीन इन्ही की है लेकिन इसमे मैने मकई की फसल लगाई है, इस खेत पर मैने मेहनत की है, और अब ये लोग कहते है कि खेत मे मत घुसो।"

"हाँ-हाँ, मेरा खेत है। मै अपने खेत मे नही घुसने दूँगा।" बिचित्तरसिह ने गरजकर कहा।

"कैसे नही घुसने दीजिएगा ? अब इसका फैसला कचहरी मे होगा।" रूपनसिह ने गरजकर प्रत्युत्तर दिया—"फसल काट लेने पर आप जमीन वापस ले लेते तो मुझे भी कोई एतराज नही था लेकिन अब तो जमीन भी नही लेने दूँगा। आपका न्याय नही चलेगा। सारा गाँव जानता है कि मै तीस साल से यह जमीन जोतता हूँ और इसी के एक हिस्से मे मेरा घर भी है जिसका एक छप्पड आपने अभी उजाड दिया है।"

अब गाँववाले भी कुछ-न-कुछ बोलने लगे। जग्गू के विरोध ने तर्क-वितर्क की एक लहर उठा दी। भीड तो अनुकरण करना जानती है। चारो ओर से तरह-तरह की आवाजे उठने लगी। लोग दोनो पक्ष को समझाने-बुझाने लगे। कुछ लोग बिचित्तरसिह को समझा-बुझाकर वहाँ से हटा ले गये। लेकिन स्थायी वैमनस्य का बीज, जो किसी ने जान-बूझकर बिचित्तरसिह और रूपनसिह के मन मे डाल दिया था—अकुरित हो उठा। जग्गू चुपचाप गुमटी पर लौट आया और रूपनसिह थाने चले गये।

उसी दिन शाम होते-होते दारोगा गाँव मे आ धमका। तहकीकात और गवाहियाँ शुरू हुई। मुकद्मा दायर हो गया।

दारोगा के चले जाने के बाद रूपनसिह गुमटी पर जग्गू से मिलने पहुँचे। जग्गू का मन बहुत उदास था। सुबह-सुबह उसे एक नया अनुभव हुआ था। तीन-चार दिन के भीतर ही जग्गू के मन का कोमल पक्ष प्रस्फुटित

हो उठा था। शारदा ने उसके मन मे सोये शिशु को जागृत कर दिया था। अब उसके मन का शिशु बिलखता, सहारा खोजता, स्नेह और वात्सल्य के लिए ललकता, रूठता और कभी-कभी किलकारियाँ भरता। नारी का ससर्ग पुरुष मे चेतना भर देता है, भावनाओ के द्वार खोल देता है, कल्पना और द्वन्द्व की लहरे उठा देता है और तब पुरुष कभी कोमलता की ओर दौडता है तो कभी कठोरता की ओर। लेकिन प्राय सतुलन के अभाव मे मुँह के बल जा गिरता है। शारदा ने, मिलते ही जग्गू पर पूर्ण अधिकार जमाना शुरू कर दिया था। जग्गू ने उस अधिकार को बहन का भाई पर अधिकार जाना। सहोदरा बहन का प्रेम आदत, व्यवहार और सस्कार मे घुला-मिला रहता है। इसलिए, उसके प्रति भाई जागरूक नही रहता। लेकिन शारदा अनायास ही मिली हुई एक अनजान सरल सुन्दरी थी। यहाँ आकर्षण मुख्य था—सस्कार गौण, यहाँ भावना तीव्र थी व्यवहार मद्धिम और कोमलता गहरी थी लेकिन कठोरता रचमात्र भी नही। जग्गू ने एक शाम खाना नही खाया तो शारदा रूठ गयी थी लेकिन आज सुबह से जग्गू की किसी ने खोज-खबर नही ली। जग्गू के मन का शिशु बिलख-बिलखकर रो रहा था। उसके मुँह में अन्न का दाना गये चौबीस घटे से ऊपर हो रहा था।

रूपनसिह का ऐसे समय आना उसे अच्छा नही लगा। लेकिन रूपन-सिह कुछ उम्मीद लेकर आये थे। उन्होने बिना कहे-पूछे बैठते हुए कहा—

"मामला तो दर्ज हो गया। अब फैसला भगवान के हाथ मे है।" जग्गू कुछ नहीं बोला।

कुछ देर की चुप्पी के बाद रूपनसिह ने कहा—

"अब चिता करने से काम तो चलेगा नही। उद्यम करना है उद्यम! लेकिन सच कहता हूँ जग्गू, यदि तुम नही आते तो वे दोनो बाप-बेटे मुझे अधमरा ही कर देते।"

जग्गू फिर भी चुप रहा। रूपनसिह ने सोचा कि मेरे ही दु ख से यह इतना दुखी हो रहा है। अत दुखी स्वर मे बोले—

"मैने आज जाना कि कौन मेरा अपना है और कौन पराया? उस दिन

बिसेसरसिंह तुम्हारे बारे मे तरह-तरह की बाते कह रहे थे लेकिन मैंने विश्वास नही किया।" जग्गू ने चौककर रूपनसिंह को देखा। रूपनसिंह बोलते गये—"हाँ जग्गू! मैंने बिल्कुल विश्वास नही किया। मै तो तुम्हे बचपन से जानता हूँ। ठीक अपने बाप-जैसा स्वभाव पाया है तुमने। वह भी तुम्हारी तरह दयालु थे। क्या हुआ यदि एक अबला को अपने घर मे शरण दे दी तो? ठीक किया। मैंने बिसेसरसिंह के मुँह पर कह दिया कि बिना जाने-समझे, उस बेचारे पर लाछन लगाना ठीक नही है। हाँ, साफ कह दिया मैंने। उन्हे मेरी बात बुरी लगी। लेकिन उससे क्या। माना कि वह भी मुझ पर बहुत दयालु है, लेकिन, गलत बात मै कैसे मान लूँ? ठीक कहता हूँ कि नही जग्गू?" जग्गू अवाक् रूपनसिंह को देख रहा था। और उसकी आँखो के आगे रहस्य का पर्दा किंचित काँप रहा था। जग्गू के सामने पश्चिम मे सूरज डूब रहा था, क्षितिज के पास बादलो की तहे—गहरी लाल और बैगनी रग मे रगी, नीले आकाश की किनारी-जैसी लग रही थी। घने, अँधियारे, खामोश पेड, डूबते सूरज को सिर झुकाये विदा दे रहे थे। पता नही, जग्गू प्रकृति की रहस्यमयता मे डूब रहा था या आदमी के कारनामो को परखने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन उस अर्द्धशिक्षित ग्रामीण के चेहरे पर किसी गहरी वेदना, गहरे आनन्द और दुरुह व्यग्य की अभिव्यक्ति स्पष्ट थी। उसके चेहरे की अभिव्यक्ति प्रसिद्ध चित्र-कृति 'मोनालिजा' की अभिव्यक्ति की दुरुहता को अर्थ दे रही थी।

रूपनसिंह जग्गू की चुप्पी देखकर हैरान थे। उन्होने अपनी व्यस्तता का जग्गू का बोध कराने के लिये कहा—

"अच्छा जग्गू, अभी तो चलता हूँ। और कई गवाह ठीक करने है। तुम्हे कचहरी मे क्या कहना है यह कल बता दूँगा।"

"मुझे आपके मुकद्दमे से कोई मतलब नही।"

जग्गू अचानक ही गम्भीर स्वर मे बोल उठा। रूपनसिंह चौक उठे—

"क्या कहते हो जग्गू? तुम्हारे और बिसेसरसिंह के बूते पर तो मैंने

मुकदमा किया है। बिसेसरसिह ने भी गवाह बनने से इंकार कर दिया है लेकिन वह कम-से-कम रुपये-पैसे की मदद देने को तो तैयार ही हो गये है।"

"मै आपकी किसी तरह मदद नही कर सकता।" जग्गू ने पूर्ववत् गभीरता से कहा। रूपनसिह ने पैंतरा बदला—

"यह कैसे हो सकता है? क्या तुम भी बिचित्तरसिह से डरते हो?"

"मै किसी से नही डरता। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि हर गलत काम मे मै शामिल होता चलूँ।" जग्गू झल्ला उठा।

"लेकिन मुझ पर तुम्हे दया करनी ही होगी जग्गू। तुम्हे मै अपने बेटे की तरह प्यार करता हूँ। मेरी छोटी सी विनती नही मानोगे?" रूपन-सिह ने गिडगिडाकर कहा। जग्गू पसीज गया। बोला—

"चलिए मै सुलह करवा देता हूँ। मुकदमा लडने से आपको कुछ नही मिलेगा। आप बर्बाद हो जाइएगा।"

"सुलह? सुलह तो मै मरकर भी नही करूँगा। मै बर्बादी से नही डरता। अपनी सारी जमीन बिसेसरसिह को लिख दूंगा लेकिन बिचित्तर-सिह को चैन नही लेने दूंगा।"

"आप दोनो बिसेसरसिह के हाथो बिक गये है। यदि मेरी बात पर ध्यान नही दीजियेगा तो पछताइएगा।"

"अरे जाओ-जाओ। आज का लौडा मुझे उपदेश देने आया है। बिसेसर-सिह ठीक ही कहता था कि तू उस लडकी को कही से उडाकर ले आया है।" यह कहकर गुस्से मे कॉपते हुए रूपनसिह तमकते हुए चले गये। जग्गू को उनकी बुद्धि पर न तो हँसी आयी और न रोना आया। उसके होठो पर वही 'मोनालिजा' के होठो पर की मुस्कराहट जैसी दुरूहता, दयनीयता और व्यंग्य काँपता रहा। सामने क्षितिज पर के बादल की तहे, पेड-पौधे, प्रकाश-छाया, घुल-मिलकर अधकार मे एकाकार हो गयी थी। जग्गू गुमटी मे गया और हाथबत्ती जलाकर रामायण पढने बैठ गया—

नर पीड़ित रोग न भोग कही। अभिमान विरोध अकारन ही।

लघु जीवन सबतु पच दसा। कलपात न नास गुमानु असा

"आज बहुत भक्ति-भाव उमड रहा है?" मुनिदेव आते ही बोल पडा। जग्गू ने रामायण बन्द कर दी और मुनिदेव को एकटक देखना शुरू कर दिया।

"ऐसे क्या देख रहे हो?" मुनिदेव ने आश्चर्य से पूछा। जग्गू मुस्कराने लगा, बोला—

"देख रहा हूँ कि तुममे कितने दिन जीने का गुमान है।"

"बस तो ऐसा मुझसे ही पूछ लेते? इस तरह देखने का कष्ट करने की क्या जरूरत थी।" मुनिदेव मजाक मे बोलता रहा—

"मुझ मे पाँच वर्ष तक जीने का गुमान है। जब तक मुझमे जवानी है।" यह कहकर मुनिदेव ने नोटो का बन्डल निकालना शुरू किया।

"आखिर तुमने नही ही माना।" जग्गू के स्वर मे विषाद था।

"इसमे मानने न मानने की क्या बात थी? लो रखो।"

"नही, मुझे नही चाहिए। तुम भी नही लेते तो अच्छा था।" जग्गू ने खाट से उठते हुए कहा—"यह धन तुम्हारा नही है।"

"फिर किसका है? बिसेसरसिह का?" मुनिदेव ने मुँह बनाकर पूछा। जग्गू अपने दोनो हाथ पीठ पर बाँधता हुआ बोला—

"नही, उसका भी नही है। यह पाप का धन है।"

"और पुण्य का धन वह है जिससे न हमारा पेट भरता है और न देह ढकती है।" मुनिदेव के स्वर मे क्रोध और व्यग्य था। वह बोलता गया—

"तुम्हारे लिए तो ससार मे कोई नही है। गरीबी का दुख तुम क्या जानो। अगर भूख का सामना करना पडता तो मालूम हो जाता कि आज के जमाने मे पाप का धन कौन है और पुण्य का धन कौन! खैर, तुम्हे नही लेना है तो मत लो लेकिन मै तुम्हारे-जैसा कायर नही हूँ।"

"मै कायर हूँ?" जग्गू ने तमककर पूछा।

"हाँ, तुम परले दर्जे के कायर हो! जो खुलकर पाप-कर्म का विरोध

नही कर सकता उसे उपदेश देने का अधिकार नही है। तुमने दो बार माल-गाडी लुटवायी है और यदि मेरी सहायता नही लोगे तो जिन्दगी-भर यही पाप-कर्म करवाते रहोगे !"

जग्गू फिर चुप हो गया। उसे लग रहा था कि मुनिदेव जो कुछ कह रहा है सत्य है। फिर भी तथ्य को स्वीकार करने की उसमे शक्ति नही थी। इधर चन्द रोज मे ही वह तन-मन से बहुत दुर्बल हो गया था। वह चुपचाप उदास मन से खाट पर बैठ गया। उसके मन की बेचैनी मुनिदेव से छिपी नही रही। मुनिदेव ने स्नेहपूर्वक कहा——

"अच्छा चलो, मेरे घर चलो ! वही बाते होगी।"

"अभी मै कही नही जाऊँगा।"

"तुम्हे चलना पडेगा।"

"मुझे इतना दुर्बल मत समझो मुनिदेव।"

"मेरे घर न जाने मे तुम्हारी कौन-सी मजबूती सिद्ध होती है ?"

"पहले मै अपने मित्रो का विरोध करना सीख लूँ, फिर शत्रुओ का भी विरोध करूँगा।" जग्गू ने हँसकर कहा। लेकिन उसकी हँसी मे दु ख था——करुणा थी।

"अच्छी बात है। अब मै चलता हूँ। रुपये की जरूरत हो तो माँग लेना।" मुनिदेव ने जाते हुए कहा।

"चिट्ठी बिसेसरसिह को वापिस कर दी ?"

"हाँ यार, चिट्ठी तो उसने ऐंठ ली लेकिन कोई बात नही। मै भी घात मे बैठा हूँ।"

"बडे भारी दुष्ट हो !"

"केवल दुष्टो के लिए।" यह कहता हुआ मुनिदेव चला गया। जग्गू ने फिर से रामायण पढनी शुरू की लेकिन उसका मन नही लगा। वह चुप-चाप खाट पर पडा रहा——न जाने कब तक !

९

दिन बीतते चले गये। इस बीच कई नयी बाते पुरानी पड गयी और पुरानी बाते ताजा हो आयी। वर्षा का मौसम खत्म हुआ। खेत मे गेहूँ-जौ के पौधे लहलहा उठे। रूपनसिह और बिचित्तरसिह मुकदमेबाजी के चक्कर मे बेहाल-फटेहाल रहने लगे। बिसेसरसिह की दिनचर्या मे या जीवन-क्रम मे कोई परिवर्तन नही आया——वही मधुर-भाषण, अफीम-सेवन, दिन मे साधु-सज्जन जसा रहन-सहन और रात होते ही दुर्भाव्य दस्यु! लेकिन रेलवे लाइन पर मिलेट्री का कडा पहरा लग जाने के कारण देसौरा की गुमटी के आस-पास उनकी गतिविधि कुछ दिनो के लिए समाप्तप्राय जैसी हो गयी।

राजस्थानी जेन्टिलमैन ठाकुर भानुप्रताप न जाने क्यो, जग्गू से कतराता फिरता। जग्गू ने देखा-महसूस किया कि यह आदमी जो कुछ भी करता है, जो कुछ भी बोलता है——सब नपातुला, जान-बूझकर, उसका परिणाम सोच-समझकर। उसके बोलने मे अनुगृहीत करने का भाव प्रबल रहता, वह अपनी बात कम करता और करता भी तो खयाली बाते करता। दो रोज, तीन रोज पर शारदा और भानुप्रताप दोनो मुजफ्फरपुर जाते, सिनेमा देखते, खरीद-फरोख्त करते और लौट आते। साथ मे ब्रह्मदेव भी होता। ब्रह्मदेव से ही जग्गू को पता चला कि ठाकुर साहब शराब खूब पीते है और उसके बाद शारदा की मरम्मत करते है। लेकिन नशा उतरते ही दोनो एक-दूसरे के फिर प्यारे हो जाते है। वे लोग कब तक यहाँ पडे रहेगे, फिर कहाँ जायेगे, क्या करेगे, इसकी चर्चा तक नही होती। जग्गू भी जान-बूझकर कुछ नही पूछता। एक दिन भानुप्रताप घूमता हुआ गुमटी पर आया और बहुत ही गभीरतापूर्वक बोला——

"आपकी जमीन मे मै एक दोमजिला मकान बनाना चाहता हूँ। वह

मकान आपके और शारदा के नाम से रहेगा। उसी मे एक तरफ गोदाम बनवाऊँगा जिससे कि यहाँ रहकर कुछ बिजनेस कर सकूँ। मेरे ख्याल से पचास-पचपन हजार मे काम बन जायेगा। आपका क्या ख्याल है?" 'पचास-पचपन हजार?' जग्गू सोचता रह गया। बोला कुछ नही। भानुप्रताप मुँह से सीटी बजाता हुआ पैंट मे दोनो हाथ डाले, घर चला गया।

जग्गू अपने घर पहुँचा। बाहर कोई नही था। भीतर बरामदे मे भानुप्रताप बैठा हुआ दाढी बना रहा था। शारदा, जमीन पर बैठी ठेहुनो मे ठुड्डी दाबे, उदासी मे डूबी थी। जग्गू आँगन पार कर सीधे बरामदे मे पहुँचा और मुस्कराता हुआ बोला—

"आज आप इस तरह उदास क्यो बैठी है?"

"आपको मतलब? इस तरह मेरे साथ बात मत किया कीजिए।" शारदा गरज उठी। जग्गू को काठ मार गया। उसे भ्रम हुआ कि शारदा कही पागल तो नही हो गयी।

कुछ देर लजाया-झल्लाया वह ठगा-सा खडा रहा। शारदा पूर्ववत ऐंठी हुई बैठी रही। सात्विक क्रोध रूप, गुण को प्रज्वलित कर देता है और दुर्भावजनित क्रोध सरल-सुन्दर को भी वीभत्स बना देता है। शारदा की विकृत आकृति जग्गू देख नही पाया और तेजी से बाहर निकल आया। जैसे और भी कई बाते उसकी समझ मे नही आती थी वैसे ही यह बात भी उसकी समझ मे नही आयी। उस दिन के बाद से वह कई रोज तक घर नही गया और न भानुप्रताप और ब्रह्मदेव ही उससे मिलने आये। जग्गू को भानुप्रताप यदि दुर्गंध लगता तो शारदा अगाध लगती। और गहराई मे एक सम्मोहन है, अनिवर्चनीय सौन्दर्य है, मूक सगीत है लेकिन रहस्य मे शुष्कता है, विराग है, दुराव और कर्कशता है। जग्गू को भानुप्रताप प्रभावित नही कर सका। एक दिन सुबह ही कोट-पैंट मे लैस भानुप्रताप गुमटी पर अचानक आ धमका। जग्गू रोटी सेक रहा था। भानुप्रताप को देखकर उठ खडा हुआ।

"मैं आज जा रहा हूँ।" भानुप्रताप ने मुस्कराते हुए कहा।

"कितने बजे की गाडी से?" जग्गू के स्वर में आश्चर्य था।

"अभी दस बजे की गाडी मे। लेकिन एक हफ्ते मे ही लौट आऊँगा। एक जरूरी काम से जा रहा हूँ। आप जरा शारदा का खयाल रखियेगा।"

"तो क्या वह नही जा रही है ?"

"नही, वह तो यही रहेगी।" भानुप्रताप ने सहज उत्तर दे दिया जैसे मामूली-सी बात हो। जग्गू खीझ और क्रोध से चुप हो रहा। क्षण-भर बाद भानुप्रताप ने कहा—

"आप घर पर ही क्यो नही खाना खाते ? मेरे जाने के बाद तो आपको वही रहना चाहिए।"

"क्या चाहिए और क्या नही चाहिए यह मै स्वय जानता हूँ।" जग्गू ने मन मे कहा लेकिन बोला कुछ नही।

भानुप्रताप उसी दिन दस बजे की गाडी से चला गया। जग्गू का मन गुमटी पर लगा नही। 'घर जाना चाहिए या नही ?' इसी द्वन्द्व से ऊबकर वह स्टेशन चला आया। उसे देखते ही राघव अपनी आदत के अनुसार उछल पडा—

"आइए जगनारायण बाबू !"

जग्गू चुपचाप एक ओर बैठ गया। मुनिदेव ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और फिर वह अपने काम मे लग गया। राघव गभीरतापूर्वक मुँह फाडकर भाषण के लहजे मे बोला—

"चारो ओर अन्याय का राज है। लेकिन कोई देखनेवाला नही है। बिसेसरसिह इस बार भी बेदाग बच गया। जानते हो, उस साले डाक्टर ने मुझे सर्टिफिकेट देने से इकार कर दिया। खैर, कभी-न-कभी तो मौका आयेगा ही। मै एक-एक को "

"फिर अपनी बकवास शुरू की।" मुनिदेव ने दाँत पीसते हुए कहा। राघव हँसता हुआ बोला—

"बकवास ! 'अच्छा, तो मै चला ही जाता हूँ। मुझे एक जरूरी काम भी है। जयहिन्द।"

राघव के चले जाने के बाद जग्गू उदास स्वर मे बोला—

"मुनिदेव, आज मुझे भग पीने की इच्छा हो रही है।"

"अभी प्रबध करता हूँ लेकिन भग ही क्यो—ताडी क्यो नही ?" मुनिदेव ने तपाक से पूछा। जग्गू हिचकिचाता हुआ बोला—

"नही, नही, ताडी नही पीऊँगा।"

"क्यो ?"

"जाति भ्रष्ट हो जायेगी और उसमे बदबू भी बहुत होती है।" जग्गू ने नाक सिकोडकर घृणा व्यक्त की। मुनिदेव उछलकर उसके पास आ गया और बोला—

"अरे आजकल बैसाख थोडे है कि ताडी से बदबू आयेगी। तुम चलो गुमटी पर। ताडी-चिखना वगैरह लेकर अभी पहुँचता हूँ।"

"नही-नही, मैं ताडी नही पीऊँगा।" जग्गू के स्वर मे दृढता थी।

"लेकिन भग तो शाम को ही पी जा सकती है।' निराश स्वर मे बोलता हुआ मुनिदेव फिर अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। जग्गू कुछ देर बाद ही वहाँ से चल पडा। गुमटी पर पहुँचकर उसके पैर अनायास ही घर की ओर बढ गये। उदारता, दया और भावुकता की बाढ के सामने दृढता का बाँध ठहर नही पाता।

शारदा, घर के भीतर वाले बरामदे मे खाट डाले औंधी पडी थी। ब्रह्मदेव, घर के बाहर, बरामदे मे रखी हुई चौकी पर सो रहा था। चारो ओर खामोशी थी। कुछ देर तक जग्गू आँगन मे खडा-खडा शारदा को देखता रहा। उसके मन मे उदासी और वैराग्य का भाव करुणा और दृढता से होड ले रहा था। अधिक देर तक वहाँ खडा रहना उसने उचित नही समझा और वह लौटने ही वाला था कि शारदा ने करवट बदली। जग्गू पर नजर पडते ही वह सकपकाकर उठ बैठी। जग्गू ने देखा कि उसकी आँखे लाल-लाल और सूजी हुई थी, चेहरा पीला पड गया था और सिर के बाल रूखे-रूखे हो रहे थे।

"तबीयत खराब है क्या ?" जग्गू ने पूछा ही था कि शारदा फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। उसने सोचा कि

भानुप्रताप शायद झगडकर चला गया है। जग्गू कुछ देर तक सकते की हालत मे खडा रहा और शारदा की काँपती हुई देह देखता रहा। ममता के उद्रेक से वह अनायास ही बोल उठा--

"भानु बाबू रूठकर चले गए हैं क्या ?"

शारदा ने सिर हिलाकर 'नही' का सकेत कर दिया। बोली कुछ नही।

"फिर क्या हुआ है ?"

"वैसे ही रुलाई आ गयी।" शारदा आँखे पोछती हुई अवरुद्ध गले से बोली।

"बिना किसी बात के भी कोई रोता है क्या?" जग्गू ने मुस्कराते हुए पास जाकर पूछा।

"आप तो जैसे जानते ही नही ?" मानवती जैसी शारदा बोली। जग्गू कौतूहल से भर गया क्योकि उसे कुछ भी पता नही था। उसने पूछा—

"मै आपके रोने का कारण कैसे जान सकता हूँ भला ? दूसरो की बात ता दूर, मै अपनी बात भी नही जान पाता।"

"मै कोई दूसरी हूँ ?" शारदा बच्चो-जैसी क्रुद्ध हो उठी। जग्गू सकपका गया। बोला—

"नही, मेरा मतलब यह नही है। बात यह है कि मन तो सबका अलग-अलग है। फिर आपके मन की बात मै कैसे जान सकता हूँ ?"

"आप यदि मुझे अपना समझते है तो मेरे मन की बात अवश्य जान सकते है।"

"असम्भव।" जग्गू को वह बात याद आ गयी जब शारदा ने उसे भानुप्रताप के सामने डपट दिया था। जग्गू बोलता गया—"मेरे समझने या नही समझने से ही तो सब-कुछ नही हो जाता। आप क्यो खुश है, क्यो नाराज हैं—यह मै कदापि नही जान सकता।"

"मै तो आपके मन की बात जान सकती हूँ।" शारदा ने मुस्कराते हुए कहा। जग्गू किंचित व्यंग्य से बोला—

"आपकी बात कुछ और है। मै तो देहाती आदमी हूँ। अब मै यह कैसे

समझूँ कि अभी-अभी आप क्यो रो रही थी और अब क्यो मुस्करा रही है ?"

"देहाती के साथ-साथ आप बमभोले भी है। आप अपने किसी विवाहित मित्र से पूछिएगा तो वह बता देगा।"

"जब मै नही जान पाया फिर मेरा मित्र कैसे जानेगा ?"

"उससे कहिएगा कि···कि आज जब ठाकुर साहब चले गये तब शारदा रो रही थी।" यह कहकर शारदा लजा गयी। उसने तलहथियो से अपनी आँखे बन्द कर ली। जग्गू हँसता हुआ बोला—

"ओ हो, तो यह बात हे! भई, मै अनुभवहीन आदमी हूँ। इसके अलावा, आपका स्वभाव कुछ ऐसा है कि· "

"देखिए, आप फिर मेरे स्वभाव को कोसने लगे।"

"नही-नही मै कोस नही रहा हूँ। मै तो आपसे कह रहा था कि किसी के स्वभाव को समझने के लिए समय लगता है।"

"लेकिन मुझे आपको समझने मे थोडी देर भी नही लगी। हाँ, यह दूसरी बात है कि जो कुछ मै समझ पायी हूँ वह कुछ दिन बाद नही रहे।"

जग्गू मन मे सोच रहा था कि यह लडकी कैसी विचित्र है। कभी हँसती है, कभी रोती है तो कभी झल्ला उठती है · 'तिरिया चरित्तर' क्या इसी को कहते है ? लेकिन इसके मुखमडल पर भोलापन का भाव सर्वदा वर्तमान रहता है। जग्गू फिर क्षणिक कडुवाहट से घुट रहा था। वह अपने मन का भाव छिपा नही सका और बोला—

"मै गिरगिट की तरह रग बदलना जानता नही। मुझमें ऐसी बीमारी होती तो "जग्गू आगे के शब्द बोल नहीं पाया।

"तो क्या होता ?" शारदा ने विनोद-मिश्रित कौतूहल से पूछा।

"तो ? जाने दीजिए। क्या कीजिएगा सुनकर।"

"अब तो आपको बताना ही पडेगा।" शारदा ने जिद्द पकड ली। जग्गू असमंजस मे पड गया कि इसी समय बाहर से गोपाल की पुकार सुनायी दी। गोपाल और बिचित्तरसिह से उन दिनो जग्गू मन-ही-मन चिढा हुआ था लेकिन ऐसे अवसर पर गोपाल का आना उसे वरदान जैसा लगा। उसके

बाहर पहुचते ही गोपाल बोला—

"बाबू आपको बुला रहे है।"

"किसलिए?"

"यह मुझे नही मालूम।"

जग्गू क्षण-भर कुछ सोचता रहा। फिर गोपाल के साथ हो लिया। रास्ते मे गुरुजी का घर पडता था। वैसे उनका नाम था रामखेलावन मिश्र लेकिन इलाके मे वह गुरुजी के नाम से ही विख्यात थे। गुरुजी की उम्र लगभग अस्सी वर्ष होगी। वह उस गाँव के भगिनमान थे। सन की तरह सफेद बडी-बडी मूँछे, गँजा सिर, झुर्रियो से भरा हुआ तेजमय मुखमडल, और उनकी दोहरी लम्बी देह देखनेवालो के मन मे श्रद्धा उत्पन्न करती। वह श्रद्धेय थे भी। जीवन-भर उन्होने अपर प्राइमरी स्कूल मे बच्चो को पढाया और बदले मे बच्चो ने अनजाने ही अपना शिशुत्व और निश्छलता उन्हे दक्षिणास्वरूप प्रदान कर दी। घोर विपत्ति के समय गाँववाले उनकी राय लेने आया करते। उनके घर मे उनकी सत्ताईस वर्षीया विधवा बेटी के सिवा और कोई नही था। जग्गू चुपचाप अपनी परेशानियो मे खोया-खोया चला जा रहा था कि गुरुजी की आवाज सुनकर चौक उठा—

"कहाँ जा रहे हो जग्गू? अपने बूढे गुरु को बिल्कुल भूल गये?"

"प्रणाम गुरुजी!" जग्गू झेंपता हुआ गुरुजी के सामने खडा हो गया।

"कहाँ रहते हो आजकल? बिल्कुल दिखाई नही देते।" गुरुजी ने स्नेहपूर्वक पूछा।

जग्गू अपनी कनपट्टी सहलाता हुआ विनम्रता से बोला—

"यही तो रहता हूँ गुरुजी! इधर कुछ झझटो मे फँस गया था सो मिल नही सका।"

"हाँ, मैने बहुत कुछ सुना है और अब तुमसे सुनने की प्रतीक्षा मे हूँ।" गुरुजी ने कृत्रिम क्रोध दरसाते हुए कहा। उनके स्वर मे प्यार अधिक था। तभी गुरुजी की बेटी अनुराधा गिलास मे पानी लेकर आयी। जग्गू ने सहज दृष्टि से अनुराधा को देखा लेकिन तत्क्षण ही उसकी उपचेतना जागृत हो

उठी। बचपन के दिन उसकी आँखो के आगे तैर गये जब वह अनुराधा को रानी बनाता था और खुद राजा बनता था। इधर जग्गू अनायास ही भावुक और सवेदनशील हो उठा था। जग्गू ने अनुराधा की ओर से दृष्टि हटा ली लेकिन उसका मन कई तरह की कोमल भावनाओ मे उलझ गया। उसने महसूस किया कि अनुराधा सुन्दर है, सुशील है और अभागिन है। जग्गू झेपता हुआ बोला —

"अच्छा, अभी तो आज्ञा दीजिए। बाबू बिचित्तरसिंह ने बुलाया है।"

"फिर मिलना जरूर।" गुरुजी ने आदेशात्मक स्वर मे कहा। जग्गू बिना कुछ बोले वहाँ से चल पडा।

बिचित्तरसिह अपने दालान के बरामदे मे खाट पर बैठे थे। जग्गू को देखते ही वह खाट पर से उठ खडे हुए और बहुत ही स्नेह से उन्होने जग्गू को अपनी बगल मे बैठाया और कुशल-क्षेम पूछा। जग्गू अनासक्त भाव से जवाब देता रहा। उसने एक बार भी बिचित्तरसिह की ओर आँखे उठाकर नही देखा। बिचित्तरसिह भली-भाँति समझ रहे थे कि जग्गू किसी कारण से नाराज है—लेकिन, उन्हे कारण का पता नही था। कुछ देर तक इधर-उधर की बात करने के बाद बिचित्तरसिह गभीर और दुखी स्वर मे बोले—

"जग्गू भाई, मैने आज तुम्हे बहुत जरूरी काम से बुलाया है। तुम जानते हो कि मुझे गाँववालो ने सरपच बना दिया है। मैंने भी आज तक अपना धर्म निभाया है। दस की दुश्मनी मोल ले ली लेकिन, जानबूझकर किसी के साथ अन्याय नही होने दिया। तुम्हे मै अपना गोपाल ही समझता हूँ। इसलिए जब तुम्हारी शिकायत मेरे पास पहुँची तब यही समझो कि मेरे ऊपर वज्र गिर पडा।"

"मेरी शिकायत ?" जग्गू चौक उठा। बिचित्तरसिह ने अपना कथन जारी रखा—

"हाँ, जब से तुम्हारी शिकायत मेरे पास पहुँची है तब से मै ठीक से भोजन नही कर पाया हूँ। सो नही पाया हूँ। जवान बेटे की देह छूकर कहता हूँ।"

"लेकिन मेरा अपराध क्या है ?" जग्गू ने आश्चर्य और घबराहट की

हँसी हँसते हुए पूछा।

"तुमने एक अनजान जाति की औरत को अपने घर मे बैठा रखा है। गाँववाले कहते है कि इससे गाँव-भर की बहू-बेटियो को भी भागने की हवा लग जायेगी। छुआछूत की तो, खैर, अब कोई बात ही नही उठ सकती। लेकिन, धर्म और मर्यादा का उल्लघन करके गाँव मे रहना अच्छा नही है।"

"देखिए बिचित्तर भाई, वे लोग अतिथि के तौर पर मेरे घर मे रह रहे है। उनके लिए कही कोई ठौर-ठिकाना नही था। मैने उन्हे अपने घर मे शरण देकर कोई पाप नही किया है। जो मेरे ऊपर उँगली उठाता है वह स्वय पापी है।" जग्गू ने किचित क्रोध मे कहा। बिचित्तरसिह समझाने के ढग पर बोले—

"किसी को शरण देना पाप नही है। लेकिन बात यही खत्म नही होती। लोग तुम्हारे और उस औरत के सम्बध मे तरह-तरह की बाते "

"बस चुप रहिए।" जग्गू बीच मे ही गरज उठा। क्रोध से उसकी देह काँपने लगी—"आप जो कुछ कह रहे है और दूसरे-तीसरे से कहते फिर रहे है वह मै बिसेसरसिह से बहुत पहले सुन चुका हूँ। मैने भी आपको हमेशा अपना बडा भाई समझा था लेकिन "

जग्गू आगे बोल नही पाया और उठकर खडा हो गया। बिचित्तरसिह ने दुनिया देखी थी। जग्गू की बातो का तथ्य और उसका कारण समझते उन्हे देर नही लगी। उन्होने जग्गू की कलाई पकडकर उसे बलपूर्वक बैठा लिया और डपटकर कहा—

"अगर ऐसी बात तुमने फिर कही तो तुम्हारा मुँह तोड दूँगा और स्वय चुल्लू-भर पानी मे डूब मरूँगा।" जग्गू ने बिचित्तरसिह को घूरकर देखा। बिचित्तरसिंह की आवाज मे क्रोध था, लेकिन उनका चेहरा दुख और वेदना से सिकुड गया था और उनकी आँखो मे सात्विक उत्तेजना छलक आयी थी। बिचित्तरसिह बोलते रहे—"तुमने क्या मुझे औरत समझ रखा है कि तुम्हारी शिकायत दूसरे-तीसरे से करता फिरूँगा? लल्लो-चप्पो करनी मुझे नही आती। अगर तुममे मुझे ऐब दीखेगा तो मै तुम्हारा कान

पकडकर सीधी राह पर ला खडा कर दूँगा। समझे ?"

जग्गू मुँह बाये बिचित्तरसिह को देखता रहा। बिचित्तरसिह कुछ देर तक चुपचाप सिर नीचा किये, हाथ मे पडी एक लकडी का टुकडा तोडते रहे और दु ख और क्रोध से बेचैन होते रहे। जग्गू पश्चात्ताप, ग्लानि और परिताप से भर उठा। बोला—

"मुझसे तो बिसेसरसिह ने कहा था कि आप मेरे बारे मे तरह-तरह की गलत बाते फैला रहे है।"

"और तुमने विश्वास कर लिया ? यह नही सोचा कि बिसेसरसिह केवल मुखिया और जमीदार ही नही एक नम्बर का दुष्ट, नीच और नारद भी है। सबसे पहले उसी ने मुझसे इस तरह की वाते कही—फिर गॉववाले भी कहने लगे। अब तो बजाब्ता तुम्हारे खिलाफ, पचायत मे मामला दर्ज किया गया है। मुझे तो लगता है कि यह सारी आग उसी पाजी की लगायी हुई है।"

"तो ठीक है। आप जैसा उचित समझिए, फैसला कर दीजिए।" जग्गू के स्वर मे दृढता और वेदना सम्पृक्त हो रही थी।

"फिर वही बात !" बिचित्तरसिह स्नेहवश झल्ला उठे—

"मैने आज सरपच की हैसियत से तुम्हे नही बुलाया है बल्कि बडे भाई के नाते बुलाया है। मेरी बात मानो और उस औरत को इज्जत के साथ विदा कर दो।"

"कहॉ बिदा कर दूँ ?"

"जहाँ उसकी इच्छा हो।" बिचित्तरसिह ने सहज सरलता से कह दिया।

"यह मुझसे नही होगा बिचित्तर भाई। भले घर की लडकी है। बेचारी कहॉ भटकेगी ? जब उसका पति आ जायेगा, फिर उसी से मै कह दूँगा। लेकिन अभी तो मै उसे विदा करने की बात सोच भी नही सकता।" जग्गू ने दृढता से कहा।

बिचित्तरसिह सज्जन और दयालु आदमी थे। लेकिन उनकी सज्जनता और दया का भाव गॉव के वातावरण, तथाकथित धर्म की मर्यादा और

परपरागत सस्कार की सीमाओ के साँचे के अनुरूप ही ढल गया था। उन्होने जग्गू की मानवता को नही समझा बल्कि उसे जग्गू की जिद और मूर्खता समझकर वह बोले—

"पागल हो गये हो क्या ? जल मे रहकर मगर से वैर रखना बुद्धिमानी की बात नही है। उस औरत के तुम्हारे घर मे रहने से गॉववालो का बिल्कुल नुकसान नही होता। लेकिन गॉव मे ऐसा कभी हुआ नही है। इसलिए गाँववाले उत्तेजित हो रहे है।"

"उन्हे उत्तेजित होने दीजिए। इस सम्बन्ध मे मुझे न तो कुछ कहना है और न कुछ करना हे। आप लोगो के दिल मे जो बात जमे, कीजिए।" यह कहकर जग्गू उठ खडा हुआ। जब जग्गू वहाँ से चलने लगा तब गोपाल भी उसके साथ हो लिया। कुछ दूर पहुँचने पर गोपाल दीन भाव से बोला—

"जग्गू चाचा।"

"बोलो।"

"मुझसे आप नाराज हे क्या ?"

"नही तो।"

दोनो चुपचाप चलते रहे। गोपाल असमजस मे पडा हुआ-सा बोला—

"मैने सोचा कि रूपनसिह की बात लेकर आप नाराज हो गये।" जग्गू ने सिर घुमाकर बगल मे चलते हुए गोपाल को देखा। शाम हो गयी थी। घरो मे बत्तियाँ जल चुकी थी। दूर से किसी के चीखने-चिल्लाने की आवाज आ रही थी। आकाश मे थोडे-बहुत तारे निकल आये थे। अन्धकार के धुधलके मे जग्गू क्षण-भर गोपाल की ओर देखता रहा। फिर बोला—

"तुम लोगो को रूपनसिह पर जुल्म नही करना चाहिए। बेचारा गरीब आदमी है।"

"गरीब ?" गोपाल भावावेश मे बोला—"वह बहुत दुष्ट है। आपको क्या मालूम—वह कितना बडा नीच है। बिसेसरसिह के भडकावे मे आकर उसने हम लोगो को गाली-गलौज देना शुरू किया। पिछले दो साल से उसने मेरी जमीन की सारी उपज हडप रखी है। पता नही बाबू ने आपसे क्यो नही

बताया कि रूपनसिह ने ही आपके बारे मे पचायत मे मामला उठाया है।" यह कहकर गोपाल ने जग्गू की ओर देखा। जग्गू इस तरह की बाते सुनता-सुनता अभ्यस्त होता जा रहा था, इसलिए कुछ बोला नही। गोपाल कुछ दूर के बाद अपने घर लौट गया।

जग्गू के मस्तिष्क मे इतनी बाते उठ रही थी कि वह एक बात भी सही ढग से नही समझ पा रहा था। जन्म से ही वह सबो से अलग-अलग रहता आया था—न ऊधो का लेना, न माधो का देना। बस गुमटी पर पडा रहता था। इक्के-दुक्के गाँववाले गुमटी होकर जब गुजरते, तभी वह उन लोगो से मिल पाता। बचपन मे जब वह पढता था, एक लडकी के सम्पर्क मे आया था और वह लडकी थी—अनुराधा! लेकिन वे बचपन के दिन थे—निश्छल भाव के दिन थे—निरुद्देश्य उठने-बैठने, खेलने-कूदने के दिन थे। सम्पर्क था, सम्बन्ध था, आकर्षण था लेकिन उसके प्रति चेतना नही थी, उसमे कोई उद्देश्य नही था। और अब जब कि वय का तूफान लौट रहा था, उसके मन मे एकाकीपन का तूफान सुगबुगाने लगा। वह अपने चारो ओर देखता तो लगता जैसे उसके लिए कही कुछ नही है वह केवल अपने मे रहकर, अपने लिए जी रहा है। उसकी समझ मे नही आता कि बिसेसरसिह किसके लिए, क्यो डाका डालता फिर रहा है?—शारदा किसलिए घर-बार, माँ-बाप को छोडकर, अनजान जगह मे भटकती फिर रही है?—मुनिदेव अपने लोभी माँ-बाप को क्यो नही त्याग देता?—रूपनसिह चन्द कट्ठे जमीन के लिए क्यो अपनी पूरी जायदाद की बाजी लगा बैठा है और अनुराधा ?

"कौन जा रहा है?" गुरुजी ने आवाज़ लगायी। जग्गू की विचार-धारा रुद्ध हो गयी। वह गुरुजी के पास पहुँचकर बोला—

"मै हूँ, गुरुजी, जग्गू।"

"आओ, आओ, बैठो।" गुरुजी ने उसके बैठने के लिए बगल मे जगह बनाते हुए कहा—"निबट आये बिचित्तर से? क्या बात थी?"

"क्या बताऊँ गुरुजी, एक रात को, एक भली स्त्री भटकती हुई मेरे पास आयी। मैने उसे अपने घर मे ठहरा दिया। बस इसी पर गाँव-भर

मे हगामा मचा हुआ है। गॉव के सभी लोग अँधे हो गये है। देखते है कि उस स्त्री का पति है, साथ मे एक नौकर है फिर भी शका से मरे जाते है।"

"हाँ जग्गू, मेरे पास भी लोग आये थे। बिसेसर भी कह रहा था कि गॉव की बहू-बेटी बिगड जायेगी।" गुरुजी ने तटस्थ भाव से कहा।

"तो क्या उस भली लडकी को अभी रात मे घर से निकाल बाहर कर दूँ कि इधर-उधर भटकती फिरे, गॉव के आवारो को अपना मतलब सिद्ध करने का मौका मिले। चूँकि वह औरत हे इसलिए त्याज्य है, अछूत और खतरनाक है। आखिर कही जाकर तो वह रहेगी ही या बेसहारा औरत को दुनिया से ही मिटा दिया जाये "जग्गू आवेश मे बोलता जा रहा था कि अनुराधा, थाल मे खाना लेकर आ गयी। जग्गू अचानक चुप हो गया।

अनुराधा ने जग्गू का अतिम वाक्य सुना था और वह श्रद्धा से अभिभूत होकर अज्ञात वेदना से भर उठी। उसने जग्गू को आँख भर देखा। अकस्मात ही जग्गू के शरीर मे अनिर्वचनीय पुलक की लहर दौड गयी। क्षण-भर के लिए वह अपना अस्तित्व भूल बैठा और उस निश्छल सौन्दर्य को एकटक देखता रहा। बचपन के दिन जवान हो उठे। अनुराधा ने अपने पिता के पास पहुँचकर चुपचाप उनके सामने थाल रख दी।

"जग्गू के लिए भी कुछ खाने को ले आओ बेटी!"

"नही-नहीं, मेरी इच्छा अभी खाने की नही है।" जग्गू चौककर बोल उठा। लेकिन अनुराधा तब तक भीतर चली गयी थी। गुरुजी ने कहा—

"थोडा-सा खा लो। कौन तुम्हारी घरनी खाना परोसकर बैठी है कि 'नही-नही' कर रहे हो। कितनी बार तुमसे कहा कि ब्याह कर लो लेकिन तुम सुनो तब ता। आज तुम्हारी घरनी होती तो यह सब प्रपच नही खडा होता।"

"फिर कोई दूसरा प्रपच उठ खडा होता गुरुजी। प्रपच के लिए किसी कारण की जरूरत तो होती नही है।" जग्गू ने किंचित हँसकर कहा। उसकी हँसी मे व्यग्य और वेदना स्पष्ट थी।

"फिर तुमने क्या सोचा है?" गुरुजी ने थाल अपनी ओर खीचते हुए

पूछा।

"इसमे सोचना क्या है गुरुजी ? अपने यश और प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए, मै उस बेसहारा लडकी को घर से बाहर निकालकर उसकी बेइज्जती नही करूँगा।"

"लेकिन तुम गाववालो को नही जानते शायद। वे तरह-तरह के उपद्रव खडे कर देगे।"

"मुझे इसकी चिता नही है। कौन मेरा यहाँ परिवार बैठा है जिसका मोह मुझे बाध रखेगा। सब कुछ छोड-छाडकर, मै स्वय यहाँ से चल दूँगा।"

"यह तो कायरता होगी जग्गू ! फिर तो झूठ के सामने तुम हार खा जाओगे।"

"नही गुरुजी, मै तो यह समझता हूँ कि पापियो, प्रपचियो और ईर्ष्यालुओ से दूर रहना ही अच्छा है। आज तीस-बत्तीस वर्ष से मै इस गाँव मे रह रहा हूँ, कभी किसी को नुकसान नही पहुँचाया, कोई अपराध नही किया, अपना दुख अपने पास रखा, बहुतो को अनाचार करते देखा और चुप रहा—फिर भी लोग यदि मुझसे ईर्ष्या कर, मुझे ही अपराधी और पापी सिद्ध करे तो मै कहाँ तक लोगो को सफाई देता फिरूँगा ?"

"नही जग्गू, मुझे तुम्हारी यह बात पसन्द नही है। जिस काम को धर्म समझकर तुम करते हो, उसे अत तक निबाहो। लोग, अपने कर्मो को देखकर ही तुम्हारे कर्म का अनुमान लगाते है। तुम भी अपने कर्म के अनुसार अपना दृष्टिकोण बनाओ। भागो नही।"

जग्गू के हृदय मे यह बात घर कर गयी। वह चुप हो रहा। अनुराधा खाना परोसकर ले आयी थी। जग्गू रह-रहकर अनुराधा को उस निर्वीरा-स्त्री को देख लेता और न जाने क्यो, रागात्मक अनुभूति से भर उठता। आकर्षण, सहानुभूति और वेदना की त्रिवेणी मे डुबकी लगाते ही स्पर्श की जिज्ञासा और प्रेम की अनुभूति का उदय होता है। जग्गू समझ नही पाया कि वह क्या महसूस कर रहा है, उसके मन मे क्या हो रहा है लेकिन उसने पाया कि अनुराधा की उपस्थिति से उसे सुख मिल रहा है, शाति मिल

रही है, और गुरुजी की बातो से उसे राहत मिल रही है।

उस रात, गुरुजी के यहाँ से चलकर वह सीधे गुमटी पर पहुँचा—घर नही गया। काफी रात गये तक वह रामायण पढता रहा और बीच-बीच मे अपने मन मे उठनेवाले भावो पर विचार करता रहा। सूर्योदय की प्रतीक्षा मे रात घुलती रही।

१०

पचायत ने जग्गू का हुक्का-पानी बन्द कर दिया। पचायत मे बिसेसर-सिह भी उपस्थित थे लेकिन वह तटस्थ बने रहे। गोपाल और मुनिदेव के अलावा कुछ नौजवानो ने पचायत के निर्णय का विरोध किया और अन्त मे सब झल्लाकर सभा से उठकर चले गये। जग्गू अन्त तक तटस्थ भाव से बैठा रहा। उसके चेहरे पर की मुस्कराहट, निश्चितता और दृढता देखकर बहुत से लोग, मन-ही-मन, जल उठे।

जग्गू वहाँ से सीधे घर पहुँचा। शारदा बाहर के बरामदे मे खडी थी—प्रसन्न मुद्रा मे। जग्गू को देखते ही बोल उठी—

"क्या हुआ पचायत मे ?"

"होना क्या था ? मुझे जाति से निकाल बाहर किया गया। लेकिन आप तो बहुत खुश नजर आ रही है ? क्या बात है ?" जग्गू ने मुस्कराते हुए पूछा। शारदा घर के भीतर जाती हुई बोली—

"उनका पत्र आया है। उन्होने आपको भी लिखा है।"

"वह कब तक आनेवाले है।" जग्गू शारदा के पीछे-पीछे चलता हुआ बोला। भीतर बरामदे पर पहुँचकर शारदा रुक गयी। घूमकर बोली—

"क्या, मै फिर बोझ हो गयी क्या ?"

"आप न तो मेरा दिया खाती है और न मेरा दिया पहनती है। फिर बोझ कैसा ? मै तो इसलिए पूछ रहा था कि एक हफ्ते मे लौट आने की बात कहकर गये थे और आज बीस दिन हो गये।"

शारदा ने कोई उत्तर नही दिया लेकिन उसकी भाव-भगिमा से लगा कि उसे जग्गू की बात प्रिय नही लगी। वह भीतर जाकर एक चिट्ठी ले आयी और उसे जग्गू को देती हुई बोली—

"इसे पढ लीजिए, फिर ग्रापको मालूम हो जायेगा कि वह कब तक ग्रा रहे हैं।" यह कहकर वह नीचे रखे पीढे पर ग्रन्यमनस्क भाव से बैठ गयी। भानुप्रताप ने जग्गू को लिखा था—" मुझे ग्राने मे थोडी देर लगेगी। ग्रापकी जमीन मे मकान बनाने की बात निश्चित है। नक्शा भेज रहा हूँ। इसके ग्रनुसार नीव खुदवाकर रखिए। शारदा के पास रुपये है—ले लीजिएगा। कुछ मै भी भेज रहा हूँ। कमी-बेशी ग्राप लगाते रहिए—मै ग्राकर दे दूँगा " जग्गू को चिट्ठी की बाते स्वप्न-जैसी लगी। उसके होठो पर ग्रर्थपूर्ण मुस्कराहट कॉप गयी। शारदा ने पूछा—

"क्या, मालूम हुग्रा कि वह कब ग्रा रहे है ?"

"हाँ, मालूम हो गया।"

"तब, मकान बनवाने के लिए क्या कीजिएगा ?" शारदा ने उत्साह से पूछा।

"ग्रभी तो उसमे गेहूँ की फसल लगी हुई है।"

"कितना गेहूँ निकलेगा उसमे से ? बहुत निकलेगा तो सौ रुपये का।" शारदा ने सहज ही सरलता से कह दिया। जग्गू गभीर स्वर मे बोला—

"फिर भी वह ग्रन्न है देवी जी, उसे नष्ट नही किया जा सकता।"

शारदा को जग्गू की बात ग्रच्छी नही लगी। बोली—

"जितने की फसल नष्ट होगी उसका हिसाब कर लीजिएगा। यदि वह नही देगे तो मै ग्रापका पाई-पाई चुका दूँगी।"

जग्गू को शारदा की इस बात से ग्राश्चर्य नही हुग्रा ग्रौर न उसे क्रोध ही ग्राया। शारदा जो कुछ भी बोलती थी, भानुप्रताप के प्रति ग्रपनी ग्रसीम श्रद्धा, ग्रन्धविश्वास ग्रौर प्रेम के कारण बोलती थी। वह बिल्कुल भोली थी—इतनी भोली कि कभी-कभी उसके भोलेपन से स्वार्थ की गध ग्राने लगती थी। पचायत ने जग्गू का हुक्का-पानी बन्द कर दिया—इस बात से जग्गू को रचमात्र भी दु ख या पश्चात्ताप नही हुग्रा। क्योकि बचपन से ही, वह गाँववालो से ग्रसम्पृक्त रहता ग्राया था। लेकिन जिसके चलते यह काड हुग्रा, उसके मन मे थोडा भी ग्राभार का भाव ध्वनित नही हुग्रा—

यह देखकर जग्गू को आश्चर्य हुआ, क्षणिक घृणा-भाव से उसका मन विच-लित हो उठा। और वह चुपचाप उदास मन से गुमटी पर चला आया। वहाँ, बिसेसरसिंह उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जग्गू को देखते ही बिसेसरसिंह मधुर स्वर मे बोले—

"कहाँ रह गये थे ? मैने पचायत खत्म होते ही तुम्हे ढूँढना शुरू किया लेकिन तुम्हारा कही पता नही था।"

"कहिए क्या सेवा करूँ ? अब तो आप मेरे हाथ का जल भी नही पी सकते।" जग्गू ने व्यग्य से कहा। बिसेसरसिंह अविचलित भाव से बोले—

"सुनो जग्गू भाई, हुक्का-पानी बन्द हो या चले, मै तो तुम्हारे हाथ से ज़हर भी पी लूँगा।"

"यह आपकी कृपा है।" जग्गू ने सहज स्वर मे कहा। लेकिन मन-ही-मन वह सोच रहा था कि अवश्य ही इस धूर्त को मुझसे कोई काम होगा। इसी ने आग लगाई है और अब साधु बनता है। फिर मुस्कराता हुआ बोला—

"कहिए कैसे आना हुआ ?"

बिसेसरसिंह अचानक ही बहुत गभीर हो गये। उनके चेहरे पर वेदना की रेखाएँ उभर आयी। बोले—

"तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है। यह सब बिचित्तरसिंह की करतूत है। मेरी बात मानो तो उसके खिलाफ कचहरी मे दावा ठोक दो। सरपच बनने का मजा मिल जायेगा।"

"मुझे क्या जरूरत पडी है दावा ठोकने की ? न मै पहले किसी को भोज खाने के लिए न्योता देने जाता था और न अब जाऊँगा। बल्कि इस फैसले से बिल्कुल इत्मीनान हो गया।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा। मै तो तुमसे यही कहने आया था कि कचहरी मे दावा ठोकने पर जो भी खर्च होगा, मै दूँगा। क्योकि मुझे तो सरपच का फैसला बहुत बुरा लगा।"

जग्गू खामोश रहा। बिसेसरसिंह गोद मे रखी हुई भागलपुरी रेशम की चादर अपने बाये कधे पर रखते हुए बोले—

"अच्छा, मैं चलता हूँ। आज रात मे फिर मिलूँगा।"

"रात मे ?" जग्गू चौक उठा।

"अब तो मिलेट्री का पहरा ही उठ गया।" बिसेसरसिह धीमी आवाज मे आसानी से बोलते गये—"कुलदीप को मुजफ्फरपुर भेजा है। मालगाडी के साथ ही आयेगा। तुमसे क्या छिपाना !" इतना कहकर बिसेसरसिह चलने ही लगे थे कि जग्गू दृढता से बोल उठा--

"नही बिसेसर बाबू, अब यह सब नही होने का।"

"पागल हो गये हो ? पिछली बार तो बिना मेहनत किए ही तुम्हे रुपये मिल गये थे। फिर क्यो छान-पगहा तोड रहे हो ?" बिसेसरसिह ने स्नेह से कहा।

"मैंने आपका रुपया नही लिया है और न लूँगा। आपके अनाचार के बूते पर मेरी रोजी-रोटी निर्भर नही करती।" जग्गू तमककर बोला। लेकिन बिसेसरसिह आत्मविश्वास के आधिक्य से, किसी बात को महत्त्व नही दे पाते थे। हँसते हुए बोले—

"अच्छा-अच्छा, रुपया नही लिया है लेकिन, मेरा विश्वास तो लिया है ? विश्वास बडी चीज है। रात मे भेट होगी।" और बिसेसरसिंह स्नेहपूर्वक जग्गू की पीठ ठोककर चले गये। जग्गू किंकर्तव्यविमूढ-सा देखता रह गया। बहुत देर तक वह यो ही सोचने की हालत मे खडा रहा कि

"देसौरा के बाबू बिसेसरसिह का मकान किधर है ?"—इस प्रश्न से चौक उठा। उसने देखा—एक पेंट-कोटधारी साहब, दो अन्य व्यक्तियो के साथ, सामने खडा था। गौरवर्ण, मूँछ-दाढी साफ, लम्बा-हट्टा-कट्टा, विनम्र भाव से मुस्कराता हुआ वह नौजवान डील-डौल से कोई बडा अफसर-जैसा लग रहा था।

"जी ?" जग्गू ने घबराहट मे पूछा।

"मै सामुदायिक-योजना-क्षेत्र का अफसर हूँ। रात-भर ठहरने के लिए मुझे कोई जगह मिल सकेगी ?"

"अफसर।" जग्गू का मन, किसी विचार की कौंध से प्रफुल्लित हो

उठा। बोला—

"आप चाहे तो मेरे यहाँ भी ठहर सकते हैं। बिसेसर बाबू का मकान भी पास ही है—वह सामने वट-वृक्ष की ओट मे है।"

उस अफसर ने जग्गू के यहाँ ही ठहर जाने की इच्छा प्रकट की। जग्गू ने उसे अपने घर मे, बाहर की कोठरी मे ठहरा दिया। उन तीनो आदमियो के लिए जग्गू ने स्वय खाना बनाया और श्रद्धापूर्वक उन लोगो को खिलाया-पिलाया। अफसर का नाम था रामपाल। वह दिल्ली की तरफ का रहने वाला था। खाना-पीना जब सम्पन्न हो गया तब रामपाल ने अनुग्रह जताते हुए कहा—

"आप गाँववाले कितने अच्छे हैं—कितने महान हैं। आप लोगो की निश्छलता देखकर इच्छा होती है कि यही बस जाये।"

जग्गू ने हँसते हुए कहा—

"गाँववाले उतने निश्छल नही हैं जितना आप उन्हे समझते है। यहाँ की हवा ऐसी है कि आग भी पानी-जैसी शीतल लगती है।"

"वाह! आप तो बिल्कुल दार्शनिक की तरह बोल रहे हैं जग्गू बाबू। राधाकृष्णन ने बिल्कुल ठीक कहा है कि प्रत्येक भारतीय जन्म-सिद्ध दार्शनिक है।" रामपाल ने रस लेते हुए कहा। जग्गू अपनी असल बात पर आने के उद्देश्य से बोला—

"लेकिन, शहर के बहुत से लोग सोचते है कि गाँववाले गूँगे होते हैं। उन्हे पता ही नही कि रामायण, गीता, कबीर के दोहे, मुहावरे और सत्य-नारायण की कथा गाव के चप्पे-चप्पे मे संस्कार की तरह व्याप्त है। और जैसा फरेब गाँव के कुछ लोग कर सकते हैं—वैसा फरेब शहर की किताबो मे ही मिल सकता है।"

"अच्छा?" रामपाल ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हाँ हुजूर! मैने पटना और मुजफ्फरपुर के शहर देखे है। शहर मे कर्मठ आदमी ही जिन्दा रह सकते हैं लेकिन, गाँव की कर्मठता कुल तीन महीने खेत मे देखिए बाकी नौ महीने मुकद्दमेबाजी मे, चोरी मे और एक-

दूसरे की शिकायत मे।"

"सो तो आप ठीक कहते है जग्गू बाबू! गाँव के लोग अच्छे हो तो कचहरियाँ टूट जाये। जेल मे ज्यादा कैदी गाँव के ही होते है।" रामपाल ने गभीर स्वर मे कहा। जग्गू ने छूटते ही कहा––

"लेकिन वे बेचारे तो सीधे चोर होते है। असल चोर तो हमेशा मजे लूटते है। क्या आप अभी कुछ दिन गाँव मे रहेगे?"

"केवल दो रोज यहाँ ठहरूँगा। जाँच-पडताल करके चला जाऊँगा और फिर लगभग पन्द्रह रोज बाद यहाँ पर हम लोगो का काम शुरू होगा।"

"कैसा काम?"

"गाँव की उन्नति का काम। यहाँ सडके बनायी जायेगी, स्कूल, अस्पताल खोले जायेगे, नल से खेत पटाने की व्यवस्था की जायेगी, बिजली लगेगी और शिक्षा का प्रचार किया जायेगा।"

जग्गू और रामपाल बहुत देर तक बाते करते रहे। अत मे, जग्गू ने बिसेसरसिह की बाबत सारी बाते रामपाल को बता दी और यह भी कह दिया कि रात को फिर मालगाडी लूटी जानेवाली है। दोनो मे कुछ विचार-विमर्श हुआ।

ठीक ढाई बजे रात को, गुमटी से कुछ दूर पर मालगाडी रोक दी गयी। दो वैगन सामान काटकर बिसेसरसिह गुमटी के निकट पहुँचे ही थे कि स्टेशन की ओर से एक के बाद एक करके कई टार्च की रोशनी जल उठी। बिसेसरसिह को लगा कि दर्जनो पुलिस उनकी ओर बढी चली आ रही है। गाडीवानो ने, घबराकर, अपनी-अपनी गाडियाँ रोक दी। बिसेसरसिह ने गाडियाँ लूटने के सिलसिले मे आज तक ऐसी परिस्थिति का सामना नही किया था। रुपये के बूते पर ही वह सब काम हिम्मत से निकाल लेते थे। उस दिन वह भी घबरा उठे। उन्होने गाडीवानो को आदेश दिया कि बैल खोलकर भगा दे और गाडियो और माल को छोडकर जल्दी-से-जल्दी भागकर छिप जाये। सब लोगो ने वैसा ही किया। और अत मे वह खुद भी भाग खडे हुए। रामपाल ने जग्गू, मुनिदेव, गोपाल और अपने एक साथी

की सहायता से माल तो बचा लिया लेकिन वे डाकुओ को नही पकड पाये। और उन्हे पकडने का उनका इरादा भी नही था। क्योकि रामपाल और उनके साथी बिल्कुल नि शस्त्र थे। दारोगा को पहले से सूचना देकर बुलाना उन लोगो ने बेकार समझा क्योकि इससे बिसेसरसिह को भी सूचना मिल जाने की सम्भावना थी। इसलिए, लूट के लिए निश्चित समय से कुछ पहले, रामपाल का एक साथी दारोगा को बुलाने चला गया। तीन बजते-बजते दारोगा घटनास्थल पर आ पहुँचा। चारो ओर भाग-दौड शुरू हुई लेकिन डाकुओ का पता नही चला।

"आप इन गाडियो की पहचान करवाइए!" रामपाल ने दारोगा से कहा। दारोगा किंचित उपेक्षा के स्वर मे बोला—

"जी हाँ, पहचान तो करवायी जायेगी। लेकिन इससे कुछ भी पता लगाना जरा मुश्किल नजर आता है।"

"क्यो?" रामपाल ने आज्ञा के स्वर मे पूछा।

"हुजूर, यह गाँव है। यहाँ बैलगाडियो पर कोई नम्बर तो होता नही।" दारोगा का स्वर तिकडम-भरे अनुभव के दम्भ से वीभत्स हो रहा था। रामपाल ने बिगडकर कहा—

"आस-पास के गाँव के चौकीदार को बुलाइए, पचो को बुलाइए और उनसे मालूम कीजिए कि किसके पास कितनी गाडियाँ है और …" रामपाल अपनी बात पूरी भी नही कर पाया था कि उत्तर तरफ से किसी के आने की आहट मालूम हुई। सब लोग सावधान होकर उस ओर देखने लगे। कुछ देर बाद ही लोगो ने देखा कि राघव दो बैलो की रास पकडे उन लोगो के पास ही आकर खडा हो गया।

"इन बैलो की जोडी को आप किसके खूँटे से खोल लाये?" दारोगा ने उद्दडता और व्यग्य से पूछा। राघव भी जवाब देने मे चूकनेवाला नही था। छूटते ही बोला—

"जिनके खूँटे से पुलिस अफसर तक बँधे रहते है।"

"पुलिस अफसर खूँटे से बँधे नही रहे तो आप जैसे लोगो का राह

चलना भी मुश्किल हो जाय।" दारोगा क्रोध पीता हुआ बोला।

राघव ने कहा—

"अच्छा अब बेकार की बाते छोडिए और चलकर बिसेसरसिह को गिरफ्तार कीजिए। इन बैलो मे से एक बैल बिसेसरसिह का हे। मै अच्छी तरह से पहचानता हूँ।"

"आपके पहचानने से क्या होता है?" दारागा ने उपेक्षा के स्वर मे कहा। जग्गू को दारोगा का स्वर अनुचित लगा। उसने टार्च की रोशनी मे बेल को अच्छी तरह देखा और कहा—

"राघव जी ठीक कहते हैं। यह बैल बिसेसर बाबू का ही है।" मुनिदेव और गोपाल ने भी जग्गू का समर्थन किया। इस पर दारोगा झुँझलाकर बोला—

"लेकिन इस छोटी-सी बात पर, गिरफ्तार कैसे कर लिया जाये? केस कहॉ बनता है? हो सकता है, उनका बैल खूँटा तुडाकर भाग आया हो या आप उनके खूँटे से ही खोल लाये हो।" रामपाल को दारोगा की बदमाशी पर पूरा विश्वास हो गया। उसने महसूस किया कि दारोगा चार-पाँच कर रहा है। अत वह बिगडकर बोला—

"दारोगा जी, आप बिल्कुल बेकार बाते कर रहे है। आपको स्वय छान-बीन मे पहल करनी चाहिए थी लेकिन मै देखता हूँ कि आप टाल-मटोल कर रहे है।"

"मै तो कुछ भी टाल-मटोल नही कर रहा हूँ हुजूर। अगर आपको शक हो और आप कहे तो मे बिसेसर बाबू को गिरफ्तार कर सकता हूँ। लेकिन जिम्मेवारी आपकी होगी हुजूर।"

"हॉ-हॉ, आप चलकर उनसे पूछ-ताछ कीजिए।" रामपाल ने ऊबकर कहा।

बैलगाडियो के पास पहरा बैठा दिया गया। सब लोग बिसेसरसिह के घर की तरफ रवाना हुए। दारोगा बडी चालाकी के साथ रामपाल के मन मे यह बात बिठाने की कोशिश करता जाता था कि गॉव के लोग बडे

टेढे होते है, चोरी-डकैती का मामला बडा पेचीदा होता है, बिसेसरसिह शरीफ और प्रभावशाली आदमी है, बडे-बडे लोगो से इनके नाते-रिश्ते है, इसलिए, लोग उनसे जलते है, आदि आदि जग्गू चुपचाप साथ चल रहा था।

बिसेसरसिह के घर के पास ही चन्नू दुसाध की झोपडी थी—सडक के ठीक बगल मे। गुमटी से सडक होकर आने-जाने मे सबो को उसी झोपडी के सामने से गुजरना होता। चन्नू और गज्जू—दोनो भाई एक साथ रहते थे। दिन-भर मजूरी करते और रात को थककर सो जाते। चन्नू की सास लगभग साठ साल की बुढिया थी। बुढिया के पाँचो बेटे, किसी-न-किसी बीमारी के चगुल मे फँसकर, असमय ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। बुढिया का पति भी मर गया। गाँव के लोगो ने देखा कि यह औरत एक-एक करके सबो को खा गयी। गाँव मे यह बात फैल गयी कि वह डायन है। उसके बारे मे तरह-तरह की कहानियाँ चल पडी कि विजयदशमी के दिन वह नगी होकर नाचती है, और श्मशान मे जाकर मृत बच्चे की लाश जमीन से निकालकर उसे तेल लगाती है—खिलाती है, फिर उसका रक्त पी जाती है' ' आदि-आदि। और अत मे लोगो ने उस गाँव मे उस अभागिन बुढिया का रहना मुश्किल कर दिया। बेचारी भागकर देसौरा गाँव मे अपने एकमात्र दामाद के पास आकर रहने लगी। लेकिन देसौरा गाँव के लोग भी उस बुढिया से नफरत करते, उससे डरते और अपने बाल-बच्चो को उसकी नज़र से बचाकर रखते। सयोग ऐसा हुआ कि बुढिया के देसौरा आते ही चन्नू का भाई गज्जू अचानक हैजे के चगुल मे फँसकर मौत के मुँह मे चला गया, और बुढिया के प्रति लोगो की घृणा और डर साकार हो उठा।

दारोगा अपनी उद्देश्यपूर्ण बातो मे लगा हुआ था। रामपाल चुपचाप उसकी बाते सुनता हुआ चला जा रहा था। और राघव का षड्यन्त्रकारी-मस्तिष्क अपने काम मे लगा हुआ था। चन्नू दुसाध की झोपडी के बाहरी ओसारे मे बुढिया पडी-पडी खाँस रही थी। राघव ने चुपचाप जग्गू को वही रोक लिया। जब सब लोग आगे बढ गये तब राघव ने जग्गू से कहा—

"जरा इधर आओ जग्गू भाई।" और राघव जग्गू की बाँह पकडे बुढिया के पास जा पहुँचा।

"कौन है?" बुढिया ने उन दोनो की आहट पाकर पूछा।

"मै हूँ।" राघव ने अपना नाम नही बताया। बुढिया अँधेरे मे पह-चानने की कोशिश करती रही।

"कहाँ मकान है?" बुढिया ने पूछा।

"अरे मै हूँ जग्गू—गुमटीवाला।" इस बार जग्गू बोला।

"क्या बात है मालिक?" बुढिया, उठकर बाहर आँगन मे आती हुई बोली। राघव को चालाकी सूझी। उसने कहा—

"क्या बताये बूढी, हाट तक आलू पहुँचाने के लिए बैलगाडी की जरूरत थी। सोचा था बिसेसर बाबू की बैलगाडी मिल जायेगी लेकिन बिसेसर बाबू बैलगाडी लेकर कही चले गये है।"

"हाँ मालिक, बाबू साहब तो आधी रात को ही बैलगाडी लेकर चले गये। यही तो उनकी गाडी रहती है और वहाँ पर बैल बाँधा जाता है।" बुढिया ने हाथ के इशारे से बताते हुए कहा। राघव मन-ही-मन उछल पडा, लेकिन अपनी खुशी छिपाता हुआ बोला—

"क्या बताऊँ बूढी, मेरा तो बडा नुकसान हो गया। अब तो हफ्ते-भर बाद ही मेरा आलू बिक पायेगा। तुम्हे कुछ मालूम है कि कब तक आयेगे?"

"अब मै क्या जानूँ मालिक।"

"अकेले ही गये है या उनका लडका भी साथ गया है?"

"कई बैलगाडियाँ थी। अब अँधेरे मे मै देख नही सकी कि बाबू साहब के लडके साथ गये है या नही। मैने बाबू साहब की आवाज जरूर सुनी।"

राघव ने बुढिया से अधिक बात पूछना उचित नही समझा और जग्गू को साथ लेकर बिसेसरसिह के दालान की ओर कदम बढाया। बिसेसरसिह कुर्सी पर बैठे थे, रामपाल से हँस-हँसकर बाते कर रहे थे। दारोगा भेदभरी दृष्टि से कभी रामपाल को देख रहा था तो कभी बिसेसरसिह को। रामपाल चुपचाप बिसेसरसिह की बाते सुन रहा था। राघव को देखते ही दारोगा

व्यग्य से बोला—

"आइए नेताजी ! बिसेसर बाबू तो घर मे सो रहे थे। इनका नौकर कहता हे कि पता नही कब बैल खूँटे से रास तुडाकर भाग गया।"

"लेकिन इनके बैल की रास तो सही सलामत बैल की गरदन से लटक रही हैं।"

"यह लीजिए। इसकी बात सुनिए।" बिसेसरसिह ने हँसते हुए रामपाल से कहा—"यह बिल्कुल पागल आदमी है। इसे इतना भी मालूम नही है कि बैल रास-खूँटा सहित भी भाग सकता है।"

"और अभी नौकर ने देखा तो खूँटा सडक के उस पार पडा हुआ था।" दारोगा ने हाँ-मे-हाँ मिलाने के स्वर मे कहा।

"बिसेसर बाबू दालान पर ही सो रहे थे क्या?" राघव ने अनजान बनते हुए पूछा।

"मेरी तबीयत आज ठीक नही थी। इसलिए, शाम होते ही मै हवेली मे जाकर सो गया।"

"तो ठीक है। मै ही गलती पर था।" यह कहकर राघव चुप हो गया।

काफी देर तक इधर-उधर की बाते होती रही। बिसेसरसिंह ने हँसते-हँसते, हर चीज की शिकायत रामपाल से की—मौसम की, समय की, चोरी-डकैती की, बेईमानी-शैतानी की और अपने बेटे की। तब तक सवेरा हो गया। राघव चुपचाप वहाँ से उठकर चला गया और कुछ ही देर बाद बुढिया को साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा। रामपाल और दारोगा वहाँ से जाने की तैयारी मे थे कि राघव ने कहा—

"इस बुढिया से पूछ लीजिए। क्यो बुढिया, मैं बाबू बिसेसरसिह को ढूँढने के लिए आया था या नही? बिसेसर बाबू कहते है कि मै झूठ बोलता हूँ।"

'नही बाबू साहब, रात आपके जाने के बाद यह यहाँ आये थे। बहुत परेशान थे बेचारे!" बुढिया ने खीसे निपोरते हुए सरल भाव से कह दिया। बिसेसर बाबू मन-ही-मन काँप उठे लेकिन उनके चेहरे पर घबराहट का

हलका-सा भी सकेत नही था। उन्होने हँसकर पूछा—

"मेरे जाने के बाद ?"

"हाँ सरकार! जब आप बैलगाडियो के साथ-साथ चले गये, उसके बहुत देर बाद यह बाबू साहब आपको ढूँढते हुए आये।"

"क्या बकती है!" बिसेसरसिह गरज उठे—"मै तो सो रहा था। मेरी तबीयत खराब थी।"

"इस बुढिया का बयान लिख लीजिए दारोगा जी।" राघव ने गभीरता से कहा जैसे शिकार उसकी मुट्ठी मे आ गया हो।

"यह बुढिया तो डायन है। खुद तो रात-भर श्मशान मे पडी रहती है हरामजादी! अब अपना भेद छिपाये रखने के लिए झूठ बोल रही है कि यह रात मे अपनी झोपडी मे ही थी। चुडैल!" बिसेसरसिह क्रोध से ऐंठते हुए बोले। बुढिया कुछ भी समझ नही पायी। वह बेचारी हक्का-बक्का सबो का मुँह देखती रह गयी। दारोगा ने बुढिया का बयान ले लिया। बिसेसरसिह की आँखो मे प्रतिहिंसा की चिनगारियाँ तरल हो रही थी।

दारोगा बहाना बनाकर वहाँ से चला गया। अन्य लोग भी चले गये। सूर्योदय हो रहा था। जग्गू ने गुमटी पर से देखा कि उसके घर के पश्चिमी तरफ के खेत मे गेहूँ के पौधे उखडे-बिखरे पडे है। वह फुर्ती से अपने खेत मे पहुँचा। वहाँ की दशा देखकर जग्गू का हृदय फट गया। लगभग एक बीघा खेत की फसल किसी ने उखाड दी थी। जग्गू उदास आँखो से अपना खेत देखता रहा। उसे लग रहा था जैसे उसके सामने ही किसी ने उसकी चिरयौवना कुमारी कन्या का सतीत्व नष्ट कर दिया हो और वह कुमारी अब उसके सामने औधी पडी हो—अस्त-व्यस्त, कुचली हुई, अधमरी! जग्गू की आँखे भर आयी लेकिन उसके होठो पर मुस्कराहट काँपती रही।

११

तीसरे दिन रामपाल अपने साथियो-सहित देसौरा गाँव से चला गया। उसे स्टेशन तक आकर विदा करनेवालो मे जग्गू और बिसेसरसिंह भी थे। रेलगाडी के चले जाने के बाद, जग्गू और बिसेसरसिंह साथ-साथ गाँव की ओर लौटे।

जग्गू के आग्रह पर ही, रामपाल ने बिसेसरसिंह का नाम कही नही लिया, और चूँकि उन लोगो के पास पूरा सबूत भी नही था इसलिए कुछ रोज तक चुप रहकर, बिसेसरसिंह के विश्वासपात्र बने रहने मे ही उन लोगो ने भलाई देखी। उधर बुढिया का बयान दारोगा ने दर्ज कर लिया था। उसी रात को बुढिया का अपने दामाद से झगडा हो गया था क्योकि चन्नू दुसाध को, बिसेसरसिंह के खिलाफ बुढिया का बयान देना अच्छा नही लगा। बिसेसर-सिंह ने चन्नू को बुलाकर कुछ कहा-सुना और चन्नू ने घर पहुँचते ही, बुढिया पर बरसना शुरू कर दिया। उसने बुढिया की अच्छी तरह मरम्मत भी कर दी। बेचारी बुढिया रो-कलपकर रह गयी। बिसेसरसिंह ने चलते-चलते पूछा—

"इधर तुम मुझसे मिलते नही जग्गू भाई ? नाराज हो क्या ?"

"यदि मै नाराज भी होता हूँ तो केवल अपने आप पर। और अलग-अलग रहने की मेरी आदत तो बहुत पुरानी है।" जग्गू ने दार्शनिक की गम्भीरता से कहा। बिसेसरसिंह ने कृत्रिम स्नेहजनित जिज्ञासा से पूछा—

"तुम्हारे खेत की सारी फसल किसी ने बर्बाद कर दी और तुम चुपचाप बैठे रहे ?"

"क्या करता !" जग्गू ने सहज स्वर मे उत्तर दे दिया।

"क्या करता ?" बिसेसरसिंह क्रोध से उबल पडे—"एक बीघा खेत

की फसल नष्ट हो गयी और कहते हो कि क्या करता ! अजीब पागल आदमी हो। अरे, कुछ छान-बीन तो करते !"

"कोई रहस्य हो तो छानबीन की भी जाये। यहाँ तो सभी बाते प्रकट है।" जग्गू के चेहरे पर की व्यंग्यात्मक मुस्कराहट उसके अन्तर्मन की व्यथा को अभिव्यक्त कर रही थी। बिसेसरसिह ने उसके भाव को जाना लेकिन अनजान बनते हुए कहा—

"तो क्या तुम्हे चोर का पता है ? कौन है वह ?"

"बिसेसर बाबू, क्यो व्यर्थ ही जले पर नमक छिडकते है ? जिसने मेरे खेत के पौधो को बर्बाद किया है, मै चाहूँ तो अभी उसकी गर्दन मरोड सकता हूँ। लेकिन नही—मै ऐसा नही करूँगा। लेकिन इतना कह दूँ, बिसेसर बाबू कि कुछ लोग जलती आग मे कूदने जा रहे है। और आप उन लोगो मे से एक है।"

"क्या कहते हो जग्गू ?" बिसेसर बाबू चौककर बोले—"तुम्हे किसी ने बहका तो नही दिया है ?"

"मुझे किसी ने नही बहकाया है। लेकिन आप अवश्य बहकाना चाहते है। आपके इशारे पर पचायत ने मेरा हुक्का-पानी बन्द किया, आपने मेरे खिलाफ तरह-तरह की बाते फैलायी और आपने ही मेरी फसल बर्बाद करवायी। आपकी सभी हरकतो को जानते-समझते हुए भी मै कही कुछ नही बोलता। इसका मतलब यह नही है कि मै अन्याय और अनाचार पसन्द करता हूँ। बल्कि मुझे आप पर दया आती है।" क्रोध और घृणा से जग्गू काँपने लग गया। बिसेसरसिंह ने दीन भाव से कहा—

"जग्गू, तुम्हे भ्रम हो गया है।"

"चुप रहिए ! मै, आपका खान्दान, इज्जत और उम्र देखकर आपका लिहाज करता हूँ, वर्ना बता देता कि भ्रम मे कौन है ! लेकिन याद रखिए, पाप का घडा भरते ही फूट जायेगा।"

"तुम तो व्यर्थ ही लाल-पीले हो रहे हो जग्गू भाई ! मेरी बात तो सुनते नही और बोलते चले जा रहे हो। तुम्हारे खेत की फसल बर्बाद करने से मुझे

क्या फायदा होगा ?" विसेसरसिह ने समझाने के स्वर मे कहा। जग्गू तमक-कर बोला—

"दुष्ट लोग वही काम करते है जो दूसरो को नुकसान पहुँचावे—भले ही स्वय को उसके कोई फायदा नही हो।"

"अच्छा बहुत हुआ। अपनी बकवास बन्द करो।" बिसेसरसिह ने क्रुद्ध होकर कहा। जग्गू क्रोध से भभक उठा—

"मै बकवास करता हूँ ? अच्छी बात है। आप भी कान खोलकर सुन लीजिए—अब मै चुप नही रहूँगा। बुढिया के बयान की पुष्टि मेरी गवाही से हो जायेगी—कहे देता हूँ।"

"हाँ-हाँ, जो जी मे आवे, कर लेना। बिसेसरसिह का बाल भी बाँका नही होगा।" दम्भ से ऐंठते हुए बिसेसरसिह ने कहा। तब तक गुमटी आ चुकी थी। बिसेसरसिह चुपचाप अपने घर की ओर चले गये।

कुछ देर बाद ही चन्नू दुसाध की बुढिया सास, रोती-कलपती हुई, गुमटी पर पहुँची। जग्गू को देखते ही वह घप्प से जमीन पर बैठ गयी और फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू अवाक् उसकी ओर क्षण-भर देखता रह गया। फिर बोला—

"क्या बात है बूढी ?"

बुढिया गुस्से से तमककर बोली—

"मै क्या जानती थी कि आप लोग मुझे जाल मे फँसा रहे है। जो कुछ आपने पूछा वह मैने आपको बता दिया। अब मेरा दामाद चन्नू मुझे परसो से ही पीट रहा है। लात-घूसो से मार-मारकर मुझे अधमरा कर देता है।"

"क्यो मारता है ?" जग्गू ने आश्चर्य-मिश्रित क्रोध से पूछा।

"अब मै क्या जानूँ ? कहता है—'तू डायन है। मेरे घर से निकल जा।' आप ही बताइए, इस बुढापे मे मै अब कहाँ जाऊँ ?"

"अच्छा-अच्छा, मै कल शाम तक उधर आऊँगा। फिर चन्नू को समझा दूँगा।" जग्गू ने ढाढस बँधाते हुए कहा। बुढिया और जोर से रोने लगी। जग्गू कुछ समझ नही पाया। उसे राघव पर गुस्सा आ रहा था। जग्गू

ने सहानुभूतिपूर्वक अपनी बात दुहरा दी—

"मै कल तक जरूर चन्नू को समझा दूँगा।"

"लेकिन, कल तक तो वह मुझे मार ही डालेगा।"

"अरे नही, ऐसा भी कही अँधेर होता है।"

जग्गू ने कृत्रिम हँसी हँसकर बुढिया को सन्तोष दिलाया। बुढिया बहुत देर तक विक्षिप्त-भाव से, दूर जमीन की ओर देखती रही। उसके चेहरे की झुर्रियाँ और गहरी हो उठी, उसकी बरौनी-विहीन आँखे आँसू मे ऊब-डूब करती झपकती रही और उसके मोटे-मोटे होठ खुले हुए लटकते रहे। जग्गू ससार और समाज की वीभत्स रचना पर घुटन से भर गया।

बुढिया जमीन का सहारा लेकर बडे कष्ट से उठी और गदे फटे आँचल से आँखे पोछती हुई गाँव की ओर चली गयी। जग्गू उसे देखता रहा। उसका हृदय घृणा, करुणा, क्रोध और प्रतिहिसा की भावना से चीख उठा। उसकी अपनी दुर्बलता ही उसका गला दबोचने लगी। वह सोचता रहा कि जो चोर है, उचक्के है, घातक है वे कितने समर्थ है और जो साधु है, सज्जन है, निरीह है वे कितने असमर्थ है! जग्गू को तमाम अच्छाइयो से भय होने लगा। चन्द रोज मे ही उसके जीवन मे क्या से क्या घट गया। क्या कोई विश्वास करेगा?—जग्गू सोचता और तब उसमे प्रतिहिसा का भाव और सबल हो उठता, अपनी सच्चाई और ईमानदारी को वह अपनी कायरता और स्वार्थपरता का परिणाम समझने लगता। उसके अग-प्रत्यग मे अशाति व्याप गयी और वह अनायास ही गुरुजी के घर की ओर चल पडा।

गुरुजी को बाहर के बरामदे मे न देखकर जग्गू को आश्चर्य हुआ। क्योकि निष्क्रिय होने के बाद, बीस साल से, वह बाहर के बरामदे मे ही रहते चले आये थे। इस असाधारण घटना से जग्गू आशकित हो उठा। उसने सहमते हुए आवाज दी—"गुरुजी है क्या?"

क्षण-भर बाद ही अनुराधा बाहर निकली। वह बहुत ही अस्त-व्यस्त हो रही थी। उसका चेहरा पीला पड गया था, सिर के सूखे बालो के गुच्छे बेतरतीब ढग से उन्नत ललाट और आँखो पर आ रहे थे और उसके होठ

सूखे हुए, विरक्ति भाव को चित्रित करते-से लग रहे थे। बडी-बडी आँखो से करुणा, दीनता और निर्व्याजभाव बिखेरती हुई बोली—

"आइये, बाबूजी भीतर घर मे है। वह आपको बहुत याद कर रहे थे। लेकिन लेकिन मै आपको खबर नही दे सकी।" अन्तिम वाक्य कहते-कहते उसका कठ अवरुद्ध हो गया।

"क्या बात है ? उनकी तबीयत तो ठीक है ?"—चिन्तित स्वर मे जल्दी-जल्दी बोलता हुआ वह अनुराधा के पीछे हो लिया।

"वह बहुत बीमार है।" अनुराधा ने कहा। जग्गू ने देखा कि अनुराधा ने जल्दी से अपनी आँखे पोछ ली है।

गुरुजी को अचानक ही बुखार हो आया था और साथ ही दस्त पर दस्त भी होने लगे। दो दिन के भीतर ही गुरुजी खाट से सट गये। अनुराधा अपना खाना-पीना त्यागकर उनकी परिचर्या मे जुट गयी। जग्गू ने गुरुजी की हालत देखी तो उसे रोना आ गया। सात्विक क्रोध से उबलकर वह स्वागत भाषण की शैली मे बोला—

"दो दिन से आप बीमार है और मुझे खबर तक नही दी ?"

"कौन खबर देने जाता बेटा। बहुत मुश्किल से अनुराधा वैद्यजी को खबर दे पायी। दवा-दारू चल रही है लेकिन लेकिन अब " गुरुजी इसके आगे बोल नही पाये। अनुराधा मुँह मे कपडा ठूँसकर जल्दी से बाहर भाग गयी लेकिन, जोर की हिचकियो ने उसकी वेदना को प्रकट कर दिया। अधेरी कोठरी मे सन्नाटा व्याप गया।

"आप अच्छे हो जायेगे गुरुजी।" जग्गू ने काँपते स्वर मे कहा। गुरुजी छत की ओर टकटकी बाँधे देखते रहे, फिर अपने-आप ही किंचित हँस पडे और बोले—

"हाँ जग्गू, मै तो अच्छा हो जाऊँगा लेकिन, अनुराधा का क्या होगा ? वह बेचारी जन्म से ही दु ख झेलती आयी है। बचपन मे ही उसकी माँ ने उसे अपनी गोद से उतारकर जमीन पर रख दिया और स्वय, अच्छी-भली बन-कर, यहाँ से सदा के लिए चली गयी और और उसके बाद बडे उमग से

मैने अनुराधा का ब्याह रचाया लेकिन, दो महीने बाद ही उसका सुहाग भी उजड गया और अब मै भी "

"यह सब आप क्या बोल रहे है गुरुजी ? आपको अभी जीना है—अनुराधा के लिए जीना है।"—जग्गू ने आतुर भाव से कहा। गुरुजी बोलते रहे—

"अब अनुराधा के लिए कोई उपाय नही है। मैने अपने धर्म और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपनी बेटी का सर्वनाश कर दिया "

"गुरुजी !"

"हाँ बेटा, मैने अपनी बेटी का सर्वनाश कर दिया, और अब मै धर्मात्मा बनकर इस ससार से कूच करने की तैयारी मे हूँ। लेकिन लेकिन मै आदमी बनकर, बाप बनकर इस ससार से जाना चाहता था। मै चाहता था कि मेरी बेटी की माँग सिन्दूर से भरी रहती और मै उसे देखता-देखता अपने शरीर का त्याग कर देता। क्या" वह वह वह सपना " गुरुजी का कठ अवरुद्ध हो गया। जग्गू की इच्छा हुई कि वह चिल्ला पडे—

"मै आपकी इच्छा पूरी कर सकता हूँ गुरुजी, मै अनुराधा को प्यार करता हूँ, अनुराधा बचपन से मेरी है—जन्म-जन्मान्तर से मेरी है। मै उसकी माँग मे सिन्दूर भर सकता हूँ " लेकिन जग्गू अपना तमाम प्यार, अपनी तमाम वेदना और अपनी तमाम सहानुभूति अपने मे ही समेटे चुप बैठा रहा।

कुछ देर के बाद अनुराधा भी मुँह-हाथ धोकर आ गयी। जग्गू ने उसे जबरदस्ती कुछ खा-पी लेने को भेज दिया और स्वय वह गुरुजी की परिचर्या मे जुटा रहा। गुरुजी बीच-बीच मे कुछ बोलने की कोशिश करते तो जग्गू उन्हे रोक देता। अनुराधा को भी उसने कोठरी से निकाल दिया जिससे कि वह बेचारी थोडी देर आराम कर ले।

शाम हो गई। अनुराधा लालटेन जलाकर ले आयी। अधकार धुल गया। जग्गू कोठरी की स्वच्छता देखकर दग रह गया। माटी की दीवार और माटी का फर्श—लिपा-पुता मनोहर लग रहा था। खाट पर गुरुजी पडे हुए थे और खाट के नीचे एक ओर माटी के दो चौडे-चौडे बर्तन थूक-

मल-मूत्र त्यागने के लिए और दूसरी ओर काठ की पुरानी कुर्सी पर लोटा-गिलास और दवा की पुडिया रखी हुई थी। कोठरी के बाये भाग मे, दीवार के पास, काठ के दो बक्से रखे हुए थे।

"अब आप जाकर थोडा आराम कर लीजिये।"—अनुराधा के दीन-क्षीण स्वर से जग्गू सिहर उठा। गुरुजी ने भी हाँ मे हाँ मिलायी—

"हाँ बेटा, अब तुम जाओ, थोडा आराम कर लो! अनुराधा बेटी, इसे रोशनी दिखला दो।"

अनुराधा लालटेन लेकर आगे-आगे चलने लगी। घर के बाहर पहुँच कर जग्गू ने कहा—

"अनुराधा, मै फिर आऊँगा।" अनुराधा ने सिर उठाकर जग्गू को देखा। जग्गू बोला—

"चिन्ता मत करना। ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है।" अनुराधा एकटक जग्गू को देख रही थी। जग्गू बोलता गया—

"लेकिन, तुम्हे अपने स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना चाहिए। सूखकर कैसी हो गयी हो! तुम अकेली हो अनुराधा। यदि तुम भी बीमार पड गयी तो ?" अनुराधा फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू उस अन्तस-तप्त विधवा की वेदना से काठ होकर रह गया। वह क्या करे? अनुराधा रोती जा रही थी। उसका एकमात्र सहारा वृद्ध पिता ससार को छोड जाने की तैयारी मे था। फिर अनुराधा का क्या होगा? वह इस क्रूर समाज से बहिष्कृत होकर भी उसी समाज के विष-न्याय-अक मे परिश्लिष्ट होकर दम तोडेगी। जग्गू कुछ भी नही सोच पा रहा था, कुछ भी नही समझ पा रहा था लेकिन उसके मस्तिष्क मे तरह-तरह की आशकाएँ तूफान उठा रही थी।

"रो मत अनुराधा!" जग्गू तोष दिलाने के स्वर मे कहता। फिर भी अनुराधा रोये जा रही थी। जग्गू उसके निकट आ गया। वेदना और सहानुभूति के आधिक्य से उसका स्वर अव रुद्ध हो रहा था। उसने बहुत ही धीमे स्वर में पुकारा—

"अनुराधा मेरी बात सुनो अनुराधा!" अनुराधा ने आँसुओ से लबा-लब आँखो से जग्गू को देखा। जग्गू ने सरस स्वर मे कहा—

"तुम्हे धीरज रखना चाहिए अनुराधा। ऐसे कैसे काम चलेगा?"

"कितना धीरज रखूँ? अब तो मेरा जीना भी मुश्किल हो जायेगा।" और अनुराधा फिर फूट पडी। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गयी। जग्गू पर-वश स्थिति मे खडा रहा, और अनुराधा रोती रही। जब जग्गू से नही देखा गया और उसका धीरज भी जवाब देने लगा तब वह जल्दी से, वहाँ से चल पडा। अनराधा देख भी नही सकी।

१२

सुबह होते ही जग्गू गुरुजी के घर की ओर चल पडा। रास्ते मे गोपाल से भेट हो गयी। जग्गू को देखते ही वह बोल उठा—

"मै आपके यहाँ ही जा रहा था जग्गू चाचा! रात क्या बात हुई आपको मालूम है ?"

"क्या हुआ ?" जग्गू ने सहज कौतूहल से पूछा।

"चन्नू दुसाध की सास मर गयी।"

"बुढिया मर गयी ? लेकिन शाम को तो वह मेरे पास आयी थी। वह तो बिल्कुल भली-चगी थी!" आश्चर्य से जग्गू का मुँह खुला का खुला रह गया।

"चन्नू दुसाध ने स्वय उसका गला दबाकर उसे मार दिया।"

"तुम्हे कैसे मालूम ?"

"मुझे ही नही, पूरे गाँव को मालूम है। वह बुढिया कल दिन-भर सबो के पास भटकती रही लेकिन, किसी ने उसकी मदद नही की। गाँववाले भी उसे डायन समझकर उससे मुक्ति चाहते थे। और जानते है जग्गू चाचा ? बिसेसरसिह ने उसकी हत्या करवायी है जिससे कि वह गिरफ्तार होने से बच सके।"

"लेकिन लेकिन इसकी खबर पुलिस को तो मिलनी ही चाहिए। यह तो हत्या है।" जग्गू ने क्रोध से कहा। गोपाल नाटकीय ढग से बोला—

"हुँह, पुलिस! पुलिस क्या कर लेगी ? चन्नू और बिसेसरसिह ने रातो-रात उस बुढिया को जलाकर राख कर दिया।"

जग्गू बहुत देर तक अपने दोनो हाथ अपनी पीठ पर बाँधे, जमीन की ओर देखता रहा। काफी देर की चुप्पी के बाद गोपाल बोला—

"यह तो जुल्म की हद है।" जग्गू सिर उठाकर दूर क्षितिज की ओर देखता हुआ एक लम्बी साँस छोडकर बोला—

"इसका कोई इलाज भी तो नही है गोपाल!"

"इलाज क्यो नही है?" क्रोध और सहज अहकार से गोपाल गरज उठा—"हम लोगो के देखते-देखते आपका हुक्का-पानी बन्द कर दिया गया, फसल बरबाद कर दी गयी, बुढिया की हत्या कर दी गयी और पुलिस ने सबो के घर मे घुसकर तलाशी ली। यह सब कुछ चन्द रोज के भीतर ही हुआ और हम लोग मुँह ताकते रहे। यह बडे शर्म की बात है।"

"मानो तो बहुत-सी शर्मनाक और दर्दनाक बाते हुई है और यदि नही मानो तो कुछ नही हुआ।" जग्गू ने वेदना से भरकर कहा—"हम सब लोग अपनी-अपनी डफली अलग-अलग पीट रहे है, और हम लोगो की दृष्टि भी भिन्न है। इसलिए हर आदमी को हर आदमी से शिकायत है, लेकिन जो असल खराबी है, जो सचमुच ही शिकायत की बात है, उस ओर कोई भी ध्यान नही देता। मै तो तुम्हारे गाँव से ऊब गया हूँ गोपाल।"

गोपाल कुछ उम्मीद से आया था, दगा-फसाद का तमाशा देखने की उम्मीद से। उसने सोचा था कि जग्गू कुछ कहेगा, कुछ बोलेगा। लेकिन, जग्गू निष्क्रिय बना रहा, बल्कि, क्रोध या ललकार की जगह उसमे उदासी की मात्रा ही ज्यादा बढ गयी। इसलिए गोपाल निराश होकर चुप हो रहा। जग्गू को अचानक गुरुजी का खयाल आया। "अच्छा गोपाल, मै जरा जल्दी मे हूँ। गुरुजी की तबीयत बहुत खराब है। अब चलता हूँ।" यह कहकर वह चलने ही लगा था कि राघव आ धमका। दरअसल राघव को आते देखकर ही जग्गू को खयाल आया कि उसे जल्दी गुरुजी के यहाँ पहुँचना है। लेकिन राघव दूर से ही पूछ बैठा—

"रात-भर कहाँ रहे जगनारायण बाबू?"

"मै तो गुमटी पर ही था।" जग्गू ने ऊब के स्वर मे कहा। राघव सरलता से छोडनेवाला आदमी नही था। उसने अजीब नाटकीय ढग से मुँह फैलाकर, हँसते हुए कहा—

"लेकिन मै तो हुजूर की सेवा मे दो बार आया और आपका द्वार खटखटाकर वापस चला गया। आपको मालूम है कि आपके गाँव मे कितना बडा जुल्म हो रहा है ? आप जानते है कि चन्नू दुसाध की सास की हत्या कर दी गयी ?"

"मुझे मालूम है।" जग्गू ने विरक्त भाव से कहा।

"अब क्या होगा ?"

"होगा क्या ? जो होना था, सो हो चुका।"

"लेकिन सवाल यह है कि बिसेसरसिंह इस बार भी बच निकला।" राघव ने ऊची आवाज मे कहा। जग्गू के होठो पर वेदनापूर्ण मुस्कराहट काँप गयी। वह धीमे स्वर मे बोला—

"आपको बुढिया के मरने का दु ख नही है, आप यह भी नही सोचते कि दु ख, अनाचार और अन्याय को आप स्वय बढावा देते है।"

"मै अन्याय को बढावा देता हूँ ? आपका दिमाग खराब हो गया है जग्गू बाबू।" राघव ने सूखी हँसी हँसते हुए कहा। जग्गू ने पूर्ववत स्वर मे कहा—

"हाँ, अब मेरा दिमाग भी आप लोगो के चलते खराब हो रहा है। इसलिए मै आप लोगो से दूर ही रहना चाहता हूँ। बिसेसरसिंह यदि अन्यायी और कठोर है तो आप जैसे लोग स्वार्थी, क्रूर और बेहया है।"

गोपाल अब तक चुप खडा था। जग्गू की बात उसे भायी नही। उसने हिचक के साथ प्रतिवाद किया—

"यह तो आप अनुचित बात कह रहे है जग्गू चाचा।"

"मै अनुचित बात कह रहा हूँ—लेकिन साथ ही सत्य बात भी कह रहा हूँ। एक निरपराध बुढिया व्यर्थ ही, राघव बाबू और बिसेसर बाबू के स्वार्थ की बलिवेदी पर चढ गयी, और राघव बाबू को बुढिया की मृत्यु पर थोडा भी दु ख नही हुआ हालाकि इन्होने ही उस बुढिया को फँसाया। इन्हें इस बात की चिता है कि बिसेसरसिह फिर बच निकला। मै चाहता हूँ कि इन्हे अपनी ही शक्ति के बूते पर अन्याय का मुकाबला करना चाहिए।

यदि इन्हे सहारा ही लेना हो तो उस व्यक्ति का सहारा ले जो इन्हे अच्छी तरह जानता हो, जिसे इनका उद्देश्य मालूम हो और जो स्वेच्छा से इनका साथ देने को तैयार हो।"

"कहाँ है ऐसा आदमी ? मुझे तो कही नही दिखाई देता।" राघव ने दोनो हाथ फैलाकर पूछा।

"तो फिर चुपचाप अपने घर मे बैठिए। अनजान लोगो को साधन बनाकर उन्हे मुसीबतो के चक्कर मे फँसाना सबसे बडी क्रूरता और अन्याय है, धोखा है।"

"ठीक है। मै किसी को धोखा नही देना चाहता। मै आपसे ही पूछता हूँ—क्या आप मेरा साथ देगे ?" राघव ने कृत्रिम गम्भीरता से पूछा।

"हर काम मे मै आपका साथ नही दे सकता।" जग्गू ने सहज गभीरता से कहा।

राघव ने छूटते ही कहा—

"हर काम मे मुझे आपकी सहायता चाहिए भी नही। मै तो केवल बिसेसरसिंह की पोल खोलना चाहता हूँ।"

"लेकिन मै किसी का मजाक उडाना या किसी को बेइज्जत करना नही चाहता। हाँ, अगर आपका उद्देश्य बिसेसरसिंह न होकर, समाज या देश की सम्पत्ति की रक्षा करना हो तो मै आपका साथ देने को तैयार हूँ।"

"चलिए, मैने आपकी बात मान ली। अब तो आप साथ देगे ?"

"हॉ।"

"और तुम गोपाल भाई ?"

"मै भी तैयार हूँ।"

"बस तो ठीक है, मै अब चलता हूँ। आज से मेरा यही व्रत हो गया। जब तक अपराधी को सजा नही मिल जायेगी, मै चैन नही लूँगा। अच्छा, आप लोग अपना वायदा याद रखियेगा।" इतना कहकर राघव स्टेशन की ओर चल दिया। गोपाल के साथ जग्गू गुरुजी के घर पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देखा कि बिसेसरसिंह, उदास मन से, गुरुजी की खाट के पास बैठे थे

और अनुराधा को स्नेहपूर्वक डॉट रहे थे—

"तुमने मुझे खबर तक नही दी! आखिर मै कोई बेगाना तो हूँ नही। गुरुजी को मै अपने पिता से भी बढकर मानता हूँ और तुम्हे " कि इतने मे जग्गू और गोपाल आ पहुँचे। बिसेसरसिह ने अपना पहला वाक्य अधूरा छोडकर जग्गू से तपाक से कहा—

"आओ जग्गू भाई! तुम सचमुच देवता आदमी हो। अभी-अभी गुरुजी तुम्हारी प्रशसा कर रहे थे। तुम्हे इनकी बीमारी का पता था लेकिन मुझ से तुमने कुछ नही बताया।"

"मुझे कल रात मालूम हुआ।" जग्गू ने अन्यमनस्क भाव से कहा। वह मन-ही-मन, बिसेसरसिंह की नाटकीयता पर आश्चर्य कर रहा था— कि कल ही यह मुझसे झगडकर गया, कल ही इसने बुढिया की हत्या करवायी और ऐसे बोल रहा है जैसे कभी कुछ हुआ ही नही। बिसेसरसिह का व्यवहार देखकर, जग्गू को कभी-कभी अपनी आँख, कान और समझ पर भी अविश्वास होने लगता।

कुछ देर तक बिसेसरसिह वही बैठे रहे। कभी वह गुरुजी को हिम्मत दिलाते तो कभी अनुराधा पर अपना स्नेह बिखेरने लगते। अनुराधा को वह कभी-कभी अजीब दृष्टि से देखते—ऐसी दृष्टि से जो बिसेसरसिह की साधारण दृष्टि से बिल्कुल भिन्न होती। जग्गू उस दृष्टि को छुपकर देख लेता। उसे वह दृष्टि बुरी लगती।

बिसेसरसिह के चले जाने पर अनुराधा ने जग्गू से हिचकिचाते हुए कहा—

"जरा वैद्यजी के यहाँ से दवा ला देते।"

"मै ले आता हूँ।" गोपाल बीच ही मे उत्साह से बोल उठा और गुरुजी की बीमारी के सम्बध मे नयी-पुरानी जानकारी प्राप्त करके वैद्य जी के यहाँ चल पडा।

"बिसेसरसिह कब से बैठे थे?"—जग्गू ने चुप्पी तोडते हुए अनुराधा से पूछा।

"आपके आने के एक घटा पहले से।" अनुराधा ने सिर नीचा किये उत्तर दिया। जग्गू चुप हो रहा। अनुराधा को जग्गू के प्रश्न और उसकी मुद्रा पर कौतूहल हुआ। उसने पूछा—

"क्यो ? कोई खास बात है क्या ?"

"नही, कुछ नही।" जग्गू हँसकर टाल गया। फिर दोनो चुप हो गये। गुरुजी की हालत अच्छी नही थी। वह चुपचाप, आँखे बन्द किये, पडे थे। गोपाल के साथ वैद्यजी स्वय आये। गुरुजी के शरीर की परीक्षा लेकर उन्होने दवा दी और निराश स्वर मे अनुराधा को धीरज बँधाकर चले गये।

अनुराधा ने जीवन देखा था, दु ख झेले थे, किस्मत की ठोकर ने उसमे अनुभूति भर दी थी। इसलिए, वैद्यजी के निराश स्वर का अर्थ उससे छिपा नही रह सका। वह चुपचाप अपने पिता के पास बैठी रही, बीच-बीच मे उसकी आँखे भर आती थी, कभी-कभी लगता कि वह चीत्कार कर उठेगी।

"तुमने मुँह-हाथ धोया या नही ?"—जग्गू ने पूछा। अनुराधा चुप रही। जग्गू क्रोध से बोला—

"इस तरह तो काम चलेगा नही। दस बजे की गाडी पास हो गयी और अभी तक तुमने मुँह भी नही धोया।"

अनुराधा सिर झुकाये जग्गू की डाँट सुनती रही। जग्गू पूर्ववत् स्वर मे बोलता रहा—"तुम समझती हो कि मै यहाँ केवल दर्शन देने आता हूँ। अगर मेरे रहते हुए भी तुम यही बैठी रहो तो मेरा आना व्यर्थ है। मै यहाँ शिष्टाचार के नाते नही आता हूँ।" अनुराधा ने आँखे उठाकर जग्गू को देखा। जग्गू की आँखे भरी हुई थी और उसका मुखमण्डल सवेदनशील हो रहा था। जग्गू का स्वर कोमल हो उठा—

"जाओ अनुराधा, मुँह-हाथ धोकर कुछ खा-पी लो। उठो।" अनुराधा जग्गू का आग्रह टाल न सकी और उठकर चली गयी। जग्गू गुरुजी की परिचर्या मे लगा रहा। इस बीच उसने गुरुजी को दवा पिलायी, पाखाना-पेशाब करवाया और उनके तलवे मे तेल की मालिश की। उसे समय का कुछ भी ज्ञान नही रहा। अनुराधा अचानक ही उसके सामने आकर खडी हो गयी

श्रौर बोली—

"चलकर कुछ खा लीजिये।"

"मै ?—मे तो श्रभी कुछ नही खाऊँगा।"

"फिर मैं भी नही खाऊँगी।"

"जाश्रो बेटा, थोडा खा लो।"—गुरुजी ने क्षीण स्वर मे कराहते हुए कहा। जग्गू चुपचाप सकुचाता हुश्रा श्रनुराधा के पीछे हो लिया।

जग्गू चुपचाप खाता रहा श्रौर सोचता रहा। श्राधी जिन्दगी वैरागी की तरह बिताकर, श्रब जग्गू माया-मोह, छल-प्रपच श्रौर श्रन्य सासारिक ऊहा-पोह मे जा फँसा था। पहले उसके लिए कोई श्राकर्षण नही था, रागात्मकता नही थी, बेचैनी या कौतूहल का कोई कारण नही था, सम्पृक्त या श्रसम्पृक्त हो जाने की कोई भावना नही थी लेकिन श्रब उसमे सब कुछ श्रनायास ही श्रा गया था, जितना ही वह जाल तोडकर निकलने की कोशिश करता, उलझन उतनी ही बढती जाती।

"भात दूँ ?" श्रनुराधा ने पूछा।

"नही, श्रब कुछ नही चाहिए।"

"दूसरो को तो श्राप स्वास्थ्य पर ध्यान देने का उपदेश देते है, लेकिन श्रपने स्वास्थ्य की श्रापको बिल्कुल चिन्ता नही रहती।"—श्रनुराधा ने किंचित् श्रधिकार के स्वर मे कहा। जग्गू ने श्रनुराधा को श्राश्चर्य से देखा श्रौर उदासी की साँस खीचकर, वह थाली की श्रोर देखता हुश्रा बोला—

"मेरा क्या है श्रनुराधा।"—इतना कहकर जग्गू सम्हल गया श्रौर श्रपनी वेदना छिपाने के लिए हँसकर बोला—"मुझे तो किसी की देखभाल नही करनी है श्रौर न मुझे दुनिया का सामना करना है। लेकिन तुम्हे तो इस पापी दुनिया मे रहकर श्रपने धर्म का जीवन व्यतीत करना है।" श्रनुराधा कुछ भी नही बोली। जग्गू ने देखा, महसूस किया कि श्रनुराधा की श्राँखो मे, उसके चेहरे पर दीनता की उदासी है, वह कुछ बोलना चाहती है, कुछ माँगना चाहती है, लेकिन उसके होठ काँप कर रह जाते हैं, श्राँखे भर जाती है श्रौर उदासी की छाया घनीभूत हो उठती है।

"किसी चीज की जरूरत है क्या ?"—खाना खा चुकने के बाद जग्गू ने प्यार से पूछा। अनुराधा ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। जग्गू दुबारा नही पूछ सका और कुछ देर तक वही ठहरने के बाद अपने घर की ओर चल पडा।

इधर कई रोज से जग्गू ने शारदा की खोज-खबर नही ली थी। शारदा भरी बैठी थी। जग्गू को देखते ही उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। जग्गू ने सकपकाते हुए कुछ पूछना चाहा, उससे बात करनी चाही और जल्दी मे उसके मुँह से निकल पडा—"भानु बाबू की कोई खबर मिली ?"

"आपको इससे मतलब ?"—शारदा ने तमककर पूछा। उसका स्वर बहुत रूखा और घृणा से भरा हुआ था। जग्गू की मानसिक-स्थिति सतुलित नही थी। बुढिया की हत्या, गाँववालो की बेइन्साफी और अनुराधा की वेदना ने जग्गू को बेसब्र बना दिया था। शारदा के इस उत्तर से वह तिलमिला उठा—

"मुझे क्या मतलब रहेगा ? लेकिन लेकिन उनके आसार मुझे अच्छे नजर नही आते, और और आपके व्यवहार का भी मुझे पता नही चलता। कभी तो आप जमीन पर रहती है और कभी आसमान मे। खैर, आगे से मै कुछ नही पूछूँगा।"—क्रोध के अतिरेक से जग्गू ठहर-ठहरकर बोल रहा था। शारदा ने छूटते ही कहा—"हाँ-हाँ, मत पूछियेगा। मै भी अच्छी तरह समझती हूँ कि आपके मन मे क्या है।" जग्गू चौक उठा। उसने किंचित् आशकित होकर पूछा—

"क्या है मेरे मन मे ?"

"उसे बताना कोई जरूरी नही है। आप भी समझते है। 'उनके' आते ही मै यहाँ से चली जाऊँगी। मै तो समझती थी कि आप सीधे-सच्चे आदमी है।"—शारदा ने रोषावेष्ठित स्वर मे कहा। जग्गू तरह-तरह की बुरी बाते सोच गया। वह गरजकर बोला—

"आखिर आपका क्या मतलब है ?"

"यही कि जल्दी से जल्दी यहा से चली जाऊँ।"

"ठीक है, चली जाइये।" जग्गू ने भी तमककर कहा और वह तेजी से घर के बाहर हो गया।

"हॉ-हॉ, चली जाऊँगी।" इस वाक्य के साथ ही जग्गू के कान मे फफक-फफककर रोने की आवाज़ सुनाई पडी। लेकिन वह सीधे गुमटी पर आकर ही रुका।

उसका हृदय और मस्तिष्क फटा जा रहा था। 'यह सब-कुछ क्या हो रहा है—यह प्रश्न, लाख मन बोझ की तरह उसके मस्तिष्क पर लदा था, और उसका वह मस्तिष्क, तरह-तरह की घटनाओ के दुरूह मजिल की तरफ बढना चाहता था।

उसे क्रोध आ रहा था। शारदा को उसने शरण दी थी, उसके लिए गाँव-वालो से वैर मोल लिया था, मानसिक अशाति को आमन्त्रित किया था, लेकिन शारदा की दृष्टि मे इन बातो का कोई महत्त्व नही था 'क्या मनुष्य इतना कृतघ्न होता है?'—जग्गू अपने आपसे पूछता। शारदा की सूरत उसके सामने उभर आती—सद्य स्नाता, कोमल, सवेदनशील, प्रेम की दीवानी, क्रोध से आरक्त, तमतमायी हुई ' जग्गू आँखे बन्द कर लेता, आँखे खोल देता, ठहरकर कुछ देखने लगता, चक्कर लगाने लगता और फिर बैठ जाता···जग्गू के मस्तिष्क मे अब एक नया प्रश्न उठ खडा हुआ—'क्या मै शारदा से उपकार का बदला चाहता हूँ?' और तब जग्गू के मन मे ग्लानि उभरने लगी। उसे लगा कि वह भानुप्रताप से ईर्ष्या करता है, वह शारदा को प्यार करता है, प्यार ? हॉ, शारदा की खूबसूरती ने, शारदा की एकनिष्ठा ने और शारदा के विश्वास ने उसके हृदय मे पाप उत्पन्न कर दिया है ' लेकिन वह पाप नही था वह तो अभावजनित ईर्ष्या की उदासी थी जो जो !

जग्गू काफी देर तक बेचैनी की हालत मे चक्कर काटता रहा और तब अचानक ही वह घर की तरफ बढ चला। घर पहुँचकर उसने देखा कि ब्रह्मदेव सामान बॉध रहा था। शारदा की आँखे सूजी हुई थी। जग्गू का हृदय करुणा से भर उठा। उसने लपककर, ब्रह्मदेव के हाथ से बिस्तर छीन लिया

और उसे खोलकर खाट पर बिछाता हुआ बोला——

"बिस्तर बिछाने की चीज होती है, लपेटने की नही।" ब्रह्मदेव मुँह ताकने लगा। शारदा करुणार्द्र स्वर मे ब्रह्मदेव पर बरस पड़ी——

"मुँह क्या देख रहे हो? जल्दी बाँधो बिस्तर!"

"किसलिए?"——जग्गू ने मनाने के स्वर मे पूछा।

"इससे आपको मतलब?" शारदा ने डपटकर पूछने की कोशिश की लेकिन उसके स्वर की दीनता प्रकट हो गयी।

"मुझे मतलब है, तभी तो पूछ रहा हूँ।"

"लेकिन मुझे कोई मतलब नही है। मै यहाँ से जा रही हूँ ब्रह्मदेव! भीतर से अटैची ले आओ!" अतिम वाक्य शारदा ने ब्रह्मदेव से कठोर आज्ञा के स्वर मे कहा। जग्गू गरज उठा——

"खबरदार ब्रह्मदेव, अटैची लाये तो तुम्हारा हाथ तोड दूँगा। तुम बाहर जाकर आराम करो।" सात्विक क्रोध से जग्गू काँप रहा था। ब्रह्मदेव सहमकर बाहर निकल गया। शारदा तमककर भीतर से अटैची उठा लायी और आँगन पारकर बाहर निकलने ही वाली थी कि जग्गू ने लपककर शारदा की बाँह पकड ली। शारदा ने बाँह छुडाने की पूरी कोशिश की लेकिन व्यर्थ और अत मे हार मानकर वही आँगन मे धम्म से बैठ गयी। जग्गू को शारदा के बचपने पर हँसी आ गयी। उसने हँसते हुए स्नेह से कहा——

"तुम्हे कही नही जाना होगा।"

शारदा ने आँखे उठाकर देखा, जग्गू की निर्व्याज आँखो मे हँसी तैर रही थी। जग्गू ने पहली बार स्नेह से 'तुम' कहा था।

"बनावटी व्यवहार मुझे नही अच्छा लगता। मै सब समझती हूँ।" शारदा अपने दोनो ठेहुनो पर अपनी ठुड्डी रखे हुए बोली। जग्गू ने तपाक से कहा——

"यही तो मुसीबत है कि तुम कुछ नही समझती। बिना सोचे-समझे मुँह फुला लेना या उबल पडना कमजोरी की निशानी है। तुम्हे नही मालूम कि आजकल गाँव मे क्या हो रहा है।"

"मुझे क्या मतलब है आपके गाँव से !" शारदा के कठोर स्वर मे निश्छलता थी ।

"गाँव या समाज मे रहकर कितनी बातो से इन्कार करोगी ?" जग्गू ने किंचित दार्शनिक मुद्रा मे कहा । शारदा, शायद, इसी बात की प्रतीक्षा मे थी । बोल उठी—

"आप अपने घरवालो से हर बात पर इन्कार कर सकते है और मै गाँव की अनजान बातो से भी इकार नही कर सकती ?"

'तुमने क्या कहा है जिसे मैने इन्कार कर दिया है ?"

" 'उन्होने' आपको चिट्ठी लिखी, मैने भी आपसे विनती की लेकिन आपने एक छोटी-सी बात भी नही मानी । आपको डर है कि मकान बनाकर कही ये लोग यही न बस जाये । आप हम लोगो से नफरत करते है ।" शारदा ने अतिम वाक्य मानिनी के स्वर मे कहा । जग्गू भावना मे बहा जा रहा था । बोला—

"ऐसी बात नही है शारदा । मै तुमसे नफरत करने की बात सोच भी नही सकता वल्कि जब से तुम्हे देखा है, न जाने क्यो, गार्हस्थ्य-जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया है । पहले मै बिल्कुल वैरागी था, अब अनुरागी बनता जा रहा हूँ ।"

"फिर मुझे भगाना क्यो चाहते है ?"

"किसने कहा कि मै तुम्हे भगाना चाहता हूँ । मेरा बस चले तो तुम्हे हमेशा-हमेशा के लिए रोक लूँ । लेकिन तुम पराया धन ठहरी । मजबूर हूँ ।" जग्गू की यह बात सुनकर शारदा भी भावातिरेक से भर उठी—

"मै भी आपको अपना बडा भाई समझती हूँ । इसीलिए तो आपसे लड जाती हूँ । देखिए न, इस घर मे कदम रखते ही मै ऐसी हो गयी कि बात-बात मे आपसे लडने लगी । पता नही, मै ऐसी क्यो हो गयी ! अपने घर पर तो मै किसी से भर-मुँह बात भी नही करती थी ।" यह कह शारदा उठ खडी हुई और बरामदे में पडी खाट पर बैठ गयी । जग्गू और शारदा, दोनो बहुत देर तक तरह-तरह की बाते करते रहे । मकान की नीव खुद-

वाने की बात भी तय हो गयी।

किसी बात का परिणाम तर्क-वितर्क से नही निकलता। वह तो समय विशेष की मानस-भाव-तीव्रता का सुफल या कुफल होता है। जग्गू भावना की धारा मे बहा जा रहा था, विरोध-अवरोध का झझावात उठाकर वह अपनी रागात्मकता की नाव को खतरे मे डालना नही चाहता था। जग्गू के आचरण, उसकी भगिमा, मुद्रा, उसके विचार और बातचीत करने का ढग असामान्य था—असाधारण था। वह न तो बहुत पढा-लिखा था और न बिल्कुल अनपढ। गाँव का वातावरण जितना सरल और स्वच्छ दीखता है, उतना होता नही। छोटी-सी जगह मे, छोटी बाते ही तूफान उठाने को काफी होती हैं। बात-बात पर माया और ब्रह्म की दुहाई देनेवाले ग्रामीण, अपनी शान या भौतिक समृद्धि के लिए, सहोदर भाई का गला काटने से भी नही हिचकिचाते। जग्गू सस्कार और विचार से वैरागी था, व्यवहार से कर्मठ, ऊपर से स्थितप्रज्ञ लेकिन भीतर से मोम जैसा। इसी लिए, गाँववालो की स्वार्थपरता, क्रूरता और नीचता को वह उनकी मूढता समझता। मुद्दत तक कठोरता और एकाकीपन का नीरस-जीवन व्यतीत करने के बाद जग्गू अचानक ही, अनजाने ही तरह-तरह की भयकर घटनाओ से सम्बद्ध हो गया। उसकी सुप्त भावनाएँ जागृत हो उठी। अनजान-वृत्तियो ने जग्गू के जीवन मे हलचल और तूफान उठा दिया। जग्गू को नई दृष्टि मिली। उसने देखा ·· महसूस किया कि दाह, ईर्ष्या, छल, क्रूरता और नग्न स्वार्थ के अधकार मे वह भटकता जा रहा है। शारदा और अनुराधा, उसके जीवन मे, ज्योति की हल्की किरण बनकर भासमान हो गयी। जग्गू सोचता कि यहाँ थोडा आराम तो मिलता है, प्यार की चेतना तो जागृत होती है। और इस तरह जग्गू रेशमी उलझनो मे जकडकर निस्पन्द हो जाना चाहता।

प्रेम और करुणा की राह दुर्गम और अछोर होती है—जग्गू इस सत्य से अपरिचित था।

१३

गुरुजी को स्वस्थ नही होना था और न हुए। पन्द्रह रोज तक शारीरिक-मानसिक कष्ट सहन करते-करते आखिर वह थक गए और सोलहवे रोज निष्प्राण होकर ससार से चल बसे। अनुराधा मूक हो गयी। उसके लिए छोटा-सा गाँव, विराट-विश्व की तरह, भयावना बन गया। वह बिल्कुल अकेली रह गयी। जग्गू की इच्छाएँ, सस्कार की सीमाओ से टकराकर तडप उठी। शेष गाँव ज्यो का त्यो स्थिर रहा। अपने पिता की अतिम क्रिया समुचित ढग से सम्पन्न करने मे अनुराधा ने कोई कोर-कसर नही उठा रखी। रुपये-पैसे के सम्बन्ध मे जग्गू से कुछ कहने मे उसे हिचक और लज्जा महसूस हुई। बिसेसरसिंह ने स्वेच्छा से सारा खर्च पूरा करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। अनुग्रह के बोझ से अनुराधा झुक गयी। बिसेसरसिंह, बिना समय-असमय का ध्यान किये, अनुराधा के घर पहुँच जाते और हाल-चाल पूछने बैठ जाते। इस प्रकार समय बीतने लगा।

जग्गू ने नीव खुदवानी शुरू कर दी थी। गाँववाले कौतूहल और ईर्ष्या से मरे जा रहे थे। चारो तरफ चर्चा थी कि जग्गू के घर से, जमीन खोदने पर अशर्फियो के घडे निकले है। एक अनजान आदमी के कहने पर, जग्गू ने, उतने बडे मकान की नीव खुदवानी शुरू कर दी थी। गाँववालो का कौतूहल और ईर्ष्या करना स्वाभाविक ही था।

जब नींव डाली जाने लगी और सैकडो रुपये कपूर की तरह उडने लगे तब जाकर जग्गू को अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ। शारदा के पास के रुपये भी समाप्त हो चुके थे। उधर भानुप्रताप का कही पता नही था। जग्गू को अपने पर क्रोध आता। शारदा से वह कुछ कह नही पाता क्योकि भानुप्रताप के विरुद्ध वह एक शब्द भी नही सुन सकती थी। आखिर एक दिन

शारदा से जग्गू की अच्छी-खासी झडप हो गयी। जग्गू तिल-मिलाकर अपने घर से निकल भागा और अनायास ही अनुराधा के घर चल पडा।

अनुराधा घर के भीतरी ओसारे मे, दीवार से सटकर, खोयी-खोयी-सी बैठी हुई उगलियो से लकडी तोडती जा रही थी। अनुराधा को देखते ही जग्गू अपनी परेशानी भूल पूछ बैठा—

"किस चिंता मे डूबी हो अनुराधा ?" जग्गू के इस प्रश्न से अनुराधा चौककर उठ खडी हुई। क्षण-भर वह सहमी रही, फिर जाकर आश्वस्त हुई। जग्गू को, अनुराधा की यह स्थिति देखकर आश्चर्य हुआ। उसने फिर पूछा—

"क्या बात है ?"

"कुछ नही ! मैंने समझा, कोई अनजान आदमी आ धमका।" अनुराधा ने कृत्रिम हँसी हँसते हुए कहा। लेकिन घबराहट की छाया अभी भी उसके चेहरे पर विद्यमान थी। जग्गू का आश्चर्य आशका मे बदल गया। उसने अधिकारपूर्वक पूछा—

"बात क्या है ? इतनी घबरायी हुई क्यो हो ?"

"मै यहाँ से कही चले जाने की बात सोच रही थी कि अचानक आप आ गये।" अनुराधा के स्वर मे वेदना गूँज रही थी।

"कहाँ जाओगी ?"

"सोचती हूँ कि पटना चली जाऊँ। वहाँ मेरे मामू रहते हैं। डाकघर मे डाक-पीउन का काम करते है।"

"लेकिन यहाँ से क्यो जाना चाहती हो ? तुम्हारा घर-बार, खेत-खलिहान कौन देखेगा ?"

"आप जो है !" अनुराधा ने सहज गाम्भीर्य से कहा। जग्गू मन ही-मन अनुराधा के विश्वास और स्नेह से अभिभूत हो उठा लेकिन प्रकट मे बोला—

"नही-नही, मुझसे यह सब नही होगा।"

"क्या मेरे लिए इतना भी नही कर सकते ?"

"मै तुम्हारे लिए ··सब " जग्गू भावावेश के स्वर मे बोलता-बोलता सम्हल गया और फिर उसने कृत्रिम विरोध के स्वर मे कहा—"मै तुम्हारे लिए

सबसे अच्छा काम यही कर सकता हूँ कि तुम्हे कहीं भी जाने से रोक दूँ।"

"फिर तो मेरी जान ही चली जायगी! इज्जत-आबरू गँवाकर—नही जग्गू बाबू, मुझे यहाँ मत रोको।" अन्तिम वाक्य, अनुराधा के मुख से हलकी चीख की तरह निकला। जग्गू चिन्ता और कौतूहल से बेचैन हो उठा। उसने खीझकर पूछा—

"आखिर हुआ क्या है जो इस तरह की बाते कर रही हो? तुम औरतो का पार पाना बिल्कुल असभव है।"

"मेरे लिए आप क्यो माथा खराब करते है? अब तो मेरी जिन्दगी मे रोज ही कुछ न कुछ होता रहेगा। कहाँ तक आप लोगो से कहती फिरूँगी? मेरी किस्मत तो उसी दिन फूट गयी जिस दिन मेरा जन्म हुआ। अब क्या है? अब तो · अब तो " इससे आगे अनुराधा कुछ नही बोल पायी। उसका कठ अवरुद्ध हो गया। जग्गू उसके निकट आकर खडा हो गया। स्नेह और सहानुभूति के अतिरेक से वह पागल हो उठा। उसकी इच्छा हुई कि अनुराधा को अपनी भुजाओ मे जकड ले। लेकिन ऐसा उसने किया नही। केवल स्नेह के स्वर मे उसने पुकारा—

"अनुराधा!"

अनुराधा ने क्षण-भर के लिए सिर उठाकर देखा और फिर दोनो हथेलियो से अपना चेहरा ढँककर वह सिसकती रही। जग्गू ने करुणार्द्र होकर कहा—

"अनुराधा, क्या मुझे भी पराया समझती हो? मुझसे कहो कि तुम्हे क्या दुःख है। तुम जानती हो कि मै गाँववालो की बिल्कुल परवाह नही करता। मै सच कहता हूँ अनुराधा, न जाने क्यो, मेरी इच्छा होती है कि मै तुम्हारे लिए "

"बस-बस, अब और कुछ मत बोलिए। इस निस्सार जीवन के अन्त मे किसी का स्नेह लेकर मै क्या करूँगी। मुझमे अब क्या है! मै तो जीवित लाश हूँ।"

"मै भी तुम से कुछ नही चाहता अनुराधा। मैं तो अपनी इच्छा मात्र

प्रकट कर रहा हूँ, और मेरी इच्छा मे बदला या स्वार्थ की गध तक नही है। विश्वास करो। बस, मै इतना ही चाहता हूँ कि तुम इसी गाँव मे रहो। चन्द रोज मे ही मैने इस गाँव मे बहुत कुछ देख लिया—बहुत कुछ सीख और समझ लिया हे। मै अब अपनी समझ से फायदा उठाना चाहता हूँ। लेकिन मेरा मन कहता है कि यदि तुम इस गाँव से चली गयी तो मै कुछ नही कर पाऊँगा।"

"लेकिन मेरे यहाँ रहने से आपकी मुसीबत बढेगी ही, घटेगी नही। इधर, रोज ही बिसेसर बाबू यहाँ आते है। उनका हाव-भाव, उनके विचार और उनकी बातचीत मुझे बिल्कुल अच्छी नही लगती। मुझे बडा डर लगता है।"

"तो मना क्यो नही कर देती? वह तो बडा ही पतित आदमी है। पता नही, ऐसे चोर और उचक्के को गाँववालो ने सिर पर क्यो चढा रखा है।" जग्गू ने घृणा से दाँत पीसते हुए कहा। अनुराधा चुपचाप खडी रही। जग्गू क्षण-भर रुककर निर्णयात्मक स्वर मे बोला—

' उस पाजी से दूर ही रहो तो अच्छा है। वह आदमी नही, साँप है।"

"ऐसा मै नही कर सकती, तभी तो यहाँ से जाने की बात सोच रही हूँ।"

"ऐसा क्यो नही कर सकती? वह क्या कर लेगा?"—जग्गू ने क्षुब्ध होकर पूछा। अनुराधा ने सहज दीनता के स्वर मे कहा—

"वह क्या कर लेगा—यह तो मै नही जानती लेकिन, उसकी करुणा और उसकी विनम्रता से मुझे बडा भय लगता है। मैने उससे रुपये भी ले रखे है।"

"रुपये ले रखे है? कब लिये तुमने रुपये?"

"पिताजी का अतिम सस्कार करने के लिए। आपसे कहते मुझे लाज लगी थी।" अनुराधा ने सहमकर कहा। जग्गू कुछ देर मौन रहा। फिर अचानक ही सकल्पात्मक स्वर मे बोला—

"अच्छा, तुम चिता मत करो। मै कल सुबह तुमसे मिलूँगा और

देखो, बिसेसरसिह को यहाँ आने से मना कर दो—या रहने दो, मै स्वय निबट लूँगा।"

इतना कहकर जग्गू सीधे मुनिदेव के पास पहुँचा। मुनिदेव अपनी दुकान पर अकेला बैठा था।

"मुझे थोडे से रुपये चाहिएँ।" जग्गू ने पहुँचते ही कहा। मुनिदेव कुछ चौक-सा उठा। बोला—

"कितने रुपये ?"

"यह तो मुझे भी नही मालूम।" जग्गू झेपता हुआ बोला। मुनिदेव आश्चर्य से भौचक, जग्गू को देखता रह गया। मुनिदेव की मुख-मुद्रा देखकर जग्गू को अपनी हास्यास्पद स्थिति का ज्ञान हुआ। उस दिन शारदा के व्यवहार ने उसमे ईर्ष्या और विक्षोभ पैदा कर दिया था। अनुराधा की शालीनता और दीनता ने उसमे करुणा और सहानुभूति की धारा बहा दी थी। भावावेश की स्थिति मे प्राप्त हुआ तुलनात्मक ज्ञान समुद्र की तरह गहरा नही होता, पहाडी नदी की तरह उथला होता है और उसकी उद्दड लहरो के थपेडो से मर्यादा, गाम्भीर्य और अनुभव की नीव भी हिल उठती है। जग्गू थोडा सकोच मे पड गया। मुनिदेव ने मुस्कराते हुए पूछा—

"क्या बात है ? मकान की नीव अधूरी रह गयी क्या ? मै तो अभी भी सावधान किये देता हूँ दोस्त। यह तुम्हारा राजस्थानी सेठ भानुप्रताप मुझे तो चमगादड जैसा लगता है—पूरा चार सौ बीस !"

"उसके लिए नही माँग रहा हूँ।" जग्गू ने सकोच के स्वर मे कहा।

"फिर किसके लिए ?" मुनिदेव ने पूछा।

"अनुराधा ने अपने पिता के श्राद्ध-कर्म के लिए बिसेसरसिह से कर्ज ले लिया और अब वह बदमाश नाजायज फायदा उठाना चाहता है।"

"तो क्या, बिसेसरसिह को, रुपये देने तुम स्वय जाओगे ?"—मुनिदेव ने किंचित क्रोध से पूछा।

"हाँ।" जग्गू मुनिदेव के क्रोध का आशय नही समझ सका।

"और कहते हो—हाँ ! तुम्हारा दिमाग आजकल कहाँ चरने चला

गया है ?"

"क्यो, इसमे हर्ज ही क्या है ?" जग्गू ने सहज कौतूहल से पूछा।

मुनिदेव जेब से बीडी निकालता हुआ बोला—

"एक तो तुमने शारदा देवी को अपने घर मे बिठाकर सारे गाँव को अपना दुश्मन बना लिया और अब तुम, खुले आम, अनुराधा को रुपये-पैसे से मदद देना शुरू कर रहे हो। जानते हो, इसका परिणाम क्या होगा ? लोग, तुम्हारा त्याग और तुम्हारी आदमीयत देखने नही जायेगे। लोग देखेगे तुम्हे और उस अकेली जवान विधवा को और तब एक हगामा शुरू हो जायगा।"

"तो क्या हगामे के डर से एक असहाय विधवा को बर्बाद हो जाने दूँ ?"

"पता नही, आजकल तुम्हे हो क्या गया है। अजीब ढग की बाते करते हो और अजीब-अजीब काम करते हो। एक तिकडमी के चक्कर मे पडकर इतने बडे मकान की नीव डलवा दी, और अब तुम्हारे सिर पर विधवाओ के उद्धार का भूत सवार हुआ है।"

"अनुराधा मेरे लिए केवल एक विधवा ही नही है मुनिदेव ! तुम जानते हो कि हम दोनो बचपन से ही " जग्गू इसके आगे बोल नही सका। शर्म से उसने आँखे झुका ली। मुनिदेव के चेहरे पर, एक साथ ही, गभीरता और मुस्कराहट स्पष्ट हो उठी। वह जग्गू को बनाता हुआ बोला–

"तो यह बात है ! बासी कढी मे भी उबाल आने लगा।"

"नही मुनिदेव, अनुराधा को मै उस नजर से नही देखता। अनुराधा तो बचपन से मेरी मर्यादा और पवित्रता की प्रेरणा रही है। वह मेरी आस्था है। तुम भी तो मुझे बचपन से जानते हो।"

मुनिदेव अपने मित्र की विपन्नता पर दु खी हो गया। वह जानता था कि जग्गू का अनुराधा के प्रति मोह, उन दोनो के विनाश का कारण होगा। वह यह भी महसूस करता था कि दोनो ही त्याग और तपस्या की भूमि पर खडे है, दोनो ही निर्विकल्प-भाव से एक दूसरे मे स्थित है और दोनो ही

निश्छल, निरीह और निरुपाय हैं। मुनिदेव गाँववालो को भी जानता था। इसलिए वह आशका से मन-ही-मन काँप उठा। लेकिन वह धर्म-सकट मे पडा रहा। उसकी इतनी भी हिम्मत नही हुई कि वह जग्गू को इस राह पर बढने से रोक दे। काफी देर की चुप्पी के बाद मुनिदेव बोला—

"अच्छी बात है ! अनुराधा से पूछ आओ कि उसने कितने रुपये कर्ज लिये हैं। इन्तजाम हो जायगा। हाँ, तुम बिसेसरसिह से इस सम्बन्ध मे कोई बात मत करना। इसी मे अनुराधा की भलाई है और मैं समझता हूँ कि तुम अनुराधा की भलाई ही चाहते हो।"

"लेकिन, वह रोज ही अनुराधा के पास पहुँच जाता है। अगर उस दानव ने कही कोई ऐसी-वैसी हरकत शुरू कर दी तो ?"

"तुम इसकी चिंता मत करो। बिसेसरसिंह कायर शैतान है। वह अपनी मान-प्रतिष्ठा पर दाग नही लगने देगा। इसलिए, वह समाज से छिपकर पतितो जैसा काम करता है, और समाज के सामने वह बहुत ही महान और आदर्श व्यक्ति बनने का स्वाग रचता है। ऐसा आदमी अनुराधा पर ज़ोर-ज़बरदस्ती नही कर सकता।"

"तुम भी तो कायरो जैसी बाते कर रहे हो। आखिर वह होता कौन है अनुराधा के यहाँ बिना बुलाये जानेवाला ?" जग्गू ने तमककर कहा।

मुनिदेव को जग्गू की सरलता पर हँसी आ गयी। बोला—

"बच्चो की तरह बाते मत करो जग्गू ! आखिर तुम कौन होते हो उसे रोकनेवाले ?"

"मै ? मै मै तो अनुराधा की तरफ से बोल रहा हूँ। मै तो "

"बस-बस ! किसी दूसरे आदमी के सामने ऐसी बात मत बोलना नही तो अनुराधा को लोग कच्चा ही चबा जायेंगे। तुम्हारा तो कुछ नही होगा। मै जो कहता हूँ वह करते चलो। फिर देखो कि साँप भी मरता है और लाठी भी सलामत रहती है।"

उस दिन जग्गू ने अनुराधा के यहाँ दुबारा जाना अच्छा नही समझा। वह गुमटी पर चला आया। पश्चिम मे सूरज डूब रहा था। जग्गू, बहुत देर

तक, उसी ओर देखता रहा। गाँव के घरो से धुआँ उठता रहा, चीख-पुकार मचती रही और गुमसुम अधकार धरती पर उतरता रहा—बिखरता रहा, ठडी हवा के झोको से कपन-सिहरन सुलगती रही लेकिन जग्गू सध्या के अवसादमय चित्र-जैसा जडीभूत बैठा रहा—न जाने कब तक! शायद बचपन से लेकर जवानी तक!! लेकिन सात बजे की गाडी पास होते समय, उसकी धमक से, जग्गू की तन्द्रा टूट गयी और तब उसने अचकचाकर देखा—चारो ओर दुर्निवार अधकार व्याप्त था।

१४

काफी रात गये जग्गू को झपकी लगी ही थी कि चीख़-चिल्लाहट सुनकर वह लपककर गुमटी से बाहर निकल आया। उसके घर की ओर से ब्रह्मदेव की तेज आवाज आ रही थी। ब्रह्मदेव उसी को पुकार रहा था। अंधकार मे वह कुछ देख या समझ नही पाया और घर की ओर दौड पडा।

शोर-गुल सुनकर गाँव के बहुत से लोग इकट्ठे हो गये थे। जग्गू ने देखा—शारदा के लगभग सभी कपडे-लत्ते, कुछ जेवर और लगभग डेढ सौ रुपये, जो उसके पास कुल पूंजी शेष थी—चोरी हो गये थे। शारदा बरामदे मे खडी मुस्करा रही थी। उसके लिए जैसे कुछ हुआ ही नही। जग्गू को देखते ही वह बोली—

"क्यो भैया! तुम्हारे गाँव के लोग तो अपनी बहन का सामान भी नही छोडते!"

"जिसने अपने आपको चुरा रखा है उसके लिए बहन-भाई, माँ-बाप, अपना-पराया सब एक समान है। जिस गॉव का मुखिया ही डकैत हो उस गॉव का भगवान ही मालिक है।" जग्गू का स्वर व्यग्य मे डूबा हुआ था। दरवाज़े पर गाँव के बहुत से लोग इकट्ठे थे। जग्गू, सही बात जानने की व्यग्रता मे, सीधे घर के भीतर चला आया था। बाहर कोलाहल सुनकर उसे गाँववालो का ध्यान आया। बाहर निकलकर उसने देखा—काफ़ी सरगर्मी मची हुई थी। जग्गू को देखते ही गणेशसिंह आगे बढकर बोले—

"मैंने मुनेश्वर को सामान के साथ भागते देखा है। यह चोरी, बेशक उसी ने की है।"

"हॉ-हाँ, यह उसी पाजी का काम है।"—कई गाँववालो ने आक्रोशपूर्ण स्वर मे हाँ मे हॉ मिलायी। लेकिन जब गवाही देने की बात उठी तब

सबके सब, एक-एक कर खिसकने लगे। बिचित्तरसिंह और गोपाल के सिवा किसी की हिम्मत नही हुई कि बिसेसरसिंह के चेले मुनेश्वर के खिलाफ खुलकर सामने आये। बात वही खत्म हो गयी क्योकि गोपाल या उसके पिता ने मुनेश्वर को भागते नही देखा था। धीरे-धीरे, जग्गू का घर फिर सन्नाटे मे डूब गया। जग्गू मन-ही-मन क्रोध से उबल रहा था और अपनी असमर्थता पर उसे झुँझलाहट हो रही थी।

पूरब का आकाश लाल हो उठा। अधकार धुलने लगा। जग्गू के तन-मन की समस्त उदासी उसकी आँखो मे सिमट आयी। 'अब वह कैसे इस गाँव मे रहे?—क्या करे?' यह सोचता हुआ घर के भीतर आया। शारदा चाय बना रही थी।

"पता नही, गाँव के ये तीन शैतान कब मरेंगे?" एक लम्बी उसाँस के साथ बोलता हुआ, जग्गू, उदास मन से बरामदे की खाट पर बैठ गया। शारदा ने जग्गू को देखा और स्नेह के स्वर मे कहा—

"क्यो बेचारो को कोसते हो? ठीक-ठीक मालूम तो है नही कि किसने चोरी की है!"

"बिल्कुल मालूम है। बिसेसरसिंह और उसके दोनो चेलो को छोड गाँव मे ऐसा कृतघ्न और कोई नही है। असल मे बिसेसरसिंह इस गाँव का कलक है। एक सडी मछली पूरे तालाब की मछलियो को नष्ट कर देती है।"

"लेकिन आप क्यो चिंतित होते है? आपको तो उस तालाब से निकाल बाहर कर दिया गया है।" शारदा चाय का प्याला बढाती हुई बोली। जग्गू कुछ नही बोला। उसी समय मुनिदेव वहाँ आ पहुँचा। शारदा को प्रणाम करता हुआ वह जग्गू से बोला—

"सुना, यहाँ चोरी हो गयी। मुझे तो अभी मालूम हुआ और भागा चला आ रहा हूँ।" जग्गू कुछ नही बोला। शारदा ने एक प्याला चाय मुनिदेव की ओर बढा दिया। चाय की चुस्की लेता हुआ मुनिदेव बोला—

"सुबह पाँच बजे की गाडी से मुनेसरा मुजफ्फरपुर गया है शायद। क्योकि

उस समय उसे मैने स्टेशन पर देखा था। मुझे तो लगता है कि यह उसी की बदमाशी है। कल शाम को वह मुझसे ताडीखाने मे मिला था।' अचानक मुनिदेव को कुछ याद आया और वह जेब से एक लिफाफा निकालकर जग्गू की ओर बढाता हुआ बोला—

"कल शाम को तुम्हारे चले आने के बाद डाक-पीउन तुम्हे ढूढ रहा था। मैने उससे यह चिट्ठी लेली।" जग्गू ने लिफाफे को उलट-पलटकर देखा और उसे शारदा की ओर बढा दिया।

शारदा विह्वलता से पत्र पढने लगी और धीरे-धीरे उसके मुखमडल की स्वाभाविक चपलता लुप्त होने लगी और वह पीली पडती गयी। जग्गू और मुनिदेव बेचैनी से उसकी ओर देखते रहे कि अचानक शारदा अपनी हथेलियो से मुँह ढँककर रोने लगी। जग्गू अवाक् देखता रहा। मुनिदेव ने बढकर पूछा—

"क्या बात है?" शारदा और जोर से रोने लगी। मुनिदेव ने फिर पूछा—

"क्या लिखा है चिट्ठी मे? किसने लिखी है?"

लेकिन शारदा रोती ही रही। बोली कुछ नही।

जग्गू से नही रहा गया। उसने शारदा के पास-पडी चिट्ठी उठा ली और पढना शुरू किया। उसमे लिखा था—

" ''मै लुट गया। व्यापार मे मुझे ऐसा घाटा लगा कि अब मै कगाल हो गया हूँ। अब किस मुँह से तुम्हारे पास आऊँ! जगनारायणजी को कौन-सा मुँह दिखाऊँ! मैने उन्हे भी धोखा दिया। अब तो आत्महत्या के सिवा मेरे लिए और कोई मुक्ति का मार्ग नही है ।"

पूरी चिट्ठी पढकर जग्गू ने मुनिदेव से कहा—

"भानुप्रताप जी को व्यापार मे बहुत घाटा उठाना पड गया।" उसने चिट्ठी को तह करके शारदा के पास रख दिया। मुनिदेव ने शारदा को समझाने-बुझाने की कोशिश की लेकिन वह रोती ही रही। आखिर वह जग्गू से विदा लेकर चला गया। ब्रह्मदेव कही बाहर गया हुआ था।

जग्गू कुछ देर तक कुछ निश्चय नही कर पाया। दया, करुणा और सहानुभूति से उसका कलेजा फटा जा रहा था लेकिन वह क्या बोले, क्या करे —यही बात उसकी समझ मे नही आ रही थी। यदि भानुप्रताप ने सच-मुच ही आत्महत्या कर ली तो शारदा का क्या होगा ?"—यह सोचकर ही जग्गू का दम घुटने लगता। शारदा का रोना उससे देखा नही गया। शारदा के पास ही वह बैठ गया और उसका कधा पकडकर बोला—

"अब रोने से क्या होता है ? और तुम तो बडी दिलेर औरत हो। सारा सामान चोरी चले जाने पर भी अभी-अभी हँस रही थी। फिर रोने क्यो लगी ?"

"वह बहुत ज़िद्दी है, आत्महत्या न कर ले।"—शारदा, मरती हुई हिरणी जैसी आँखो से जग्गू को देखती हुई बोली। उसका पूरा चेहरा आँसुओ से तर था। जग्गू पूर्णतया द्रवित हो उठा। उसने अपने हाथो से शारदा के आँसू पोछ दिये और कहा—

"नही शारदा, भानुप्रताप ऐसा नही करेंगे। तुम उन्हे यहाँ आने के लिए लिख दो।"

"मेरे लिखने से वह हर्गिज नही आयेंगे। उन्होने आपके रुपये मकान मे फँसा रखे है इसलिए वह आपके सामने आने मे हिचकते होगे।"—शारदा ने अवरुद्ध-स्वर में कहा। जग्गू तपाक से बोला—

"तो मै उन्हे पत्र लिख देता हूँ। लेकिन शर्त यह है कि तुम चुप हो जाओ।"

"अब तो हम लोग राह के भिखारी हो गये भैया !"

"ऐसी क्या बात हो गयी ? मेरे जीते-जी मेरी बहन भीख नही मांग सकती। मुझ पर भरोसा रखो ! गरीब आदमी हूँ लेकिन इज्जतवाला हूँ। समझी ?"—जग्गू ने किंचित गर्व से कहा। मनुष्य के मन से कुछ कर गुजरने की वृत्ति यदि विलुप्त हो जाय तो जिन्दगी बडी सरल और सुखद राह से गुजरे। जग्गू आरम्भ से ही दुनियावी नही था। शारदा को रोते देखकर उसने अनायास ही सरक्षण का वचन दे दिया। परिणाम की उसने

कल्पना तक नही की।

उसी समय उसने भानुप्रताप को एक पत्र लिखा। शारदा किंचित आश्वस्त होकर, उदास मन से अपने काम-धाम मे लग गयी। जग्गू, ब्रह्मदेव को डाक-घर मे पत्र छोड आने को कहकर प्रफुल्लित मन से अनुराधा के घर की ओर चल पडा। उस समय सूरज पेडो की फुनियो तक चढ आया था। हवा मे सुखद उष्णता आ गयी थी। जात-पाँत से निष्कासन, चोरी और दिवाला पिट जाने की घटनाओ के बावजूद, जग्गू, पुलकित हो रहा था। शुद्ध मन से किया गया लघु उपकार भी उपकारी के रक्त मे उत्साह का नशा उडेल देता है और तब अभाव और दु ख मनुष्यता के पोषक तत्व बन जाते है।

अनुराधा स्नान करके आयी थी और आँगन मे गीली साडी फैला ही रही थी कि जग्गू बिना आवाज दिए भीतर पहुँच गया। अनुराधा चौंककर वही बैठ गयी क्योकि उसने समुचित वस्त्र नही पहन रखे थे। जग्गू लजाकर उल्टे पैर बाहर लौट गया और वही से चीखकर बोला—

"कितने रुपये कर्ज लिये है ?" अनुराधा ने कोई जवाब नही दिया। जग्गू ने तीन-चार बार पूछा फिर भी अनुराधा चुप रही। जब जग्गू ने घर मे पहुँच जाने की धमकी दी तब अनुराधा बोली—

"तीन सौ रुपये।"

जग्गू, न जाने कौन-सी—कैसी तस्वीर अपने मन मे अंकित किये स्टेशन की ओर चला कि उसका चेहरा स्निग्धता से धुला हुआ-सा लग रहा था और उसकी आँखे रह-रहकर बद हो जाती थी। वह अपने आप मे खो गया था। गहरे-नीले मनभावन आकाश का सौन्दर्य, अप्राप्य होने पर भी, जग्गू को महान् सुखद और मादक आकर्षण से सराबोर लग रहा था।

सामुदायिक-योजना-अफसर रामपालसिंह सदल-बल आ पहुँचा। वैसे उसका मुख्य कार्यालय मुजफ्फरपुर था लेकिन देसौरा के इलाके मे अभी नया काम शुरू हुआ था, इसलिए, कुछ दिनो तक उसे गाँव मे ही अधिकतर रहना था।

घर मे चोरी होने के बाद से जग्गू बहुत आशकित हो उठा था। रामपाल के आने से उसे थोडी राहत मिली।

अनुराधा ने अचानक ही बिसेसरसिंह के सभी रुपये चुका दिये। बिसेसरसिंह को यह बात समझते देर नही लगी कि नदी का पानी ही नदी मे आया है और वह जग्गू से मन-ही-मन जल उठे। अनुराधा के व्यवहार ने बिसेसरसिंह के आवागमन को कोई प्रोत्साहन नही दिया, और तब जलन का भाव प्रतिहिसा मे बदल गया। सारे गाँव मे शोर हो गया कि अनुराधा ने एक रात मे ही तीन सौ रुपये का कर्ज उतार दिया और आश्चर्य तो यह कि उसी दिन सामुदायिक-योजना-अफसर रामपाल जग्गू के यहाँ आया था। गाँव की औरते अनुराधा के लिए काल बन गयी। गुरुजी के रहते वहाँ बहुत कम औरतें आती थी। वैसे भी गॉव मे किसी विधवा की पूछ कम होती है। लेकिन इधर गॉव की बहुत-सी औरतें अनुराधा के पास आने लगी। औरतें, अनुराधा की अपनी बनकर, उसे गॉव की चर्चा सुनाती। अनुराधा सब-कुछ सुन-सुनकर घुटती रही। रामपाल को उसने कभी देखा भी नही था। अनुराधा को इसी बात का दु ख था कि एक निरपराध आदमी उसके चलते व्यर्थ ही बदनाम हो गया।

वह घटो बैठकर रोती रहती। खाना-पीना उसके लिए हराम हो गया। सूनापन उसके तन-मन मे श्मशान की शान्ति भर देता। गाँव की औरतें

आ-आकर उसके मस्तिष्क मे वीभत्स कोलाहल पैदा कर जाती। चन्द रोज मे ही, सुरूपा अनुराधा ककाल-सी दीखने लगी। लेकिन उसका वह रूप भी गाँववालो के लिए ईर्ष्या का कारण बन गया। लोग कहने लगे कि अब तो अनुराधा पाप की अति करने लगी। अनुराधा यह सब सुनती और वेदना की तीव्रता से ऐठकर रह जाती। वह क्या करे?—कही भाग जाय? या आत्महत्या कर ले? ऐसी बाते वह सोचा करती और रोया करती।

"कैसी हो अनुराधा?" आत्महत्या के विचार मे डूबी हुई अनुराधा का हृदय, यह प्रश्न सुनकर धक् से रह गया। उसने आँखे उठाकर देखा—सामने जग्गू खडा था।

"पता नही, बैठी-बैठी क्या सोचा करती हो?"—जग्गू ने किंचित झुँझलाहट से कहा। अनुराधा के होठो पर मुस्कराहट दौड गयी लेकिन उस मुस्कराहट मे भयकर चीत्कार का सकेत था, उसमे वेदना की असीमता चित्रित थी। जग्गू की ओर देखकर वह बोली—

"घर मे बैठी-बैठी तरह-तरह की बाते सुनना और उन्हे सोचना, यही तो काम रह गया है जग्गू बाबू।"

"हाँ-हाँ, तरह-तरह की बाते मै भी सुनता हूँ, बहुत सुनता हूँ। लेकिन उससे क्या? कुत्तो के भौकने से हाथी बाजार मे चलना बन्द नही कर देता।"

"आपको मालूम है कि लोग मेरे बारे मे क्या कहते है?"—अनुराधा, विषय की गम्भीरता को यो ही हवा होते देख, ज़रा रुआँसा होकर बोली। जग्गू स्नेहवश हँसने लगा और बोला—"तुम अकेली हो, जवान हो और सबसे बडी मुसीबत यह कि सुन्दर हो। फिर लोग तुम्हारे बारे मे बाते नही करेगे तो क्या झनखू चमार की दादी के बारे मे करेगे? बैठे-बिठाये परेशानी मोल लेती फिरती हो।"

"आपको तो सब-कुछ ऐसा ही मालूम होता है।"—अनुराधा ने चिढकर कहा लेकिन उसके स्वर मे किंचित आश्वस्त होने का भाव स्पष्ट था।

"अरी पगली, मुझे तो इस गाँव ने जाति से भी निकाल रखा है। लेकिन उससे मेरा क्या बिगड गया? उनकी सख्या ही कम हो गयी। मै तो अभी

भी ज़िन्दा हूँ और रहूँगा। अच्छा, मै एक जरूरी काम से आया हूँ। बाहर रामपाल साहब खडे है। वह तुमसे कुछ बाते करना चाहते है।"

"रामपाल साहब!" अनुराधा चौंकती-सी बोली।

"हाँ।"

"मुझसे क्या बाते करनी है?"—अनुराधा के स्वर मे आशका थी। लेकिन उसे देखने के लिए जग्गू रुका नही। वह बाहर जाकर रामपाल को बुला लाया।

अकारण विरोध, ईमानदार और भावुक को अतिवादी बना देता है। जग्गू भी ईंट का जवाब पत्थर से देना जानता था। और दे सकता था। लेकिन, इसमे विरोधियो के अस्तित्व को बल मिलता और जग्गू को अपनी राह पर रुक जाना पडता। रामपाल के ससर्ग ने जग्गू की भावुकता को विवेक दिया और वह एक नई राह पर चल पडा। उस राह पर अनुराधा को सहकर्मिणी बनाना वह नही भूला। वह राह थी—सच्चाई की, साधना की, कर्त्तव्य की। उसने महसूस किया कि व्यर्थ की बातो मे रहकर, व्यर्थ ही, वह अपना जीवन नष्ट कर रहा है। रामपाल ने उसकी आँखे खोल दी और वह देश के सात्विक-विकास मे जुट पडा।

"नमस्ते!"—रामपाल अनुराधा के सामने खडा था। अनुराधा लाज सें गड गयी। रामपाल ने सकोचपूर्ण शालीनता से कहा—

"सुना, आप पढी-लिखी है इसलिए, आपको तकलीफ देने आया हूँ।" अनुराधा चुप रही। रामपाल पूर्ववत स्वर मे बोलता रहा—"आपकी बहुत-सी बहने अनपढ है, वे न तो रहना जानती है और न जीना। अगर आप जैसी देवियाँ चाहे तो सैकडो गँवार औरतो की जिन्दगी सुधर जाये।"

"मेरी बात कौन सुनेगा? मै तो सब औरतो की आँखो का काँटा बन रही हूँ।"

"मै आपको उपाय बताऊँगा। पहले तो आपको खुद ट्रेनिग लेनी होगी। इसके लिए, आपको कुछ रोज़ के लिए पटना जाना होगा। वहाँ से लौटकर आप हरिजनो और अन्य छोटी जाति की औरतो को पढाना शुरू कर दीजिए।

वे आपकी बात सुनेगी। फिर देखियेगा कि आपकी जाति की औरते भी ईर्ष्यावश अपने आप दौडी आयेगी।

अनुराधा गॉव के वातावरण से ऊब गयी थी। वहॉ एक पल रहना भी उसके लिए पहाड मालूम होता था। इसलिए वह शीघ्र ही सहमत हो गयी।

जग्गू जब रामपाल के साथ घर लौटकर आया तब देखता क्या है कि भानुप्रताप पहुँचे हुए है। जग्गू ने रामपाल से उनका परिचय कराया। रामपाल बडे उल्लास और उत्साह से मिला, उसने आत्मीयता जताने के विचार से तरह-तरह की बाते पूछी। लेकिन भानुप्रताप ने बातचीत मे कोई जिज्ञासा और दिलचस्पी नही दिखायी। बल्कि उनके स्वर से उपेक्षा और अहकार की बू आ रही थी। जग्गू को भानुप्रताप का व्यवहार अच्छा नही लगा। कुछ देर तक बाहर ठहरने के बाद भानुप्रताप, गभीर मुद्रा मे, मुँह से सीटी बजाते हुए भीतर चले गये।

"बेचारे को व्यापार मे घाटा लग गया है। इसलिए बडा दु खी है। शारदा तो रो-रोकर जान देने पर उतारू थी।" जग्गू ने रामपाल को स्थिति से अवगत कराने के विचार से यह बात कही ताकि वह, भानुप्रताप के व्यवहार का बुरा न मान जाये।

"अच्छा ? किस चीज का व्यापार करते थे ?" रामपाल ने सहानुभूति और जिज्ञासा के स्वर मे पूछा। जग्गू ने कहा—

"यह तो मुझे भी मालूम नही। लेकिन जरूर कोई बडा कारोबार होगा। तभी तो इतना बडा मकान बनवा रहे थे। आपने तो देखा ही होगा।"

"जी हॉ।" रामपाल कुछ सोचता हुआ बोला। दोनो कुछ देर चुप रहे।

"अब मकान की इस नीव का क्या कीजिएगा ?"—रामपाल ने चुप्पी तोडते हुए पूछा। जग्गू उदासी से हँसता हुआ बोला—

"करना क्या है ! पडी रहेगी वैसी ही। उसे उखडवाकर फिर से खेत बनवाने मे भी तो काफी रुपये लग जायेगे।"

"इसे आप सरकार के हाथ बेच देगे ?"

"क्यो ?"

"असल मे, इस इलाके मे बुनियादी तालीम के लिए एक स्कूल भी बनने वाला है। वह स्कूल यदि यही, इसी जमीन मे, बन जाये तो गाववालो को भी सुविधा होगी और मुझे भी जमीन के लिए कही भटकना नही पडेगा।"

"भला इसमे मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? अधा चाहे दोनो आँख !" जग्गू ने तपाक से कहा। बात तय हो गयी।

रामपाल कुछ देर के बाद इलाके का निरीक्षण करने चला गया। जग्गू ने भानुप्रताप से पूरी बाते नही की थी। अत वह भानुप्रताप से मिलने भीतर पहुँचा। भानुप्रताप खाट पर बैठे हुए कोई अखबार पढ रहे थे। उनके बाये हाथ की उँगलियो मे जलता सिगरेट दबा हुआ था। दाहिने हाथ मे अखबार और बाये हाथ की हथेली गाल के नीचे ऊपर हो रही थी। जग्गू को देखकर भी उनके चेहरे पर स्वाभाविक गभीरता कमी नही। जग्गू चुपचाप उनकी बगल मे कुछ देर तक बैठा रहा। भानुप्रताप जग्गू को एक बार देखकर फिर अखबार पढने मे तल्लीन हो गये।

"कैसे घाटा लग गया ?" आखिर जग्गू से नही रहा गया और उसने पूछ लिया। भानुप्रताप ने सिर उठाकर जग्गू को ऐसे देखा, जैसे उन्होने प्रश्न सुना ही नही। जग्गू ने अपना प्रश्न दुहरा दिया। तब भानुप्रताप ने सक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया—

"मेरे पार्टनर ने मुझे धोखा दे दिया। कुछ लिखा-पढी थी नही कि मै दावा करता।"

जग्गू के मन मे यह बात जमी नही। उसे भानुप्रताप का किस्सा गढत जैसा लगा। फिर भी उसने पूछा—

"तब ? अब क्या करने का विचार है ?"

"अभी तक कुछ सोचा नही है।" भानुप्रताप ने अखबार के पृष्ठ उलटते हुए कहा।

"रामपाल साहब जानना चाहते थे कि आप कहा तक पढे-लिखे है।"

"मेरे पास डिग्री तो कोई नही है लेकिन, मै एम० ए० पास को भी पढा

सकता हूँ ।"—बडे दम्भ से भानुप्रताप ने कहा ।

जग्गू ने महसूस किया कि भानुप्रताप अजीब खोपडी का आदमी है । शायद अभी यह बहुत दु खी है—ऐसा सोचकर जग्गू चुप हो रहा । शारदा भी गुमसुम अपने घरेलू काम-धधे मे लगी थी । कुछ देर तक यो ही बैठे-बैठे जग्गू का मन ऊब गया और वह बिना कुछ बोले-बतियाये गुमटी पर चला आया ।

काफी दिन चढ आया था । खाना बनाने मे देर हो जाती इसलिए उसने चिउरा और गुड खाकर पानी पी लिया । रामपाल अभी लौटा नही था । जग्गू काफी देर तक, बाहर धूप मे खाट पर बैठा रहा और रामायण पढता रहा । वह इतनी तन्मयता से अरण्य-काण्ड मे डूबा हुआ था कि बिसेसरसिंह का आना उसे मालूम भी नही हुआ ।

"क्या पढ रहे हो जग्गू भाई ?" बिसेसरसिंह ने खाट पर बैठते हुए पूछा ।

"रामायण पढ रहा था । क्या करूँ बिसेसर बाबू, जब कभी थोडा-बहुत समय मिलता है, भगवान राम की गाथा पढकर आत्मा को पवित्र कर लेता हूँ ।"

"बहुत बढिया काम करते हो । मुझे तो माया-मोह से फुर्सत ही नही मिलती कि राम का ध्यान करके परलोक की चिता करूँ ।"

बिसेसरसिंह की इस बात से जग्गू को मन-ही-मन हँसी आ गयी । लेकिन ऊपर से वह गभीर बना रहा । थोडी देर तक इधर-उधर की बात चीत के बाद बिसेसरसिंह ने काम की बात शुरू की । सामुदायिक योजना के अधीन बहुत से काम शुरू किये गये थे । उन कामो मे, बिसेसरसिंह को, रुपया बनाने की काफी गुँजायश दीख पडी । इसीलिए वह रामपाल से सम्बन्ध बनाना चाहते थे । इस सिलसिले मे जग्गू को अपने साथ ले लेना उन्होने जरूरी समझा ।

काफी देर तक बिसेसरसिंह की लल्लो-चप्पो सुनते-सुनते जग्गू ऊब गया और बोला—

"यह सारी बाते आप रामपाल साहब से कीजिए। आप तो जानते हैं कि मुझे इन बातो से कभी कोई मतलब नही रहता।"

"लेकिन जग्गू भाई, यह तो देश-सेवा का काम है। हमारे-तुम्हारे जैसे लोग आगे नही बढेगे तो काम कैसे चलेगा ? अब गडक के बाँध की ही बात ले लो। इस काम मे तो मुझे मजबूरन भी पडना ही पडेगा, क्योकि यह बाँध ग्राम-पचायतो के अधीन ही सम्पन्न होना है। ऐसे बहुत से काम हैं जिसमे जनता का सहयोग बिल्कुल जरूरी है। मै तुम्हारे पास इसी-लिए आया हूँ कि ऐसे काम मे तुम्हारे जैसे ईमानदार आदमियो की सख्त जरूरत है।"

"जहाँ मै अपनी जरूरत महसूस करूँगा, वहाँ बिना बुलाये ही पहुँच जाऊँगा।"

"खैर, जसी तुम्हारी इच्छा ! लेकिन रामपाल साहब से मेरी सिफा-रिश तुम्हे ही करनी होगी।" बिसेसरसिह ने अधिकारपूर्वक कहा। जग्गू जल उठा—

"मुझसे यह सब नही होगा।"

"देखो जग्गू भाई, तुमने ही मेरे काम को नापसन्द किया था, और आज तुम्हारी बात मानकर ही मै लूट-पाट का काम बन्द करना चाहता हूँ। लेकिन मेरे बाल-बच्चे हैं, इज्जत-प्रतिष्ठा है और इन सबको बनाये रखने के लिए मुझे कोई-न-कोई उद्यम करना ही है। यदि तुम अच्छे काम मे भी मेरी मदद नही करोगे तो फिर मुझे मजबूर होकर अपने पुराने काम मे जुट जाना पडेगा। मै तो अच्छी राह पर स्वय चलना चाहता हूँ, लेकिन लोग चलने दे तब न।" बिसेसरसिह इस लम्बे व्याख्यान के पश्चात् दुखी और गभीर मुद्रा मे चुप बैठ गये। उनकी बातो से अधिक उनकी मुद्रा का जग्गू पर असर पडा। जग्गू को बिसेसरसिह की बातो मे सच्चाई की झलक मिली। वह बोला—

"अच्छी बात है। आप रामपाल साहब से मिलकर बाते कीजिए। मै भी उनसे कह दूँगा।" बिसेसरसिंह जग्गू की बात सुनकर मन-ही-मन खिल

उठे, लेकिन वह इस ढग से वोले जसे उन्होने जग्गू की बात सुनी ही नही––

"सच कहता हू जग्गू भाई, मुझे बडी ग्लानि होती है जब मे अपने कुकर्मो के बारे मे सोचता हू। लेकिन क्या करूँ ? आखिर, जिन्दा रहने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही है।" बिसेसरसिह बहुत ही भावपूर्ण मुद्रा मे बोल रहे थे। जग्गू ने उन्हे तोष दिलाने के विचार से कहा—

"अच्छा, अब पिछली बातो को भूल जाइए। रामपाल साहब जरूर कुछ-न-कुछ करेगे।'

"अच्छी बात है, मै रात मे लगभग आठ बजे तुम्हारे घर पर आऊँगा।" बिसेसरसिह अनासक्त भाव से बोले और उठकर चलते बने।

जग्गू बिसेसरसिह का जाना देखता रहा। सूरज पश्चिम की ओर झुका जा रहा था। खेत मे गेहूँ के बडे-बडे पौधे हवा के झोको पर लहरा रहे थे। जग्गू को धूप बडी सुखद मालूम दे रही थी लेकिन उसे मुनिदेव के पास जरूरी काम से जाना था, इसलिए वह उठ खडा हुआ कि तभी गोपाल आ पहुँचा।

" आप कही जा रहे है क्या जग्गू चाचा ?"—गोपाल ने पहुँचते ही पूछा।

"हाँ, जरा स्टेशन तक जा रहा हूँ। मुनिदेव से कुछ काम है।"

'चलिए, मै भी साथ चलता हूँ। रास्ते मे बात हो जायेगी।"

दोनो स्टेशन की ओर चल पडे। कुछ देर तक दोनो खामोश चलते रहे कि गोपाल ने किंचित सकोच से पूछा—

"जग्गू चाचा ! रामपाल साहब आपकी बात तो मानते ही होगे ?"

"क्यो ?"

"मुझे उनसे एक काम था।" गोपाल ने दीनता से कहा।

"भाई, वह बहुत पढे-लिखे है—अफसर है। मेरी बात वह क्यो मानने लगे ?"

"नही, आप उनसे कह दीजियगा तो मेरा काम अवश्य हो जायेगा।"

"पहले काम तो बताओ।"

"वह ' गडक के किनारे बाँध बननेवाला है। उसमे मै भी काम

करना चाहता हूँ। बात यह है कि घर पर बेकार ही बैठा रहता हूँ, यदि कुछ काम मिल जाये तो मन भी लगा रहेगा और कुछ जेब-खर्च भी निकल आयेगा। हर चीज के लिए बाबू से पैसा मागने मे शर्म लगती है। आप तो जानते है जग्गू चाचा कि मै शादी-शुदा हूँ, दो बच्चे भी है। और रूपनसिह के मुकदमे ने तो हम लोगो की रीढ ही तोड दी।"

जग्गू ने कोई जवाब नही दिया। स्टेशन पर पहुँचते ही फौजा खलासी से भेट हो गयी।

"कहाँ चले जग्गू बाबू ?"

"यही बाजार तक जा रहा हूँ। मुनिदत्त से कुछ काम है।"

"अरे बाजार-बाजार जाना छोडिए, बडे साहब आये हुए है। अभी गुमटी पर भी जायेगे। जल्दी से गुमटी पर पहुँचकर वर्दी-पेटी मे तैयार रहिए।"

"कौन साहब आये है ?"—जग्गू ने सहमकर पूछा।

"इजीनियर साहब और डी० टी० एस० साहब दोनो ही आये हुए है। देखते नही, वहाँ सैलून लगा हुआ है ?"

जग्गू उल्टे पैर गुमटी पर लौट आया। जल्दी-जल्दी उसने गुमटी के दोनो ओर की जगह साफ की और वर्दी-पेटी पहनकर प्रतीक्षा करने लगा। उसके मन मे तरह-तरह की आशकाएँ उठ रही थी। उसे अधिक देर तक प्रतीक्षा नही करनी पडी। उसने देखा कि स्टेशन की ओर से मोटर-ट्राली हडहडाती हुई चली आ रही थी। गुमटी पर आकर मोटर ट्राली रुक गयी। जग्गू ने झुककर सलाम किया लेकिन साहब बहादुरो ने उसके अभिवादन का कोई उत्तर नही दिया। इजीनियर साहब को जग्गू पहचानता था लेकिन डी० टी० एस० साहब कोई नये आदमी थे। इजीनियर साहब ने मुस्कराते हुए पूछा—

"क्यो जग्गू, आजकल तुम्हारी गुमटी पर बहुत चोरी होने लगी है ? क्या बात है ?"

"हुजूर, मेरी गुमटी पर तो कभी चोरी नही हुई। हाँ, इसके आस-पास

जरूर हुई है।"

"लेकिन तुमको मालूम है कि इससे रेलवे को कितना घाटा लगता है ?"

"घाटा तो बहुत लगता होगा हुजूर !"

"फिर तुम यहाँ किस मर्ज की दवा हो ?"—डी० टी० एस० ने डपटकर पूछा। क्षण-भर के लिए जग्गू के चेहरे का रग उड गया। वह कुछ नही बोल पाया। उसे चुप देखकर डी० टी० एस० ने फिर पूछा—

"तुम ड्यूटी के समय कहाँ रहते हो ?"

"यही रहता हूँ हुजूर !"

"झूठ बोलते हो। हमारे पास तुम्हारे खिलाफ रिपोर्ट पहुँची है कि तुम गुमटी पर कभी नही रहते और जितनी चोरी होती हैं, उनमे तुम्हारा हाथ रहता है। इसके पहले कि यह मामला पुलिस मे जाये, हम लोगो को तुम ठीक-ठीक बता दो कि मुजरिम कौन है।"

"हुजूर, मै गरीब आदमी हूँ लेकिन रुपये का भूखा नही हूँ। आज बीस वर्ष से रेलवे की नौकरी कर रहा हूँ, लेकिन कभी किसी ने मुझ पर उँगली नही उठायी। आज भी मै इतना ही कह सकता हूँ कि मै भूखो मर जाऊँगा लेकिन, चोरी जैसा नीच काम नही कर सकता।"

"इसीलिए तो रिपोर्ट पाकर हम लोग पहले तुम्हारे पास आये हैं।"—इजीनियर ने विनम्र स्वर मे कहा।

"हुजूर, क्या मै पूछ सकता हूँ कि यह रिपोर्ट किसने भेजी है ?"

"तुम्हारे गाँववालो ने भेजी है। कौन है ये लोग ?"

इजीनियर साहब ने फाइल देखते हुए पूछा—"कुलदीप, मुनेश्वर और रूपनसिह !"

"इन लोगो के बारे मे मुझे कुछ नही कहना है। आप चाहे तो इन सज्जनो के बारे मे गाँववालो से या आपके साथ ही बडे बाबू है—इनसे पूछ सकते है।"

"सो तो हम पूछ लेगे, लेकिन तुम गरीब होकर भी इतना बडा मकान कैसे बना रहे हो ? इतना रुपया तुम्हारे पास कहाँ से आया ?"

"यह बात आप मुझसे पूछिए !" गम्भीर आवाज मे गूँजती हुई इस बात ने सबो को चौंका दिया। जग्गू ने आश्चर्य और उल्लास से देखा—सामने रामपाल मोजूद था। जग्गू की जान-मे-जान आयी। रामपाल के चेहरे पर गहन गम्भीरता व्याप रही थी।

"आप कौन है ?"—डी० टी० एस० साहब ने किंचित अहकार के स्वर मे पूछा। रामपाल ने हँसकर सहज भाव से उत्तर दिया, लेकिन उसके स्वर मे अनजाने ही व्यग्य मुखरित हो उठा—

"आप ही की तरह मै भी एक छोटा-सा सरकारी कर्मचारी हूँ—लोक-सेवक !"

"आप सामुदायिक योजना-क्षेत्र के मुख्य प्रादेशिक अफसर है।" बडे बाबू ने बात को बिगडते देखकर जल्दी से डी० टी० एस० को बताया। तीनो अफसर आपस मे मिले। तीनो ने अँग्रेजी मे कुछ बातचीत की और फिर तीनो ही मोटर-ट्राली पर बैठकर स्टेशन की ओर चले गये। जग्गू से किसी ने कुछ नही पूछा। वह हक्का-बक्का रह गया। पश्चिम मे जमीन के निकट पहुँचकर सूरज अत्यधिक लाल हो उठा था लेकिन उसका तेज समाप्तप्राय हो चुका था। पूस की शाम ठड से सिकुडकर जमी जा रही थी। ठड के मारे हवा भी बोझिल हो रही थी।

कुलदीप, मुनेश्वर और रूपनसिंह की दुष्टता पर जग्गू को हँसी आ गयी। लेकिन उसकी हँसी मौसम की ठडक मे दबकर उसी के पास रह गयी।

गाँववालो के विरोध के बावजूद अनुराधा पटना चली गयी। कुछ दिनो तक गॉव मे इसकी खूब चर्चा रही लेकिन समय और घटनाचक्र नित्य नवीन रूप धारण करते रहे।

बिसेसरसिह ने रामपाल को फँसाकर सीमेट, खाद और दवाइयाँ हडपने की पूरी कोशिश की लेकिन रामपाल एक चेतन नौजवान अफसर था। अभी उसके खून मे घूस खाने और फरेब करने का नशा असर नही कर पाया था। बचपन से ही वह गरीबी, परेशानी, छल-प्रपच और सामाजिक विषमता के वातावरण मे पला था। उसे इन बातो से बहुत घृणा

थी। वह सामाजिक अनाचार और प्रशासनिक बुराइयो से पूरी तरह परिचित था इसलिए हमेशा जागरूक और चेतन रहता। वह जानता था कि सामुदायिक योजना के अन्तर्गत मिलनेवाला सामान मुखिया और ग्रामसेवक के थैले मे लीन हो जाता है। इसलिए वह जहाँ भी जाता था, पूरी सख्ती बरतता था।

ग्राम पचायत की ओर से गोपाल, बिसेसरसिंह का लडका सहदेव और गाँव के तीन-चार नौजवान गडक बॉध के काम पर लगा दिये गये। जग्गू के घर की बगल मे स्कूल की इमारत बनाने का काम भी आरम्भ कर दिया गया। सब की गति तेज थी। सब काम अपनी जगह आसानी से होता जा रहा था। केवल जग्गू बेचैन रहता।

भानुप्रताप अपने साथ कुछ रुपये लाये थे जो उन्होने मुजफ्फरपुर जाकर सिनेमा देखने, शराब पीने और बेकार चीजो के खरीद-फरोख्त मे खर्च कर दिये। ब्रह्मदेव से उसे मालूम होता रहता कि किस दिन भानुप्रताप ने शारदा को मारा-पीटा और किस दिन घर मे कृत्रिम शान्ति रही। कई बार जग्गू के मन मे हुआ कि वह भानुप्रताप को समझाये-बुझाये लेकिन मियाँ-बीवी के झगडे मे नही पडना चाहिए—ऐसा सोचकर वह चुप रह जाता।

जग्गू के निरीक्षण मे ही स्कूल की इमारत बन रही थी। इसलिए वह सुबह ही अपना खाना बनाकर खा लेता और काम मे जुट जाता। उस दिन जग्गू खा-पीकर गुमटी बन्द कर रहा था कि भानुप्रताप आ धमके। भानुप्रताप कभी भी जग्गू से खुलकर बाते नही करते थे। जग्गू भी उनकी ओर अधिक उन्मुख नही होता था। भानुप्रताप कुछ देर तक इधर-उधर निरीक्षण की दृष्टि से देखते रहे, फिर बोले—

"मुझे आप कुछ रुपये दे सकेगे ?"

"कुछ जरूरी काम है क्या ?"—जग्गू ने सहज-स्वर मे पूछा। भानुप्रताप को जग्गू का प्रश्न अच्छा नही लगा क्योकि उन्होने बहुत ही बेरुखी से कहा—

"हा, कुछ ऐसी ही जरूरत आ पडी है।"

"कितने रुपये चाहिएँ ?"

"सौ रुपये से काम चल जायेगा।"—भानुप्रताप ने अनासक्त भाव से कह दिया। जग्गू को उनका ढग बुरा लगा। उसने अपनी बेरुखी छिपाते हुए कहा—

"मेरे पास इतने रुपये कहाँ से आये ? कर्ज लेना पडेगा।"

"ठीक है, ले लीजिए। मै लौटकर वापस कर दूँगा।"

"क्या आप कही जा रहे है ?"

"हाँ।"

"क्या मै पूछ सकता हूँ कि आप अब कहाँ जा रहे है ?"

"नया बिजिनेस शुरू करना है।"—भानुप्रताप ने सक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। जग्गू के मन मे आशका जगी कि कही यह, शारदा को छोडकर, भागना तो नही चाहता है। जग्गू को मन-ही-मन क्रोध आ रहा था। फिर भी उसने शान्तिपूर्वक कहा—

"आपके पास पूँजी तो है नही, फिर भी आप बिजनेस करने जा रहे है। मेरी समझ मे यह बात नही आती कि आप कोई नौकरी क्यो नही कर लेते।"

"मै अच्छी तरह जानता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए।"—भानुप्रताप ने यह बात धीमी रफ्तार और धीमी आवाज मे कही लेकिन उसके स्वर मे दम्भ स्पष्ट था। जग्गू ने किंचित उग्र आवाज मे कहा—

"आप कुछ नही जानते। आपको अपने भविष्य का पता नही था और एक अबोध लडकी को उसके घर से भगा लाये। आपके पास पूँजी थी नही और पता नही किस उम्मीद के बूते पर इतने बडे मकान की नीव डलवा दी। मैने कर्ज लेकर आपको पिछली बार रुपये दिये, मकान मे सैकडो रुपये का कर्ज हो गया। लेकिन आप जो भी रुपया लाये उसे आपने शराब मे उडा दिया।"

जग्गू की फटकार सुनकर भानुप्रताप का चेहरा फक् पड गया। उन्हे उम्मीद नही थी कि एक मामूली गुमटीवाला इतना कुछ बोल जायेगा। जग्गू का चेहरा और हाव-भाव देखकर भानुप्रताप के मन मे डर समा गया। उन्होने अपने दोनो हाथ पेंट की जेब मे डाल लिए और गला साफ करते हुए वह यह बोलकर वहाँ से चल दिये—

"पहले ही कह देते कि आप मुझे रुपये नही देगे !"

जग्गू क्रोध से ऐंठता हुआ उनका जाना देखता रहा। जग्गू सोचता रहा कि यह कितना बडा उल्लू आदमी है। जब से आया है, सिनेमा, शराब और शारदा को पीटने मे लगा हुआ है। नौकरी करने का नाम सुनकर शान बघारने लगता है। लेकिन भीख माँगते हुए इसे शर्म नही आती है। जग्गू की इच्छा हुई कि अभी जाकर उन लोगो को घर से निकाल बाहर करे। लेकिन उसके हृदय ने जग्गू को फटकारना शुरू किया। भानुप्रताप पर विपत्ति का पहाड टूट पडा था। उसे लाखो रुपये का घाटा लगा था। ऐसी हालत मे तो लोग पागल हो जाते है। लेकिन भानुप्रताप शराब पीकर अपनी विपत्ति भूल जाना चाहता होगा। ऐसी हालत मे लोग चिडचिडे स्वभाव के हो जाते है और भानुप्रताप कोई अपवाद नही है। फिर उसने तो शारदा को बहन बनाया है, उसे सरक्षण देने का वचन दिया है !

जग्गू बहुत देर तक तर्क-वितर्क मे उलझा रहा। काफी दिन चढ आया था। जब उसने देखा कि स्कूल मे काम शुरू हो गया है तब वह घर की ओर लपका। रामपाल कपडे पहन रहा था। जग्गू ने रामपाल से सौ रुपये लिए और घर के भीतर पहुँचा। उसे देखते ही सयोगवश शारदा बोल उठी—

"क्यो भैया ! मुझे सौ रुपये दोगे ?"—शारदा के स्वर मे निश्छल स्नेह, लज्जा और चिढाने का भाव समन्वित हो रहा था। खाट पर बैठे हुए भानुप्रताप कोई किताब पढने के उपक्रम मे तल्लीन थे। जग्गू ने सौ रुपये शारदा के हाथ पर रख दिये और वह बिना कुछ बोले घर के बाहर हो गया।

स्कूल का काम लगभग पूरा होने को था। खपड़ैल का मकान बनाना था

लेकिन उसके लिए लकडी, सरकडा और खपडा जुटाने मे काफी दिक्कत पेश आ रही थी। बिसेसरसिह मन-ही-मन इन सारी योजनाओ के विरुद्ध थे इसलिए गाँववालो से सामान उगाहना कठिन हो रहा था। खुल्लम-खुल्ला तो कोई भी न नही करता, लेकिन, बला टालने का भाव अधिकाश गाँववालो के व्यवहार से प्रकट हो जाता।

जग्गू दिन-भर गाँववालो के दरवाजे-दरवाजे सामान के लिए निहोरा करता फिरता, फिर, इमारत के काम की भी देखभाल करता और रात मे बिस्तर पर जाते ही, थकान के नशे मे चूर एक नीद मे ही भोर कर देता।

उस दिन बिचित्तरसिंह के यहाँ से सामान उगाह कर वह लौटा ही था कि ब्रह्मदेव ने उसे एक चिट्ठी लाकर दी।

"किसकी चिट्ठी है ?" जग्गू ने पूछा। उसके पास कभी काई पत्र नही आया था। लिफाफे पर उसी का नाम था। उसने आश्चर्यचकित होकर एक बार ब्रह्मदेव की ओर देखा और फिर वह पत्र खोलकर पढने लगा—

"प्रिय !

बहुत दिनो तक उधेड-बुन मे पडी रही लेकिन आज पत्र लिखने की हिम्मत हुई। फिर भी यही नही समझ पा रही हूँ कि क्या लिखूँ ? बहुत-सी बाते मन मे घुमडती है लेकिन उन्हे कागज़ पर उतारने का ढग मुझे नही मालूम। बचपन मे मै आपको 'तुम' कहकर पुकारती थी। आज वैसी ही इच्छा हो रही है। क्या 'तुम' कहूँ ? मेरा जीवन बदल गया लेकिन यह नही मालूम कि अच्छा हुआ या बुरा क्योकि परिणाम तो अभी बाकी है। अब तो जल्दी ही वहाँ पहुँचनेवाली हूँ। पता नही मिलने पर मेरी क्या दशा होगी।

स्नेह-भिक्षुणी—
अनुराधा"

जग्गू को लगा जैसे एक साथ, अचानक ही, पन्द्रह-बीस रेलगाडियाँ हडहडाकर उसके कलेजे पर से गुजर गयी, जैसे भयकर बाढ की लपेट मे उसका कलेजा, कगार की तरह टूटकर, बह गया। इस अनुभूति मे उसे

आनन्द मिला या वेदना—यह बात भी वह नही जान सका। लेकिन उसका अग-प्रत्यग नवीन आभा के स्पर्श से पुलकित हो उठा, उसकी धमनी मे मधुर स्वरलहरी प्रवाहित होने लगी जिसकी गूँज मे, वह, क्षण-भर के लिए अपना अस्तित्व भूल बैठा।

"मालकिन ने आपको बुलाया है।"—ब्रह्मदेव कीआवाज सुन कर उसे होश आया।

"चलो, मैं अभी आता हूँ।"—जग्गू ने कृत्रिम गभीरता से कहा। उसके स्वर मे स्फूर्ति साकार हो उठी थी।

रात हो गयी। अन्धकार ने पश्चिम-पूरब को एकाकार कर दिया था। बछडो के रभाँने की आवाज ठडे मौसम को भेदती हुई गाँव के आर-पार हो जाती, गहरे-नीले, स्वच्छ आकाश के तारे भी ठड से काँप रहे थे। सारा वातावरण सुख-दुख की समन्वित अनुभूति उत्पन्न करता-सा लग रहा था। ब्रह्मस्थान पर इकट्ठे गाँव के कीर्तनिया जोर-जोर से गा रहे थे—

रामा, श्रीफल कनक कदलि हरषाही। रामा हो रामा!
रामा, नेकु न सक सकुच मन माही। रामा हो रामा!
रामा, सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। रामा हो रामा।
रामा, हरषे सकल पाइ जनु राजू। रामा हो रामा।

ढोलक और झाल मे होड लगी हुई थी। जग्गू बहुत देर तक गुमटी के दरवाजे पर बैठा अधकार मे देखता रहा। इतने शोरगुल के बावजूद उसके हृदय मे विराट शान्ति व्याप गयी थी और कभी-कभी हलकी कचोट, उर्मियो की तरह, उसके शान्त हृदय मे सुगबुगा उठती और तब वह अपनी पैनी दृष्टि अन्धकार मे चुभो देता।

१६

"माफ करना शारदा, कल शाम को आ नही सका। बात बिल्कुल ध्यान से उतर गयी।"—जग्गू ने घर मे घुसते ही शारदा की मानभरी भगिमा देखकर कहा।

"मै कौन होती हूँ माफ करनेवाली!" शारदा ने चिढकर उदास-स्वर मे कहा। जग्गू आजिजी से बोला—

"तुम तो व्यर्थ ही नाराज़ हो रही हो। असल मे आजकल काम इतना आ पडा है कि "

"मेरे जैसे गरीबो का ख़याल भी नही रहता!"—शारदा ने व्यग्य से वाक्य पूरा कर दिया। जग्गू कुछ क्षण चुप रहा। शारदा उसके लिए चाय बनाकर ले आयी। अन्त मे जग्गू ने आरजू-मिन्नत करके शारदा का क्रोध ठडा कर दिया। दोनो, देर तक, इधर-उधर की बाते करते रहे। दोनो की रुचि एक-दूसरे के अनुरूप हो चली, बातचीत मे प्रवाह आया और दोनो एक-दूसरे के स्नेहभाजन होकर, भावावेश मे, अपने-अपने मन की बात कह निकले। शारदा ने कहा—

"मै तो आपको अपने बडे भाई के रूप मे देखती हूँ और अत-अत तक इसी भाव से देखती रहूँगी।"

"मै भी तुम्हे शुद्ध मन से स्नेह करता हूँ शारदा।"

"झूठ बात।"

"सच कहता हूँ। मै अक्खड आदमी हूँ। छ-पाँच नही जानता, बल्कि तुम ही बीच-बीच मे तुनुक-मिजाज हो जाती हो, और तुम्हारे भानुप्रताप जी तो बिल्कुल अजीब आदमी है।"

"हाँ, उनका स्वभाव तो मै भी नही समझ पायी हूँ। दिल खोलकर तो

कभी बात करते ही नही। इधर उनका स्वभाव और भी अजीब हो गया है। लेकिन मैं क्या करूँ ? मेरी आँख तो उसी दिन फूट गयी जिस दिन घर से बाहर आयी !" जग्गू विस्मय से भर गया जब उसने शारदा के मुँह से भानुप्रताप के सम्बन्ध मे इस तरह की बाते सुनी। शारदा की बातो से उत्साहित होकर जग्गू ने पूछा—

"मैंने सुना है कि वह तुम्हे पीटता भी है। क्या यह सच है ?"

"उनके मन मे जो आता है वही करते हैं—लेकिन आप उनसे कभी मत पूछियेगा नही तो वह मुझे जिन्दा ही चबा जायेंगे।"

जग्गू का मस्तिष्क आक्रोश से भिन्ना उठा। साथ ही, शारदा के लिए वह करुणा और दया से द्रवित हो उठा। एकान्त नारी के प्रति सहानुभूति का अतिरेक भावुकता की गगोत्री है। यही से प्रेम की धारा फूटती है—उद्दाम, अविराम और निर्मल ! यही स्वाभाविक है, सहज नियम है। लेकिन, स्वाभाविकता और सहजता पर विजय प्राप्त करने का उत्साह भी मनुष्य के लिए स्वाभाविक और सहज है। इसी बूते पर मनुष्य मे मनुष्यता आती है, विकास और प्रगति होती है। अग्नि का धर्म है जलाना लेकिन दिया रोशनी देता है—इसीलिए वह मधुर है, घर-घर मे उसकी पैठ है।

जग्गू शनै शनै शारदा के निकट आता गया। शारदा रोती तो वह अब निस्सकोच होकर अपने हाथ से उसके आँसू पोछ देता। अनुराधा के प्रेम ने जग्गू को देवता से आदमी बना दिया था और शारदा का प्रेम उसे देवत्व की ओर उन्नमित करता।

इसी बीच एक घटना और घट गयी जिसने जग्गू को शारदा के निकट ला दिया। जग्गू का दृष्टिकोण, उसकी प्रवृत्ति विकृत होते-होते रह गयी। रामपाल ने ईमान लाकर नौकरी शुरू की थी। देश की परतन्त्रता के दिनो मे, वह, सरकारी अफसरो को घृणा की दृष्टि से देखता था क्योकि वे अफसर घूस लेते, अन्याय करते, काम-चोर होते, साधारण जनता को उपेक्षित और हीन समझते और अहकार की निस्सारता मे डूबे रहते। स्वतन्त्रता का उदय हुआ। उसके प्रकाश मे रामपाल ने देखा कि विपन्न

देश को समृद्ध और सुदृढ बनाना ही परम कर्त्तव्य है। इसी विचार से उसने नौकरी की। देसौरा के इलाके मे उसकी बहाली हुई। सामुदायिक योजना कार्य आरम्भ होते ही, गाँवो की बेकारी कम हो गयी। इसी कारण, अच्छे गृहस्थो और जमीदारो की ज़मीन मे काम करने के लिए, खेतिहर मजदूरो का अकाल-सा पड गया। बेगार के नाम पर तो खेतिहर-मजदूर साफ टाल जाते। बिसेसरसिंह तो मन-ही-मन रामपाल की जान के लागू बने बैठे थे। रामपाल अपनी राह के अन्तराय से अपरिचित नही था। फिर भी उसने हार नही मानी और योजना-कार्य सम्पन्न करने मे सतत प्रयत्नशील रहा।

लेकिन तीन ठगो ने मिलकर, बेचारे ब्राह्मण के बछडे को कुत्ता कह-कर, आखिर बछडा ले ही लिया। एक ही बात कई मुँह से सुनते-सुनते अन्त मे जग्गू को विश्वास हो गया कि रामपाल और शारदा मे जार-सम्बन्ध है। वही शारदा, जो भानुप्रताप के विरुद्ध कोई बात नही सुन सकती थी, इधर स्वय भानुप्रताप की शिकायत करने लगी थी। रामपाल जैसा बडा अफसर उसके जैसे गरीब के घर महीनो पडा रहे—यह भी कम आश्चर्य की बात नही थी। रामपाल ने शारदा को पढाना भी शुरू कर दिया था। ये सब बाते देख-सुनकर जग्गू ने सोचा कि निश्चय ही रामपाल शारदा के प्रति व्यासक्त है।

अनुराधा के पटना से वापस आने मे दस दिन शेष रह गये थे। जग्गू का मन सन्ताप से कराह रहा था। रामपाल और शारदा की ओर से उसने मुँह फेर लिया था। लेकिन उसे चैन नही था। इस घटना से वह इस कदर विक्षिप्त हो गया था कि कभी-कभी अनुराधा के प्रति भी वह शका से भर उठता।

शाम हो चुकी थी। जग्गू बडी बेचैनी और बेसब्री से गुमटी के आगे टहल रहा था। ठड काफी कम हो गयी थी फिर भी जग्गू रह-रहकर काँप उठता। विचित्ति की दशा मे उसे यह भी पता नही रहा कि कितना समय गजर चुका। वह दस बजने की प्रतीक्षा मे पहाड जैसा समय ढो रहा था।

डफ और झाल की गूँज पर होली का समूह-गान, समुद्र पर उत्ताल

तरगो के ताडव-सा ध्वनित हो रहा था। चारो ओर घना अन्धकार व्याप्त था। जग्गू अपने मन के द्वन्द्व से आप ही घुटा जा रहा था। उसे लग रहा था कि वह पतनोन्मुख हो रहा है, वह कृतघ्नता करने पर आमादा है, उसके विचार विकृत हो गये हैं और उसका व्यवहार अमानुषिक। जार-सम्बन्ध हो या प्रेम-सम्बन्ध, उसे क्या मतलब ? आस्था की धारा बहे या गरल की वह क्यो जीना-मरना चाहता है ? क्या उसे ईर्ष्या की आग नही जला रही है ?

दस बज गये। जग्गू अनायास ही घर की ओर चल पडा। बिसेसरसिह ने जग्गू से आज ही कहा था कि शारदा और रामपाल, रोज़ रात को दस बजे, घर के भीतर एक साथ होते है। जग्गू को बिसेसरसिह की बातो मे प्रपच मालूम हुआ लेकिन शका मनुष्यता का सबसे बडा शत्रु है। शका के फूटते ही मनुष्य की आस्था कराह उठती है। जग्गू ने सोचा, समझा, फिर भी, अपने पर नियन्त्रण नही रख सका।

घर के बाहर ओसारे पर रामपाल के दो आदमी सो रहे थे। कोठरी मे रामपाल की खाट खाली थी। जग्गू ने एक बार इधर-उधर देखा—बाहर चारो ओर अन्धकार, गाँव के कुत्ते भौकते हुए, वातावरण मे भयानक सन्नाटा। वह धडधडाता हुआ, घर के भीतर घुस गया। ओसारे पर कोई नही था। शारदा की कोठरी का द्वार खुला हुआ था। भीतर रोशनी हो रही थी। जग्गू चुपचाप कोठरी मे जा पहुँचा लेकिन वहाँ पहुँचकर वह ग्लानि और पश्चात्ताप से भर उठा। जीवन मे पहली बार उसने किसी पर शका की थी, अकारण ही वह दोष, प्रतिहिंसा और विप्रलम्भ का शिकार हुआ था। रामपाल के सामने, जरा हटकर, शारदा बैठी हुई मनोयोग से पढ रही थी और रामपाल उसे कुछ बता रहा था। जग्गू को अचानक आया हुआ देखकर रामपाल सहज रूप से किंचित चौंक उठा। तीनो मे से कोई कुछ नही बोला। सभी एक दूसरे के मन की बात समझ गये लेकिन रामपाल जग्गू का मुँह ताकता रह गया। और इस ज्ञान से जग्गू और भी गड गया। किसी तरह अपने पैर घसीटता हुआ वह बाहर भागा। रामपाल

और शारदा को अब वह अपना कौन-सा मुँह दिखायेगा। जग्गू के मन की दशा अजीब हो गयी। 'मुझे क्या हो गया था ?'—यही प्रश्न बार-बार उसके मन को कचोटता रहा। उसने शारदा और रामपाल पर शका की लेकिन उसे उल्टे मुँह गिरना पडा रात-भर जग्गू अपने किये पर पछताता रहा !

मुँह अधेरे रामपाल गुमटी पर पहुँचा। जग्गू खाट पर बैठा था। रात-भर मे ही उसका मुँह इतना-सा निकल आया था। रामपाल को देखते ही उसे लगा कि अब वह रो देगा। रामपाल क्षण-भर खडा रहा फिर बोला—

"जग्गू भाई ! गाँव मे चलनेवाली कानाफूसी से मै अनभिज्ञ नही था लेकिन आप भी विचलित हो जायेंगे, ऐसी आशा नही थी। मेरे लिए यही उचित है कि अब मै स्कूल पर जाकर रहूँ। लेकिन मै एक बात आपसे अवश्य कह देना चाहता हूँ कि किसी तरह का मनमुटाव लेकर मै आपके घर से नही जा रहा हूँ। मुझ पर और मेरी बातो पर विश्वास कीजिए। आपके भरोसे ही मै इस गाँव मे रहना चाहता हूँ।"

जग्गू का मुँह सूखकर रह गया। उसने रामपाल से क्षमा माँगनी चाही लेकिन उसकी जबान तालू से चिपक गयी। रामपाल ने आगे बढकर अपना बायाँ हाथ जग्गू के कन्धे पर रख दिया और स्नेहपूर्वक कहा—

"नाराज़ हो क्या ? बात यह है कि आदमी जब अपने आपसे नाराज होता है तब वह अधिक खतरनाक हो उठता है। इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि कैसा भी गुस्सा हो, किसी पर हो, उसे थूक दीजिए। फिर सभी राह घर की राह हो जायेगी।"

जग्गू फिर भी चुप रहा। कुछ देर तक रामपाल मुस्कराता हुआ जग्गू को देखता रहा और फिर—"अच्छा, अब चलता हूँ," कहकर चला गया।

काफी दिन चढ आया। तीसरा पहर भी बीत गया। लेकिन जग्गू गुमटी से बाहर नहीं निकला। कभी वही छोटी-सी जगह मे चहलकदमी करने लगता, कभी बैठ जाता तो कभी खाट पर औंधे मुँह पड जाता।

लगभग नौ बजे रात को मुनिदेव झूमता हुआ उसके पास पहुँचा। मुनिदेव के पहुँचते ही, गुमटी के भीतर ताडी की भभक फैल गयी। जग्गू अन्धकार मे ही खाट पर पडा था।

"जग्गू भाई! जग्गू भाई!!" मुनिदेव ने थोडी लटपटाती जुबान से पुकारा।

"आओ, बैठो।" थकी आवाज से जग्गू ने कहा।

"अरे, अन्धकार मे क्यो पडे हो?"

"दिल की धुँधली रोशनी से ऐसा अन्धकार ही मेल खाता है मुनिदेव। आओ, बैठो। मै अभी हथबत्ती जलाता हूँ।"

जग्गू ने हथबत्ती जलाकर रख दी। मद्धिम रोशनी से गुमटी का भीतरी भाग झिलमिला उठा। "बहुत ताडी पी ली है?"—जग्गू ने उदास मुस्कराहट से पूछा।

"हाँ, जिन्दगी मे और क्या रखा है मेरे लिए?" 'हाँ' को बहुत लम्बा करता हुआ मुनिदेव आँखे बन्द करता हुआ बोला। जग्गू ने अपने पूर्ववत् स्वर मे पूछा—

"मुझे भी पिलाओगे?"

"जरूर! लेकिन आज नही, कल! आज तो तुम्हारे यहाँ चोरी होने-वाली है।"

"मेरे यहाँ चोरी होनेवाली है?"

"हाँ! अभी साला मुनेसरा ताडीखाने मे बैठा ताडी पी रहा है। उसी ने बताया। साले ने बिसेसरसिह की शिकायत करनी शुरू की। उसके पेट से बात निकालने के लिए मैने उसे खूब ताडी पिलायी—खूब पिलायी।"

"अब मेरे घर मे क्या रखा है जो चोरी होगी?" जग्गू स्वगत भाषण के स्वर मे बोला। मुनिदेव ने जरा नाटकीय ढग से कहा—

"बहुत कुछ है दोस्त! अभी तो तुम्हारे घर मे बिसेसरसिह के लिए शारदा ही खजाने के रूप मे बैठी है। साला बडा ही पतित हो गया है।

आज वह स्वय ही आयेगा।"

इतना सुनते ही जग्गू तमककर खडा हो गया! उसी नीच के बहकावे मे आकर उसने रामपाल और शारदा के सम्बन्ध पर शक किया था। क्रोध से उसके दाँत कटकटा उठे--

"तो अब वह नीच इस हद तक उतर आया है! अच्छी बात है, आज मै इस झगडे की जड को ही काट फेकूँगा। भरे-गाँव के बीच जब वह अपना काला मुँह लेकर खडा होगा तब उसे मालूम होगा कि जग्गू कौन है।"

मुनिदेव वही गुमटी मे सो गया। भीतर से उसने दरवाजा लगा लिया। जग्गू ने रामपाल को सारी स्थिति बता दी और गोपाल को भी खबर कर दी। तीनो, घर के तीन कोने मे छुपकर बैठ गये। तय हुआ कि जब बिसेसर-सिह घर मे प्रविष्ट हो जाये तब उसे ही पकडा जाये—शेष लोगो को पकडने की कोशिश भी नही की जाये। शारदा अपने घर मे जगी बैठी रही।

आधी रात बीत गयी। कोई नही आया। जग्गू के मन मे फिर शका उपजी कि हो न हो, मुनिदेव ताडी के नशे मे बहककर झूठ-मूठ बोल गया हो। और इस तरह की बाते सोचता-सोचता वह निश्चिन्तता के प्रभाव मे आ गया। रात बीतती गयी। जग्गू को झपकी आने लगी। गोपाल और रामपाल, अपनी-अपनी जगह पर, सतर्क बैठे थे। जग्गू किंचित् आश्वस्त होकर, दीवार के सहारे ओठगने ही लगा था कि हलकी-हलकी धमक सुनकर वह चौकन्ना हो उठा। जहाँ पर जग्गू बैठा हुआ था वही पर की दीवार मे सेध लगाया जा रहा था। जग्गू ने बिसेसरसिह को पकडकर पीटने और पूरे गाँव के सन्मुख उसके मुँह पर कालिख पोतने का कृत निश्चय कर रखा था। जग्गू ने जब देखा कि सेध फूटने ही वाला है तब वह शीघ्रता मे अनाज रखने की कोठी की बगल मे छिप गया। धमक की आवाज़ स्पष्ट होती गयी, भीतरी दीवार की परत झडने लगी। जग्गू खूँखार चीते की तरह घात मे बैठा रहा।

सेध फूट गया। एक आदमी का सिर सेध से होकर भीतर आया और क्षण-भर बाद वह फिर वापस चला गया। कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा कि दो पैर सेध के भीतर आये—फिर जाँघे—फिर कमर, छाती और तब

जग्गू ने देखा कि एक नग-धडग आदमी, कमर मे एक लगोटी मात्र पहने हुए, बडी सावधानी से आगन के दक्षिण ओर पिछले दरवाजे की ओर बढा। जग्गू साँस रोके उसे देखता रहा। उस आदमी ने आहिस्ता से पिछला दरवाज़ा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही दो आदमी भीतर घुस आये। जग्गू को बिसेसरसिंह को पहचानते देर नही लगी। एक आदमी वही दरवाजे पर रुक गया। बिसेसरसिह धीरे-धीरे शारदा की कोठरी की ओर बढा। अभी वह कोठरी के दरवाजे तक ही पहुँचा होगा कि गोपाल कूदकर उसके पास जा पहुँचा। बिसेसरसिंह शायद ऐसी स्थिति के लिए तैयार था। वह भी पैतरा बदलकर आगन के दरवाजे की ओर लपका। गोपाल की जल्दबाजी पर जग्गू को झल्लाहट हुई, लेकिन उस समय सोचने का अवसर नही था। वह बिसेसरसिंह के पीछे, अपना भाला सम्हालता हुआ लपका। बिसेसरसिह बहुत तेज़ी के साथ, दरवाज़े से निकलकर, अरहर के खेत की ओर भागा। जग्गू मे और उसमे मुश्किल से पच्चीस कदम की दूरी रह गयी होगी कि अरहर का खेत आ गया। उस अँधेरी रात् मे, घने अरहर के खेत मे पीछा करना मुश्किल होता इसलिए, जग्गू ने तौलकर भाला चला दिया। निशाना ठीक बैठा। बिसेसरसिह के चूतड पर भाला लगा और वह चीखकर लडखड़ा उठा कि उसी समय जग्गू को लगा जैसे उसके सिर पर बज्र जैसा कोई शिलाखण्ड गिर पडा। उसकी आँखे बन्द हो गयी और चारो ओर अधकार छा गया।

जग्गू को जब होश आया तब सूर्योदय हो रहा था।

"बिसेसरसिह को पुलिस पकड़कर थाने ले गयी या अभी वह गॉव मे ही है ?"—जग्गू ने कराहते हुए क्षीण स्वर मे पूछा। शारदा सिरहाने बैठी थी। वह चिन्तित स्वर मे बोली—"वह तो भाग गया।"

"ऐं !"—जग्गू चौककर उठ बैठा। शारदा ने उसे पकडकर खाट पर लिटा दिया।

"अभी आप चुपचाप लेटे रहिए।"—शारदा ने स्नेह के स्वर मे कहा। जग्गू को शारदा का स्वर बड़ा मधुर लगा। उसके मन की ग्लानि धुल गयी।

उसने आँखे बन्द किये ही पूछा—"मुझसे नाराज़ हो ?"

"नही तो !"—शारदा ने निश्छल किन्तु करुणार्द्र स्वर मे कहा। जग्गू को शारदा के व्यवहार और स्वर मे आकस्मिक परिवर्त्तन की गन्ध मालूम हुई। शारदा निश्छल थी—लेकिन क्रोधी भी, सरल-मधुर थी लेकिन स्वाभिमानिनी भी और उसका रूप क्षण मे सुन्दर लगता तो क्षण में रौद्र। वह अपने प्रेम मे बहुत ही उच्छृङ्खल, दकियानूस और एकागी थी। लेकिन उसी दिन जग्गू ने महसूस किया कि शारदा मे परिवर्त्तन आ गया है, वह बहुत दुःखी है। जग्गू ने अपनी आँखे खोल दी और शारदा को देखा। शारदा भी उसे ही देख रही थी। शारदा के मुखमण्डल पर सौम्यता और स्निग्धता बिछल रही थी लेकिन उसकी आँखो मे विषाद का समुद्र सिमट आया था। जग्गू ने शारदा को ध्यान से देखा लेकिन कुछ भी अनुमान नही लगा सका। उसने शारदा की ओर देखते हुए पूछा—

"दुखी हो ?"

"नही तो।"—शारदा ने कृत्रिम मुस्कराहट से कहा।

"क्या बात है शारदा ? मुझसे छिपाओ मत।"

शारदा चुप रही।

"बोलती क्यो नही ? किसी ने कुछ कहा है क्या ?"

"किसी के कुछ कहने से अब क्या होता है।"

"क्या भानुप्रताप का पत्र आया है ?"

"पहले तुम अच्छे हो जाओ, फिर सब बाते जान लेना।"

"अरे, मैं बीमार थोडे हूँ। हलकी-सी चोट है, अपनी जगह है। तुम अपनी बात तो बताओ।" शारदा फिर चुप हो गयी। जग्गू सारी बाते जानने की जिद्द पर अडा रहा। अन्ततोगत्वा शारदा को बताना ही पडा—

"उन्होने लिखा है कि मै देसौरा गाँव छोडकर कही दूसरी जगह जाकर रहूँ—फिर वह आयेंगे। वह तुम्हे पसन्द नही करते, और इधर मै माँ बनने वाली हूँ। लेकिन उनका कहना है कि इसे नष्ट कर दिया जाये।"—अतिम वाक्य कहते-कहते सकोच और आक्रोश से वह रोने लगी। जग्गू क्षण-भर

सोच भी नही पाया कि उसे क्या कहना चाहिए। आदमी इतना नीचे गिर सकता है—इसका उसे अनुमान भी नही था। बहुत ही नियन्त्रित स्वर मे वह बोला—

"भानुप्रताप पागल हो गये हैं। खैर, मुझे क्या?—जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाओ, जो तुम लोगो के मन भावे, वही करो।"

"जब तक मुझे तुम निकाल नही दोगे, मै कही नही जाऊँगी।"

"मै क्यो निकालने लगा? लेकिन यदि तुम यहाँ रही तो भानुप्रताप को तुम्हे सताने के लिए और कारण मिल जायेगा।"

"अब और कितना सतायेगे। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। भला मै बिना पैसा-कौडी के कहाँ जाकर रहूँ? मै तो कही नही जाऊँगी।"

"लेकिन शारदा, मै समझता हूँ कि भानुप्रताप तुमसे अब पिण्ड छुडाना चाहते है।"

"तुम क्या चाहते हो?"

"मै क्या चाहूँगा शारदा? मै चाहता हूँ कि तुम लोग सुखी रहो। इतने दिनो मे ही मुझे तुमसे मोह हो गया है। लेकिन सोचता हूँ यह अच्छा नही हुआ।"

"क्यो?'

"समय मेरे खिलाफ जारहा है। अपने पराये हो रहे है, फिर पराये का मोह तो और भी अनुचित है।"

"यह क्यो नही कहते कि तुम भी मुझसे पिण्ड छुडाना चाहते हो। मुझ अभागिन के लिए तो अब ईश्वर के यहाँ भी जगह नही होगी!"

"नही शारदा, ऐसा कहकर मेरा दिल मत दुखाओ। मै तो चाहता हूँ कि·· लेकिन जाने दो, मेरे चाहने या न चाहने से क्या होता है।"

कुछ देर तक दोनो चुप रहे। इसी बीच रामपाल आ पहुँचा। कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् रामपाल ने शारदा से चाय बनाने को कहा। शारदा चाय बनाने चली गयी।

"बिसेसरसिंह तो बिल्कुल ही लापता हो गया। सुना कि वह अपने

समधी के यहाँ चला गया है—क्योंकि उसके समधी बहुत बडे नेता है।"—रामपाल ने किंचित् क्षुब्ध स्वर मे कहा।

"अरे वह किस्मत का बडा ही जबरदस्त आदमी है। तभी तो हाथ से निकल भागा।" जग्गू के स्वर मे मायूसी थी।

दोनो देर तक बाते करते रहे। गोपाल भी आ पहुँचा था। गाँव के दो-तीन आदमियो ने बिसेसरसिह को भागते देखा था। लेकिन गवाही देने के लिए कोई भी तैयार नही हुआ—ऐसा आतक था बिसेसरसिंह का। अछता-पछताकर तीनो चुप हो गये।

जग्गू को स्वस्थ होते चार-पाँच दिन लग गये। तब तक वह घर पर, शारदा के सरक्षण मे पडा रहा। शारदा ने उसकी परिचर्या मे कोई कोर-कसर उठा नही रखी। जग्गू, शारदा के निश्छल स्नेह से आप्लावित हो उठा। जिसने कभी किसी का सहवास नही पाया, जो कभी किसी के स्नेह-सम्पर्क मे नही आया और जिसने कभी किसी का आभार नही जाना—उस जग्गू का तन-मन शारदा के अनुग्रह से भर उठा और उधर उस रात बिसे-सरसिह जो गाँव से गायब हुआ तो लौटकर नही आया।

तीसरा पहर बीत रहा था। जग्गू खाट पर बैठा, पास ही खभे के सहारे खडी शारदा से बाते कर रहा था कि भानुप्रताप आ धमका। जग्गू ने उठ-कर नमस्ते की। शारदा सकोच मे खडी रही। भानुप्रताप के होठो पर अर्थपूर्ण मुस्कराहट दौड गई। जग्गू के अभिवादन का उत्तर दिये बिना ही वह कुली के सिर पर से सामान उतरवाकर, कोठरी के भीतर चला गया। भानुप्रताप के हाव-भाव से ऐसा लगा जैसे उसने जग्गू को देखा ही नही। जग्गू को अपनी उपेक्षा पर हँसी आ गयी। जिस आदमी को उसने अपने घर मे शरण दी, जिसके चलते वह बदनाम और जाति-बहिष्कृत हुआ, आर्थिक-सकट मे पडा, उस आदमी के मन मे निरर्थक अहकार देखकर जग्गू आश्चर्य और तरस के अतिरेक से मुस्कराता रहा। शारदा कुछ देर, सिर झुकाये लाज और ग्लानि से खडी रही कि भानुप्रताप ने उसे भीतर से पुकारा। जग्गू अकेला रह गया! बिल्कुल अकेला!!

१७

गाँव मे काफी सरगर्मी थी। बिसेसरसिह ने गाँव मे आते ही सूचना दी कि राज्य के महान नेता और मन्त्री महादेव बाबू देसौरा स्कूल का उद्घाटन करने के लिए सहमत हो गये है। बिजली की रफ्तार से यह बात आसपास के इलाके मे फैल गयी। सब लोग मत्री महोदय के स्वागत की तैयारी मे लग गये। चन्दा उगाहा जाने लगा। बिसेसरसिंह ने बडे उत्साह से पाँच सौ रुपया अपने नाम पर लिखा दिया। अभिनन्दन-पत्र छपाने का भार मुनेश्वर पर डाल दिया गया। सब लोग भूल गये कि जग्गू के घर चोरी हुई थी और बिसेसरसिह उसी रात को गायब हो गये थे।

लेकिन जग्गू और रामपाल अवाक् थे। बिसेसरसिह ने अपने आप मत्री महोदय को आमन्त्रित कर दिया, यद्यपि उन्होने स्कूल के लिए एक तिनका भी उठाकर इधर से उधर नही रखा था। लेकिन अब क्या किया जा सकता था। सब लोग तैयारी मे जुट गये। जग्गू बिल्कुल तटस्थ हो गया लेकिन रामपाल तो सरकारी नौकर था। उसे हर काम मे योग देना ही पडा।

अनुराधा पटना से वापस आ गयी थी। उसने गाँव की शूद्र औरतो को पढाना-लिखाना भी शुरू कर दिया था। एक नयी लहर, एक नयी हलचल गाँव मे उठ खडी हुई थी। लग रहा था कि जैसे अचानक ही, भूचाल के झटके से गाँववाले जाग उठे हो। सभी चेतन हो रहे थे, सभी वाचाल और कर्मठ बने हुए थे। केवल जग्गू खामोश था। वह फिर से गुमटी पर आकर रहने लगा था। अनुराधा आयी, लेकिन वह मिलने नही गया। अनुराधा ने अपना काम-काज भी शुरू कर दिया। लेकिन, जग्गू से उसकी भेट नही हुई। जग्गू ने घर जाना भी बन्द कर दिया क्योकि जिस दिन भानुप्रताप आया उसी रात को उसने शारदा को पीटना शुरू किया। जग्गू ने रोका तो

भानुप्रताप घृणा और दम्भ के स्वर मे बोला—

"मै अपनी पत्नी को जो चाहूँगा करूँगा, आप बीच मे कूदनेवाले कौन होते है ? यह औरत मक्कार और पतिता है। लेकिन ऐसी औरतो का इलाज करना मै अच्छी तरह जानता हूँ।"

जग्गू क्रोध से ऐंठता हुआ उसी समय गुमटी पर चला आया। और तब से वितृष्णा के मारे वह गुमटी मे ही पडा-पडा घुटता रहा। रामपाल आया, मुनिदेव ने पूछताछ की लेकिन, जग्गू सूखी मुस्कराहट के साथ सबो को टाल गया।

ठड भोथी हो चुकी थी। दिन मे कार्य-रत रहने पर पसीना आ जाता और रात मे, खुले मे खुली देह रहने पर, बहुत ही हलकी सिहरन महसूस होती। जग्गू गुमटी के चौकठ पर बैठा सामने अँधेरे की गहराई मे अपलक दृष्टि से देख रहा था। उसके मन में कोई विशेष बात नही थी, फिर भी वह कही खोया हुआ था कि अचानक ही पदचाप की ध्वनि से वह चौक उठा। सिर घुमाकर देखा—अनुराधा खडी थी।

"तुम ?"

अनुराधा चुप रही। पता नही, क्या सोचकर, जग्गू जल्दी से उठ खडा हुआ और बोला—

"भीतर चली आओ।"

जग्गू के साथ-साथ अनुराधा भी गुमटी के भीतर चली आयी। जग्गू ने दरवाज़े ओठँगा दिये और हथबत्ती की बत्ती उकसाकर अनुराधा के चेहरे को ध्यान से देखा। अनुराधा ने लजाकर अपनी आँखे झुका ली।

"तुम तो बिल्कुल नही बदली।"

"लेकिन आप तो बदल गये।"

"मै बदल गया ?"

"हाँ, मै आयी, यहाँ रहते भी इतने दिन बीत गये लेकिन आप नही आये।"

"मै बडा अभागा हूँ अनुराधा। जहाँ जाता हूँ वही ग्रहण लग जाता

जग्गू आत्म-विस्मृत होकर अनुराधा को देख रहा था। उसकी आँखो मे कौतूहल और उत्साह की आभा छिटक रही थी। उसके होठो पर उल्लास की हलकी रेखा गहरी हो रही थी और अनुराधा निर्विकार भाव से जग्गू को देख रही थी। दोनो एक दूसरे मे कुछ ढूढ रहे थे, दोनो को एक दूसरे मे कुछ विचित्रता, नवीनता का आभास मिल रहा था, दोनो एक दूसरे के मन मे उठनेवाली लहरो का कलकल निनाद सुन रहे थे, दोनो एक दूसरे की ललक बन रहे थे, और दोनो ही, सस्कार के केचुल मे परिश्लिष्ठ, ऊपरी शिथिलता के घेरे मे उद्दाम हो रहे थे। विचित्र स्थिति थी। अजीब सयोग था कि एकाकी जग्गू के जीवन की हर नयी बात, उसी पुरानी गुमटी से शुरू होती थी और उस दिन भी जग्गू का अखड एकाकीपन उसी गुमटी मे शत सहस्र खडो मे विकीर्ण होता जा रहा था ·

"हम दोनो अकेले रहने के लिए ही पैदा हुए है अनुराधा।" जग्गू खाट से उठकर अनुराधा के पास आता हुआ किंचित काँपती आवाज मे बोला। अनुराधा ने कोई जवाब नही दिया। जग्गू क्षण-भर अनुराधा को देखता रहा, फिर बोला—

"अब तुम जाओ। फिर कभी मत आना। हमारा अकेले रहना भी समाज को खलता है और कही किसी ने साथ देख लिया तो एक तूफान उठ खडा होगा। जैसे हम लोग रहते आये है, वैसे ही रहते चले।"

"लेकिन, मै तो रोज आऊँगी। आप मुझे धक्के देकर निकाल दीजिएगा, फिर भी आऊँगी।"

"इसमे तुम्हारा ही नुकसान होगा पगली। मेरा क्या? मै तो जाति-समाज से बहिष्कृत-उपेक्षित आदमी हूँ।"

"और मै तो धूल बन चुकी हूँ। मेरा अब क्या बिगडेगा—धूल का कुछ और बनने-बिगडने से तो रहा।" अनुराधा के स्वर मे हँसी स्पष्ट थी। जग्गू ने सदा अनुराधा का भला चाहा था। अपने सुख के चलते उसने किसी को दुख नही पहुँचाया। फिर अनुराधा को तो वह प्यार करता था। वह जानता था कि अनुराधा अप्राप्य है। वह यह भी जानता था कि अनुराधा के प्रति

उसका प्रेम अनुराधा के लिए नही है, मात्र प्रेम के लिए है। जग्गू ने जो कुछ जाना था, समझा था, पढा था और भोगा था उसके आधार पर, उसके मन मे एक बात बैठ गयी थी कि त्याग और आत्मदमन से बढकर मनुष्य मे और कोई गुण नही आ सकता। वह बचपन से अनुराधा को प्यार करता आया था, लेकिन बोला कभी नही क्योकि उसका बोलना अनुराधा के लिए काल हो जाता। और अनुराधा का दु ख, अनुराधा का अपमान या उसकी बदनामी वह सह नही सकता था। फिर अब तो स्थिति और भी प्रतिकूल थी। विधवा की राह यो भी उँगलियो, भवो और नथुनो के प्रकोप के बीच से गुजरती है; और कही जो कोई बात हो गयी तब तो भगवान ही मालिक है।

जग्गू को अपने लिए कोई भय नही था। विरोध तो दूर, यदि प्रलय भी आ जाये फिर भी वह सामना करने की हिम्मत रखता था। लेकिन वह कोई ऐसा काम करने की कल्पना भी नही कर सकता था जिससे अनुराधा को दु ख या परेशानी होने की आशका हो। इसलिए उसने कठोर स्वर मे कहा—

"यह सब व्यर्थ की बाते मै कुछ नही समझता। अभी तुम यहाँ से चली जाओ।"

अनुराधा ने आश्चर्य से जग्गू के इस आकस्मिक परिवर्त्तन को देखा लेकिन वह कुछ समझ नही पायी। जग्गू ने फिर जरा जोर से कहा—

"जाओ!"

अनुराधा सहमकर दो कदम पीछे हट गयी और फिर मुडकर धीरे-धीरे गुमटी के बाहर हो गयी। जग्गू की इच्छा हुई कि वह अपना सिर दीवार से टकराकर फोड़ ले। उसे पुक्की फाडकर रोने की इच्छा हुई। उसकी आँखो मे आँसू आ गये। वेदना की तीव्रता से वह ऐंठकर रह गया लेकिन खुलकर रो नही सका। गुमटी के द्वार खुले छोडकर अनुराधा चली गयी थी। जग्गू द्वार तक आया। अनुराधा कुछ देर तक दिखाई देती रही,

लेकिन दूरी, अंधकार और समय ने जग्गू का वह कष्टप्रद सुख भी छीन लिया। जग्गू शून्य दृष्टि से देखता रहा—सामने का अंधकार, दूर गाँव मे किसी के दालान मे जलती हुई लालटेन की चिथडी रोशनी—घूरती हुई सी-फीकी, पीली, वीभत्स ! !

१८

महादेव बाबू आये। मत्री महोदय के आगमन से गाँव मे जिन्दगी की लहर दौड गयी। बिसेसरसिह की धूमिल प्रतिष्ठा फिर से चमक उठी। महादेव बाबू ने गाँव के लोगो को बताया कि देश-विदेश मे क्या कुछ हो रहा है। स्कूल के निर्माण मे सहयोग देने पर उन्होने गाँववालो की सराहना की, विशेषकर, बिसेसरसिह की उन्होने मुक्त कठ से प्रशसा की। उनके भाषण मे जग्गू और रामपाल का जिक्र तक नही आया। गोपाल ने मत्री महोदय के सामने अभिनन्दन-पत्र पढकर सुनाया। बाँध के काम मे बिसेसर-सिह का लडका सहदेव और गोपाल, दोनो मिलकर काम करते थे। परि-स्थिति कमजोर आदमी को अस्थिर बना देती है। साथ-साथ काम करने का सिलसिला और रुपये की चसक ने गोपाल के चरित्र को निर्बल कर दिया। इसलिए मत्री महोदय के स्वागत की तैयारी मे सबो के साथ-साथ गोपाल ने भी जग्गू की उपेक्षा की।

गाँव मे जिस समय चारो ओर धूम-धाम मची हुई थी, जग्गू अपनी गुमटी के बाहर अकेला बैठा हुआ अपने भाग्य पर मुस्करा रहा था। शाम हो चुकी थी। सामने स्कूल पर पेट्रोमेक्स जल रहा था। शोर-गुल की आवाज गुमटी से टकरा रही थी। उद्घाटन और भाषणो का क्रम समाप्त हो चुका था। मत्री महोदय और उनके स्वागत-सत्कार मे आये हुए इलाके के अन्य नेताओ को चाय पिलायी जा रही थी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बिसेसरसिह ने भानुप्रताप पर ही चाय-पानी की व्यवस्था का भार सौप दिया था। लेकिन जग्गू, जैसे यह सब बिल्कुल नही देख रहा था। पता नही, वह किस विचार मे डूबा हुआ था कि अनुराधा के वहाँ आकर खडी होने की उसे आहट तक नही मिली।

"किस चिंता मे डूबे हुए है ?" अनुराधा ने धीमे स्वर मे पूछा। जग्गू ने अनुराधा की ओर ऐसे देखा जैसे वह उसी की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन वह बोला कुछ नही। क्षण-भर वह फिर सिर झुकाये बैठा रहा और तब आहिस्ता से उठकर गुमटी की ओर जाता हुआ गम्भीर स्वर मे बोला—

"तुम फिर आ गयी ! यह नही सोचा कि तुम्हारे बार-बार यहाँ आने से लोग क्या सोचेगे।"

"लोग यही सोचेगे कि किसी निरक्षर को पढाने आयी होगी।" अनुराधा ने मजाक के स्वर मे कहा।

"तुम्हे हँसी सूझ रही है लेकिन मुझे ऐसी बाते अच्छी नही लगती।" गुमटी के भीतर पहुँचकर जग्गू खाट पर उदास मन से बैठता हुआ बोला।

अनुराधा ने पूर्ववत् स्वर मे कहा—

"आपको कुछ भी अच्छा नही लगता तो मै क्या करूँ ? लेकिन मुझे तो आजकल सब-कुछ अच्छा लगता है।"

"तुम तो बिल्कुल पागल हो गयी हो। पटना से लौटने के बाद तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। गाँव को शहर समझने लगी हो। लेकिन याद रखो कि गाँव मे हड्डियाँ सूँघनेवाले आदमी बसते है। अगर तुम्हारा यही हाल रहा तो एक दिन ये लोग तुम्हे नोच-नोचकर खा जायेगे।"

"वह दिन मेरे जीवन का सबसे शुभ दिन होगा।"

"सोचना और बोलना बहुत आसान है अनुराधा, लेकिन जब वह मुसीबत सिर पर आयेगी तब तुम मेरी बातो को याद करोगी। मै तुम्हे अपनी समझकर नेक सलाह देता हूँ। तुम मेरे पास मत आया करो। मुझे बहुत दु ख होता है।"

"मै आपके पास नही आऊँगी तो फिर नेक सलाह कैसे पाऊँगी ?"

अनुराधा की बात सुनकर जग्गू क्रोध से भभक उठा—

"मै तुमसे बात करना भी पसन्द नही करता।" यह कहकर खाट से उठकर गुमटी मे चक्कर काटने लगा कि अनुराधा किंचित विषाद के स्वर मे बोली—"आपको मुझसे इतनी नफरत हो गयी है ?"

"हाँ।" जग्गू ने तमककर कहा और फिर चक्कर काटने लगा। अनुराधा चुप रही। जग्गू अचानक ही बौखला उठा—

"सुना था कि औरतो का दिमाग नही होता और आज उसका प्रमाण भी मिल गया।"

"औरतो के पास दिमाग होता तोआज मर्द जिन्दा भी नही बचते। औरते भी लाभ-हानि की बाते सोचती, हर चीज को ठोक-बजाकर ग्रहण करती तो मर्द अपनी कायरता को अहकार के पर्दे मे नही छिपा पाते। आपको मुझसे इतना डर लगता है यह मै नही जानती थी।" इतना कहकर वह तेजी से गुमटी के बाहर चली गयी। जग्गू किकर्तव्यविमूढ-सा देखता रह गया। उसकी जुबान तालू से चिपक गयी। उसने अनुराधा को पुकारा लेकिन उसके मुँह से कोई आवाज़ नही निकली। उसने हाथ बढाकर रोकने का उपक्रम किया लेकिन वहाँ अधकार की शून्यता के सिवा और कुछ नही था। वह अनायास ही गुमटी के बाहर दौड आया और वहाँ का दृश्य देखकर उसे काठ मार गया। सामने रूपनसिह अनुराधा की कलाई पकडे खडा था और अनुराधा अपनी कलाई छुडाने के प्रयास मे छटपटा रही थी। रूपनसिंह गाँववालो के नाम ले-लेकर पुकारता जाता था और अनुराधा को भद्दी-भद्दी गाली देता जाता था। स्कूल पर अभी भी पेट्रोमेक्स जल रहा था। लोगो की भीड अभी एकत्र ही थी। क्षण-भर जग्गू कुछ भी नही निर्णय कर सका कि उसे क्या करना चाहिए कि रूपनसिंह की कडवी बात ने जग्गू को राह दिखा दी। रूपनसिह ने अनुराधा की भर्त्सना करते हुए कहा—

"अपने भरतार से मिलने आयी थी!"

जग्गू ने दृढता से आगे बढकर अनुराधा को छुडा लिया। जग्गू के कठोर पजो मे रूपनसिंह की कलाई कडकडा उठी और वह चीख-चीखकर गाँववालो को पुकारने लगा। अनुराधा बेहोश-सी हो गयी थी। जग्गू उसे सहारा देकर गुमटी की ओर ले चला कि तभी गाँव के बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। ऐसे मौकोपर गाँववाले अपना विवेक खो देते है, ऐसा सोचकर जग्ग ने अनुराधा को गुमटी के भीतर कर दिया और बाहर से दरवाजा

लगाकर वही जयद्रथ की तरह खडा हो गया। पल-भर मे एक तूफान उठ खडा हुआ। लोग तरह-तरह की बाते बोलने लगे, गन्दी-से-गन्दी गालियो से अधकार का कलेजा फटने लगा लेकिन जग्गू चुपचाप दरवाजे के बाहर खडा रहा। तभी "क्या बात है ? आप लोग क्यो शोर मचा रहे है ?" प्रश्न पूछते हुए बिसेसरसिंह आ धमके। जब लोगो ने उन्हे सब-कुछ बता दिया तब वह जग्गू की ओर आते हुए बोले—

"क्यो जग्गू भाई, क्या बात हुई ? अनुराधा कहाँ है ?"

"इन लोगो ने आपको सारी बाते तो बता ही दी है। फिर और क्या जानना चाहते है ?"

"अजाब आदमी हो ! अरे तुम भी तो बताओ कि ये लोग जो कुछ कह रहे है वह सही है या गलत !"

"बिल्कुल सही है।" जग्गू ने सक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। लोगो का शोरगुल दब गया, उत्तेजना की जगह, व्यग्य और वीभत्स मजाक के साथ हँसी फूटने लगी। बिसेसरसिंह थोडी देर के लिए, जग्गू के सहज उत्तर पर चौंक उठे। लेकिन फिर सम्हल गये और बोले—

"लेकिन यह तो तुमने अच्छा काम नही किया।"

"मैने क्या किया है यह मै जानता हूँ। आप लोगो को इससे कोई मतलब नही है।"

"मतलब कैसे नही है ? गाँव मे रहकर गाँव की मान-मर्यादा भग कीजिएगा सो कैसे होगा।"

गोपाल, जो अब तक चुप था, आगे बढकर बोल उठा। जग्गू को क्रोध नही आया। वह चुपचाप खडा रहा। गोपाल के चुप होते ही रूपनसिह ने गरजकर कहा—

"निकालो उस सतभतरी को गुमटी के बाहर, नही तो आज खून हो जायेगा यहाँ। साले ने गाँव को कटरा बना रखा है। पाजी !"

"अरे ढोगी है ढोगी ! दुनिया को दिखलाने के लिए साधु बनने का स्वाग रचता है और भीतर-भीतर गाँव की बहू-बेटियो पर डोरे डालता

फिरता है।" मुनेश्वर ने व्यग्य और घृणायुक्त स्वर मे कहा। तभी कुलदीप ने ललकारा—

"अरे मुँह क्या देखते हो ? मारो साले को चार डडे, सारा ढोग हवा हो जायेगा। लातो के देवता बातो से नही मानते।"

कुलदीप की ललकार सुनते ही बहुत से लोग उत्तेजित हो उठे। चारो ओर से 'मारो! मारो!' की आवाज़े आने लगी। किसी ने लाइन की बगल से रोडे उठाकर जग्गू पर चला भी दिये। जग्गू धीरज खो बैठा और आवेश मे आकर लपककर गुमटी के भीतर से अपनी लाठी उठा लाया और उसे हवा मे नचाता हुआ आक्रोशपूर्ण स्वर मे गरजकर बोला—

"मुझे क्या तुम लोगो ने औरत समझ रखा है ? खबरदार जो किसी ने गाली बकी या रोडे फेके! मै सिर तोड दूँगा। अरे पापियो! खुद तो दिन-रात चोरी, डाकेज़नी और हत्या करते फिरते हो और मुझ पर उँगली उठाते हो ? मै एक-एक की पोल खोलकर रख दूँगा। जो बडा धर्मात्मा और बहादुर बनता हो वह मेरे सामने आये।"

जग्गू की गर्जना सुनकर लोग जरा सहम गये। गोपाल को ताव आ गया—

"वाह! उल्टा चोर कोतवाल को डाटे!"

"तू अपनी बकवास बन्द कर गोपाल! नाजायज ढग से चार पैसे क्या कमाने लगा, दिमाग ही खराब हो गया।"

"कौन कहता है कि मैने नाजायज ढग से पैसे कमाये है ?" गोपाल ने जग्गू से चुनौती के स्वर मे पूछा। तभी पीछे से आवाज़ आयी—

"मैं कहता हूँ।" रामपाल अचानक ही वहाँ पहुँचकर बोला। लोग सकपकाकर उसकी ओर देखते रहे। रामपाल ने आगे बढकर गोपाल से कहा—"बाँध के लिए मिट्टी काटने मे आप लोगो ने जो जालसाजी की है, सब मुझे अच्छी तरह मालूम हो गयी है। चिंता न कीजिए, आप लोगो का भी जल्दी ही मालूम हो जायेगा।"

सब लोग इस आकस्मिक घोषणा से स्तम्भित रह गये। गोपाल की

जीभ तालू से सट गयी। खैरियत हुई कि अधकार मे उसके चेहरे पर छायी हुई भयावह मुर्दनी को कोई नही देख सका। तभी मुनिदेव वहाँ आ पहुँचा। भीड-भाड का कारण वह नही जान सका लेकिन जग्गू को गुमटी के दरवाजे पर लठ्ठ लिए खडा हुआ देखकर वह झगडे की स्थिति समझ गया। वह इधर-उधर देखकर पूछने लगा——

"क्या बात है ? आप लोगो ने भीड क्यो लगा रखी है ?"

मुनिदेव के आने से लोगो की जबान खुल गयी। बिसेसरसिह ने नीति-पूर्वक कहा——

"अरे कोई बात नही है। अनुराधा जरा जग्गू भाई से मिलने चली आई थी, उसी पर गाँव के लोग नाराज हो गये है, क्योकि बात ज़रा मर्यादा के विरुद्ध हो गयी है।"

"कहाँ है अनुराधा ?"——मुनिदेव ने पूछा।

"यही गुमटी मे बैठी है।" बिसेसरसिंह ने कहा। मुनिदेव क्षण-भर कुछ निर्णय नही कर सका कि जग्गू बोल उठा——

"इन लोगो ने उस बेचारी को भद्दी-भद्दी गालियाँ दी, उसकी बाँह पकड-कर उसे घसीटा सो कोई बात नही हुई लेकिन मैंने उसे इन लोगो के अत्या-चार से बचाकर बहुत बुरा किया !"

"किसने उसे बाँह पकडकर घसीटा ?"——बिसेसरसिह ने पूछा।

"रूपनसिंह ने।"——जग्गू ने उपेक्षा के स्वर मे कहा।

"तो तुम्हारे विचार मे मै उसकी आरती उतारता !" रूपनसिंह ने आवेश के स्वर मे व्यग्य किया।

"आपको चाहिए था कि उसकी पूजा करते, फूल-अक्षत चढाते, फिर उसके चरणो की धूल मस्तक से लगाते !"——मुनेश्वर ने व्यग्य किया। कुछ लोग मुनेश्वर की बात पर हँसने लगे। बिसेसरसिंह ने डपटकर कहा——

"क्या बेवकूफो की तरह आप लोग हँस रहे है ?"

"आप लोगो का इरादा क्या है ?"——मुनिदेव ने गम्भीर स्वर मे पूछा।

कई आवाज़ें एक साथ सुनायी दी——"अनुराधा को हमारे हवाले

करो !" "उस भ्रष्टा को बाहर निकालो !"—"उस डायन का झोंटा काटकर उसे गाँव के बाहर निकाल दो।"

"इससे अच्छा तो यह होगा कि आप लोग यहाँ से अपना मुँह काला कर ले।"—जग्गू ने दृढ स्वर मे कहा। शोरगुल फिर बढने लगा। मुनिदेव को एक उपाय सूझ गया। उसने ऊँची आवाज मे कहा—

"सुनिए ! अनुराधा कोई नाबालिग नही है। वह कुछ सोच-विचार-कर ही यहाँ आयी होगी। इसलिए आप लोगो का इस तरह जोर-जबरदस्ती करना नाजायज है। इस तरह अगर आप लोग पागलपन कीजिएगा तो बाद मे कानून के जाल मे फँस जाइएगा। अभी आप लोग जाइए। कल सुबह होने पर, जो कुछ करना हो, कर लीजिएगा।" मुनिदेव की इस बात पर लोग और बौखला उठे और अनुराधा को बाहर निकाल लाने पर तुल गये। जग्गू अपनी जगह स्थिर खडा था। बात बिगडती जा रही थी। रामपाल ने चिढकर कहा—

"आप सब लोग जेल जाने पर उतारू है ! आपको मालूम होना चाहिए कि हर आदमी को स्वतन्त्रता है कि वह जब चाहे, जिससे चाहे मिले। आप लोगो को अनुराधा के आने-जाने पर प्रतिबन्ध लगाने का कोई अधिकार नही है।"

"जाइए-जाइए ! बडे आये कानून छाँटनेवाले।" रूपनसिंह ने मुँह बिचकाकर आक्रोश के स्वर मे कहा। मुनिदेव ने बिसेसरसिह के कान मे कुछ कहा, जिस पर सिर हिलाकर सहमति प्रकट करता हुआ बिसेसरसिह जोर से बोला—

"अच्छा, अब मै एक उपाय बताता हूँ। आप सब लोग जाइए। गोपाल, मुनेश्वर, कुलदीप, मुनिदेव, रामपाल साहब और मुझ पर अनुराधा को यहाँ से ले जाने का जिम्मा छोड जाइए। कल दिन मे हम गाँववाले बैठकर इस बात का फैसला कर लेगे कि अनुराधा और जग्गू को इस जुर्म की क्या सजा मिलनी चाहिए।" बिसेसरसिंह की बात लोगो को पसन्द आ गयी। जग्गू कुछ बोलना ही चाहता था कि मुनिदेव ने उसका हाथ दबाकर उसे रोक

दिया। धीरे-धीरे लोग छँटने लगे। सब लोगो के चले जाने के बाद तय हुआ कि अनुराधा अपने घर चली जाये और रात मे कोई दुर्घटना न हो इसलिए गोपाल, कुलदीप और जग्गू अनुराधा के घर, बाहर गुरजी वाली कोठरी मे जाकर सो जाये। सुबह होने पर देखा जायेगा। जग्गू ने मजबूर होकर सब-कुछ स्वीकार कर लिया। लेकिन उसकी भाव-भगिमा से उसके मन का सकल्प मुखरित हो रहा था। उसके मन मे कोई विषाद नही था, कोई ग्लानि नही थी बल्कि वह उत्साह और आनन्दानुभूति से विभोर हो रहा था, लेकिन उसकी ऊपरी आकृति से गम्भीरता, कठोरता और रौद्र टपक रहा था। वह रात-भर जगा रह गया।

१९

सुबह होते ही गाँव मे सरगर्मी छा गयी। सबो की जुबान पर अनुराधा और जग्गू की चर्चा चढी हुई थी। प्राय सभी लोग एक स्वर से छी छी कर रहे थे। घर-घर मे, कुएँ पर, रास्ते मे, खेत मे, बथान पर—सब जगह अनुराधा की विशेष रूप से भर्त्सना हो रही थी। औरतो की जुबान को तो जैसे चलने को पटरी मिल गयी थी। दिन चढते-चढते अनुराधा गाँववालो की आँखो पर चढ गयी। रात की घटना के अनुरूप, अनुराधा और जग्गू से सम्बद्ध कई क्षेपक भी सुबह होते-होते तैयार हो गये। 'छी छी' 'थू-थू' से गाँव का चप्पा-चप्पा घिना गया।

लेकिन जग्गू अपनी धुन मे मस्त था। सुबह होते ही जग्गू गुमटी पर चला आया था। उस दिन बडे इत्मीनान से उसने स्नान किया, बडे चाव से भोजन बनाया और खा-पीकर धुले कपडे पहनकर तैयार बैठ गया। मुनिदेव आया तो जग्गू अपने मन की बात उसके सामने खोल बैठा। मुनिदेव ने जब सुना कि जग्गू भरी पचायत मे अनुराधा से अपनी शादी करने की बात कहने जा रहा है तब वह बहुत ही झल्लाया। उसने जग्गू को डाँटा-डपटा, डराया-धमकाया लेकिन व्यर्थ। जग्गू अपने सकल्प पर सुदृढ रहा। रामपाल इस विषय पर मौन रहा।

पचायत शुरू हुई। उस दिन की पचायत मे गाँव का बच्चा-बच्चा उपस्थित था। गाँव की लगभग सभी औरतें, सभा-स्थल से कुछ दूर, इधर-उधर, पाँच-पाँच छ-छ के गिरोह मे नाक तक आँचल सरकाये खडी थीं।

सबसे पहले जग्गू का बयान शुरू हुआ। जग्गू ने खुले शब्दो मे कह दिया कि वह अनुराधा से शादी करेगा। उसकी बात सुनकर लोग क्षण-भर स्तम्भित रह गये। फुसफुसाहट का स्वर कोलाहल मे बदल गया। कुछ लोग तो गाली-

गलौज पर उतर आये। कोई जग्गू को गाली दे रहा था तो कोई अनुराधा को। दूर पर खडी बूढी औरतो ने भी चीख़-पुकार मचानी शुरू कर दी थी। इस असाधारण बात पर सबके सब क्रोध, ग्लानि और घृणा से भर गये। केवल जग्गू के चेहरे पर आत्म-विश्वास और धीरज की ज्योति जल रही थी। लाख मना करने पर भी जब शोरगुल नही दबा तो बिचित्तरसिह उठे और ज़ोर से बोले—

"आप लोगो ने जग्गू भाई के विचार सुन ही लिये। जग्गू भाई लाख चरित्रवान हो या ईमानदार लेकिन उनकी यह बात मुझे पसन्द नही आयी।"

"इनका दिमाग ख़राब हो गया है!"—कई आदमी बोल उठे कि बिचित्तरसिह ने उन लोगो को डपट दिया—

"आप लोग मेरी पूरी बात सुन लीजिए फिर बोलिये—बात यह है कि देसौरा गाँव मे ऐसी बात न कभी हुई और न हम होने देगे। आख़िर धर्म-कर्म भी कोई चीज होती है। हम लोगो को जग्गू भाई से ऐसी उम्मीद नही थी। लेकिन इस औरत के चक्कर मे पडकर इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। जिस दिन इन्होने इस औरत को शहर भेजा उसी दिन हम समझ गये कि अब गाँव से धरम-करम उठ गया, और अब तो अनर्थ ही हो गया। लेकिन इस पाप की जड मे यह औरत है जो अभी सुपात्र जैसी सिर झुकाये बैठी है। आप लोग जरा इसका विचार भी तो सुन लीजिए!" इतना कहकर बिचित्तरसिह बैठ गये। फिर शोरगुल उभर आया। कई लोगो ने अनुराधा से डपटकर कहा—"बोलती क्यो नही है? मुँह मे दही जमा हुआ है? कुल्टा कही की!"

अनुराधा उठी। लोगो ने देखा कि उसकी आँखे सूजी हुई और लाल थी, उसका चेहरा उतरा हुआ था और उसके बाल अस्त-व्यस्त थे। जग्गू ने छिपी नजरो से उसे मुस्कराकर देखा लेकिन अनुराधा का विषादपूर्ण मुखमडल देखकर वह आश्चर्य-चकित रह गया। अनुराधा ने धीमे स्वर मे कहा—

"मै इनसे गुमटी पर मिलने ज़रूर गयी थी, और भी कई दिन गयी थी।

इसके लिए आप लोग जो सजा चाहे दें। लेकिन मै गॉव कीं मर्यादा को तोडना नही चाहती। मै अपनी भूल के लिए प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ। मै विधवा हूँ और अब मेरी शादी तो चिता की लपटो के साथ ही होगी।"

जग्गू, पर-कटे पक्षी की तरह, धम्म से ज़मीन पर आ गिरा। उसकी समझ मे नही आया कि अचानक ही क्या से क्या हो गया। उसने घूरकर अनुराधा को देखा लेकिन उसे विश्वास नही हुआ कि उसके सामने वही अनुराधा बैठी हुई रो रही थी जिस अनुराधा को वह बचपन से जानता था, जो उससे गुमटी मे मिलने आती थी, जो गुरुजी की बेटी थी। जग्गू का आत्म-विश्वास आत्म-ग्लानि मे बदल गया, उसका धीरज प्रचड क्रोध की सीमा को छूने लगा और अनुराधा के प्रति उसका प्रेम घृणा और प्रतिशोध के धुएँ से घुटकर मर गया। वह जल्दी से उठकर वहाँ से भागा और भागता ही चला गया। उसे पता भी नही चला कि किधर जा रहा है, क्या समय है और वह स्वय कौन है? उसके पैर थक गये, कलेजा फटने लगा, यथार्थ-स्वप्न की कड्वाहट से उसकी आँखे जलने लगी, और तब वह पता नही कहाँ, किस गॉव मे एक पेड के नीचे बैठ गया। उसे महसूस हुआ कि वह एक दु खपूर्ण स्वप्न देख रहा था। उसकी आँखो से आँसू की धारा बह चली। वह सिसक-सिसककर रोने जगा। शाम हो चुकी थी। वह किसी अज्ञात गाँव के बाहर आम की गाछी मे बैठा रहा। इसी तरह न जाने वह कब तक मायूसी मे डूबा रहा कि अचानक परिचित आवाज सुनकर चौक उठा। सामने मुनिदेव खडा था। मुनिदेव को देखकर उसने जल्दी से आँखे पोछ ली और वह उठकर चलने को हुआ कि मुनिदेव ने उसकी कलाई पकड-कर कहा—

"मैने अपनी साइकिल वहाँ पेड से लगा रखी है।"

"मुझे अब उस गाँव मे नही जाना है।" जग्गू ने धीमी किन्तु दृढ आवाज मे कहा। मुनिदेव हँसता हुआ बोला—

"फिर मै व्यर्थ ही चला आया।"

"मै ठीक कह रहा हूँ मुनिदेव। मै उस गॉव मे लौटकर गया तो पागल हो जाऊँगा।"

"अरे प्यारे! तुम होश मे कब थे कि अब पागल होने से डरते हो! तुम्हे तो उस गॉव और समाज का शुक्र-गुजार होना चाहिए जिसने ठीक समय पर तुम्हे सही रास्ता बता दिया। अब चुपचाप गुमटी पर लौट चलो। जैसे पहले रहते थे, वैसे ही रहते चलो।"

"मैने तुमसे कह दिया कि मुझे अब लौटकर नही जाना है। मै इस विषय मे किसी से बात करना भी नही चाहता।"

"तुम्हारे जैसे आदमी को इतनी कायरता शोभा नही देती।"

मुनिदेव की बात सुनकर जग्गू ने उसकी ओर कुपित होकर देखा। अँधेरे मे, दोनो एक दूसरे की आकृति को देख-समझ नही सके, फिर भी मुनिदेव जग्गू का मनोभाव भाँपता हुआ बोला—

"मुँह क्या ताकते हो? मै बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ। इतना बडा हगामा खडा करके अनुराधा को बदनामी के भँवर मे डाल दिया और अब खुद किनारे हो जाना चाहते हो।"

"उस औरत का नाम मत लो मुनिदेव। उसने मुझे कही का नही रखा।"

"उसने तुम्हे कही का नही रखा या तुमने उसे कही का नही रखा? वे दिन भूल गये जब उसके घर चक्कर लगाया करते थे? पूरा गाँव इस बात को जानता था। गाँव की औरते उस बेचारी के पास जाकर उसकी भर्त्सना करती थी। फिर भी अनुराधा गॉव छोडकर नही भागी। लेकिन तुम अपने स्वार्थ के चलते आज भाग रहे हो। यही तुम्हारा प्रेम-भाव है जिसका तुम दम भरते थे! मेरा मुँह मत खुलवाओ, चुपचाप मेरे साथ चले चलो।"

देर तक दोनो मित्र एक दूसरे से उलझते रहे। जग्गू के मन मे यह बात घर कर गयी कि वह कायरतावश, अपने स्वार्थ के चलते ही, गाँव से भाग रहा है। निदान, वे दोनो घर की ओर लौट चले। तब तक रात उतर आयी थी। जग्गू विक्षोभ की बेहोशी मे, अपने गॉव से छ-सात कोस दूर पहुँच गया

था सो गुमटी पर लौटते-लौटते दस बज गये ।

मुनिदेव ने अपने घर से खाना लाकर जग्गू को खिलाया और तोष-भरोस देकर स्टेशन चला गया। जग्गू फिर अकेला रह गया। अकेली रात, एकात गुमटी और सूनी, नीरस रेल की पटरी अपनी निस्तब्धता से जग्गू के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करती रही और तब जग्गू अपने भूत, वर्तमान और अतीत की अनिश्चितता मे डूब गया। लेकिन कोई बात उसकी पकड मे नही आती थी। वह निरा विवेक-शून्य, भाव शून्य, जीवन-शून्य और दृष्टि-शून्य होकर बैठा रहा। वह हर घटना से अपने को सम्पृक्त महसूस करता और जितनी ही यह अनुभूति उसमे तीव्र होती उतना ही वह, जीवन और जगत् से असम्पृक्त होता जाता। लेकिन ममत्व का स्वाद, और उसके मन मे कुछ व्यक्तियो के प्रति जमी हुई निश्चित धारणा, उसकी बेचैनी की आग मे घृत का काम करती।

जग्गू गुमटी के चौकठ पर बैठा हुआ अधकार मे देख रहा था। दूर पर गुरुजी के घर के पास कोई गा रहा था—

जेहि बाटे कृष्ण SSSS गइले SSSS ॰ ॰ ॰
दूबियो जनमी गइले, आहो-आहो की
सेही देखी जिअरा मोरा फाटे रे न की SSSS !

यद्यपि इस गीत के अर्थ और जग्गू के मनोभाव मे कोई विशेष साम्य नही था फिर भी जग्गू का मन, इस स्वर-लहरी के सहारे, अधकार मे भटकता फिर रहा था। गीत का दर्द, उसके लय और धुन मे घुल-मिलकर घनीभूत अधकार मे सिसकता हुआ-सा प्रवाहित हो रहा था और जग्गू की समस्त इन्द्रियाँ, चेतनाहीन होकर, उसी प्रवाह मे बही जा रही थी।

२०

जग्गू पूर्ववत अपनी गुमटी पर रहने लगा। उसने सबो से मिलना-जुलना बन्द कर दिया। कभी-कभार मुनिदेव आता तो उसी से दो-चार बाते कर लेता। गॉव मे वह लौटकर कभी नही गया।

पचायत ने अनुराधा को प्रायश्चित करने का आदेश दिया था—साधारण प्रायश्चित नही, अति कठोर प्रायश्चित! अनुराधा को सिर के बाल कटाकर, प्रयाग मे, त्रिवेणी पर बालू फाँकना था, दान-दक्षिणा करनी थी और गो-मूत्र पीना था। जग्गू का एक मन हुआ कि वह अनुराधा से जाकर मिले और उसे समझा-बुझाकर अपनी बात स्वीकार करा ले। लेकिन उसने ऐसा किया नही। वह गुमटी पर ही जमा रहा। इसी बीच, एक दिन अचानक ही उसे खबर मिली कि भानुप्रताप, शारदा को अकेली छोडकर, नौ-दो-ग्यारह हो गया। मुनिदेव से उसे मालूम हुआ कि शारदा रो-रोकर जान देने पर उतारू है। फिर भी जग्गू वहाँ नही गया। वह पत्थर बना सुनता-सहता रहा। मुनिदेव के मुँह से उसने यह भी सुना कि गॉववाले भानुप्रताप के भाग जाने की बात को उसी के साथ सम्बद्ध कर रहे है। लोगो का कहना है कि शारदा पतिता है, वह जग्गू और रामपाल से भी फँसी है। इसीलिए भानुप्रताप ने उसे त्याग दिया। ऐसी कुल्टा औरतो को तो ज़िन्दा जला देना चाहिए ‥ और जग्गू इन तमाम बातो को सुनकर भी अनसुनी कर देता। उसे अब किसी की परवाह नही थी। उसके मन मे नफरत जनम चुकी थी—तमाम चीजो के प्रति नफरत और अपने आपसे नफरत!!

उस दिन वह, गुमटी मे बैठा, रामायण के पन्ने उलट-पुलट रहा था कि रामपाल आ पहुँचा। रामपाल कुछ दिन के लिए बाहर गया हुआ था। उसे अचानक आया देखकर जग्गू नम्रतापूर्वक उठ खडा हुआ और हाल-चाल

पूछने लगा—

"कब आये ? अच्छे है न ?"

"मै कल ही आ गया था लेकिन आपसे मिल नही सका। आज मै सदा के लिए आपके गॉव से जा रहा हूँ।"

"इस गॉव से आप जा रहे है ? क्यो ?" जग्गू ने आश्चर्य और दु ख से चौककर पूछा। रामपाल ने मुस्कराते हुए कहा—

"मेरी ईमानदारी का मुझे पुरस्कार मिला है !"

"बडी प्रसन्नता की बात है।" जग्गू उत्साहपूर्वक बोला।

"हॉ, बहुत जल्दी मुझे शिक्षा मिल गयी और बहुत बडा अनुभव भी मिल गया। यह क्या कम प्रसन्नता की बात है ?" रामपाल ने अपने सहज भाव से उत्तर दे दिया, लेकिन उसके स्वर मे वेदना स्पष्ट थी।

"मै समझा नही ?" जग्गू ने परेशानी के स्वर मे पूछा।

"इसे न समझो यही अच्छा है, जग्गू भाई। आज मुझे यदि दु ख है तो बस इसी बात का कि मै सारी बाते क्यो समझ रहा हूँ ? लेकिन खैर, इस दु ख मे प्रायश्चित का भाव नही है। मैने आज तक ऐसा कोई काम नही किया जिसके लिए मुझे ग्लानि हो। तुमसे भी यही कहने आया हूँ जग्गू भाई कि जैसे हो, वैसे ही बने रहो—परिस्थिति तुम्हारे प्रतिकूल है लेकिन तुम झुको नही। अच्छी राह कभी सुखद नही होती। नया काम भयकर विरोध झेलने के बाद ही शुरू किया जा सकता है।"

"यह सब आप क्या बोल रहे है ?"

"तुम्हारे मन की बात बोल रहा हूँ जग्गू भाई। तुम पढे-लिखे पडित नही हो लेकिन तुम आदमियो मे देवता हो। अपना देवत्व कायम रखना। बस यही कहकर जाता हूँ। मुझे जाना पड रहा है क्योकि मै सरकारी नौकर हूँ, मजबूर हूँ। किसी के प्रभाव मे आकर, मेरे बडे अफसर ने मुझे तुरन्त ही यह इलाका छोड देने का आदेश दिया है। मै तुमसे वचन लेकर जाना चाहता हूँ कि तुम अनुराधा को कभी अकेली नही छोड़ोगे, शारदा को पथ-भ्रष्ट नही होने दोगे और तुम परिस्थिति के आगे झुकोगे नही। बोलो, वचन

देते हो ?"

'वचन'—यह शब्द सुनते ही जग्गू तिलमिला उठा, कॉप उठा। एक दिन उसने विसेसरसिह को वचन दिया था और उसका भयकर परिणाम अब तक भोग रहा था। 'न जाने क्या होनेवाला है'—यह सोचकर वह सिहर उठता। जग्गू ने बहुत-कुछ देख-सुन लिया था, अब अधिक सहने की शक्ति उसमे शेष नही थी। उसने 'न' करने के लिए मुँह खोला कि उसकी आँखे रामपाल की आँखो से मिल गयी। रामपाल की आँखो मे असीम विश्वास और आभा चमक रही थी, उसके होठो पर निश्छल स्नेह की मुस्कराहट कॉप रही थी और उसके मुखमडल पर जीवन के प्रति अखड आस्था भासमान हो रही थी। जग्गू के मुँह से अनायास ही शब्द फूट पडे—

"आप मुझ पर विश्वास रखिए, रामपाल साहब। बहुत से अफसरो को देखा लेकिन आप सचमुच ही ऐसे अफसर है जिनकी आज्ञा आशिष-जैसी मालूम देती है।"

"तो जग्गू भाई मुझे आशिष दो कि मै लाख विरोध के बावजूद ऐसा ही अफसर बना रहूँ। शारदा को बहुत जोर का दर्द हो रहा है। मेरी गाडी के आने मे अब देर नही है, इसलिए अब चलता हूँ। तुम शारदा के पास जाओ, और यह लो।"—रामपाल जेब से नोटो का एक पतला-सा बण्डल निकालकर जग्गू को देता हुआ बोला—"शारदा की सेवा-सुश्रूषा मे आवश्यकता पडेगी। उसे शायद प्रसव-पीडा हो रही है। लो, रखो इसे !"

"लेकिन "

"लेकिन-वेकिन कुछ नही। तुम चुपचाप जल्दी से शारदा के पास जाओ। मै भी अब चलता हूँ।"

"चलिए स्टेशन तक छोड आऊँ !"

"स्टेशन जाने की बिल्कुल ज़रूरत नही है। काम होना चाहिए—प्रदर्शन नही। और मै जीने जा रहा हूँ—जलने या दफन होने नही कि साथ मे पहुँचाने के लिए आदमी की ज़रूरत होगी।" रामपाल ने हँसते हुए कहा लेकिन उसकी आँखे भर आयी। वह जल्दी से मुडकर स्टेशन की ओर चल

पडा। जग्गू उसे हाथ जोडे देखता रहा। क्षण-भर के लिए सुध-बुध खोकर रामपाल को जाते हुए निहारता रहा। लेकिन उसका मन, उसकी आँखो से बहुत दूर, उसकी अपनी गहरायी मे ही ऊब-डूब रहा था जिससे उसकी आँखो के किनारे छलक आये थे। उसके कान मे रामपाल के शब्द गूँज रहे थे कि उसे शारदा का ध्यान आया और वह घर की ओर भागा।

तीसरा पहर बीत रहा था। लेकिन गर्मी का सूरज अभी भी कनपट्टी पर चमक रहा था। खेतो मे एक हल पड चुका था। सूखी मिट्टी का सोधापन गरम हवा के थपेडो से मर चुका था और हरियाली के नाम पर कही-कही अरहर के धूल-अँटे पौधे मन मारे खामोश खडे थे।

जग्गू पसीना पोछता हुआ घर मे घुसा ही था कि उसे शारदा के कराहने की आवाज सुनायी दी। वह बाहर ही थम गया। आँगन सूना पडा था। भीतर की कोठरी से कराहने की आवाज़ जोर पकडती जा रही थी। ब्रह्मदेव का कही पता नही था। जग्गू ब्रह्मदेव की तलाश मे एक बार फिर बाहर आया लेकिन वहाँ गरम हवा बहने लगी थी। वह फिर आँगन मे आया। वहाँ शारदा के कराहने की आवाज़ सुनकर वह छटपटाने लगता तो फिर बाहर चला आता, और इस तरह वह कई बार बाहर-भीतर करता रहा कि अचानक शारदा बहुत ज़ोर-ज़ोर से चीखने-चिल्लाने लगी। जग्गू से रहा नही गया। वह भीतर जाने ही लगा था कि अचानक उसके पैर रुक गये—सामने अनुराधा, कोठरी से बाहर निकलती हुई जग्गू को देखकर ठिठक गयी थी। लेकिन पल-भर बाद ही अनुराधा की चेतना जैसे लौट आयी और वह बिल्कुल सहज स्वर मे बोली—

"जरा कल्लू चमार की घरवाली को बुला लाइए। जल्दी लौटिएगा क्योकि समय निकट आता जा रहा है।"

जग्गू बिना कोई शब्द बोले कल्लू चमार के घर की ओर लपक चला। मुद्दत बाद उसने अनुराधा को देखा था। वह सूखकर काँटा हो गयी थी। उसका चेहरा पीला पड गया था और उसकी आँखे बडी हो आयी थी। लेकिन जब वह ठिठककर खडी हो गयी थी तब क्षण-भर के लिए उसका

सहज सौन्दर्य जैसे सजीव हो उठा था—ऐसा जग्गू को लगा।

कल्लू चमार की पत्नी जब वहाँ पहुँची उस समय शारदा की प्रसव-पीडा दब चुकी थी। जग्गू बेचैनी मे घर के भीतर-बाहर होता रहा। कभी-कभी उसे भानुप्रताप पर क्रोध हो आता—पता नही क्यो! रात हो आयी। शारदा का दर्द फिर उभर आया। जग्गू किससे क्या पूछे? क्या करे?—यही उसकी समझ मे नही आ रहा था कि अचानक ही अनुराधा उसके सामने आकर खडी हो गयी।

दोनो एक दूसरे को पल-भर देखते रह गये। दस बजे की गाडी गुमटी पर से हडहडाती हुई गुज़र गयी जिसकी धमक से सारा घर हिल उठा। जग्गू चौककर होश मे आ गया, और फिर वही पर चहलकदमी करने लगा। अनुराधा चुपचाप खडी रही। बाहर गाँव मे कुत्ते लग रहे थे। शारदा की हृदय-विदारक चीख और उसकी भयावह कराह सारे वातावरण पर दु ख और निर्वेद का ताना-बाना बुन रही थी। वेदना और वैराग्य गहरा होता जा रहा था।

"आप मुझसे बहुत नाराज़ है?"

जग्गू चहलकदमी करता रहा। अनुराधा क्षण-भर बाद फिर बोली—

"कम-से-कम मेरा कसूर तो बता दीजिए।"

"जो काम आप करने आयी है, पहले उसे तो पूरा कीजिए।" जग्गू ने बेरुखी से कहा।

अनुराधा ने कहा—"वही तो कर रही हूँ।"

"फिर मुझसे कुछ पूछने की जरूरत नही है," जग्गू ने भर्त्सना के स्वर मे कहा—"जाइए, शारदा के पास जाइए।"

अनुराधा चुपचाप खडी रही। जग्गू चहलकदमी करता रहा। रात बीतती रही। शारदा को होनेवाला 'झूठा दर्द' कभी दब जाता तो कभी उभर आता। बीच मे दो-तीन बार अनुराधा शारदा के पास गयी और फिर वापस आ गयी लेकिन चुपचाप एक ओर दीवार से लगकर खडी रही। उस समय जग्गू के घर मे धीरज की परीक्षा हो रही थी। तभी चमइन भागी

हुई आयी और अनुराधा को बुला ले गयी। जग्गू भौचक्का-सा देखता रह गया। उसे लगा कि शारदा कोठरी मे पछार खाती फिर रही है। देर तक शारदा चीखती-चिल्लाती रही। रात के साथ-साथ जग्गू की बेचैनी और वेदना गहरी होती रही। वह पसीने से लथपथ चक्कर काटता रहा। उसके दिमाग मे तमाम बाते चक्कर काटती रही—गाँव की बाते, अनुराधा की बाते, शारदा और भानुप्रताप की बाते, बिसेसरसिह की बाते और इन तमाम बातो के बीच से एक बहुत ही वितृष्णायुक्त प्रश्न कढकर जग्गू को झकझोर देता—'इतने कष्ट के पश्चात् उत्पन्न नादान मनुष्य आगे चलकर कितनी आपाधापी मचाता है, कितना कृतघ्न और अहकारी हो जाता है ?'

अनुराधा ने आकर कहा—

"लड़का हुआ है।"

जग्गू के मन मे हर्ष या विषाद कुछ नही हुआ। उसने अनुराधा को देखा। अनुराधा ने आँखे झुका ली। दोनो के मन का तूफान खामोशी के वातावरण को असह्य बना रहा था। जग्गू ने सहज गम्भीरता से पूछा—

"अनुराधा, यदि मै गाँव छोडकर चला जाता तो तुम्हे दुख भी होता ?"

"मै अपना शरीर छोड देती ?"

"क्यो ?"

"यही तो मै नही जानती।"

"फिर उस दिन तुमने भरी पचायत मे मुझे बेपानी क्यो कर दिया ?"

"अपने नेह और आपके सुख को जिन्दा रखने के लिए।"

"तुम पटना जाकर बोलना बहुत सीख गयी हो।"

"नही, मै तो चुपचाप रहना सीख गयी हूँ। बोल तो आपको देखकर निकलता है। लेकिन आप समझे तब तो।"

"अब क्या होगा, अनुराधा ?"

"होगा क्या ? जैसा चलता है, चलने दीजिए।"

"नही ! ऐसे मे तो मै मर ही जाऊँगा। चलो, हम लोग भाग चले।"

"छि ! ऐसा भी कोई सोचता है ? हम लोग क्या चोर हैं जो यहाँ से भाग जाये ? ऐसा करने से तो हमारा प्रेम ही कलकित हो जायेगा, और अब तो शारदा की जिम्मेदारी भी आप पर ही है।"

"मै नही जानता शारदा को। उसने गलती की है तो फल कौन भोगेगा ?"

"यदि शारदा की जगह मै होती तो ?"

"कैसी बाते करती हो ?"

"ठीक कह रही हूँ। दु ख झेलते-झेलते मुझे स्वय दु ख से ही मोह हो गया है। दुखियो को देखकर मुझे अपना ध्यान आ जाता है। अब तो जग्गू बाबू, हम लोगो को यही जीना है या यही मरना है।"

"तो तुम मेरी कोई भी बात मानने को तैयार नही हो ?"

"और सब बात मानूँगी लेकिन भाग चलने की बात मै सोच भी नही सकती।"

"सब बात मानोगी—ऐसा वचन देती हो ?"

"हाँ।"

"तो मुझसे शादी कर लो। मेरे साथ रहो।"

"शादी की रस्म तो सामाजिक स्वीकृति को प्रकट करने के लिए होती है और समाज हम लोगो के इस सम्बन्ध को स्वीकृति देने से रहा। हाँ, मै साथ रहने को तैयार हूँ।"

जग्गू ने अनुराधा को देखा और उसके निकट चला आया। उसने पहली बार अनुराधा को रागात्मक भाव से स्पर्श किया—उसकी ठुड्डी उठाकर उसे ध्यान से देखा और वह तन्मय स्वर मे बोला—

"तुम कैसी हो गयी हो ?

"तुम्हारे योग्य !" अवरुद्ध कठ से अनुराधा बोली। सवेरा हो चुका था। तभी कल्लू चमार की घरवाली वहाँ आ धमकी और दोनो को उस स्थिति मे देखकर किंचित् सकपका गयी, फिर सम्हलती हुई बोली—

"लडका बचेगा नही।"

"क्यो ?" अनुराधा और जग्गू साथ-साथ बोल उठे।

"लडका सतमासा है। न वह आँखे खोलता है और न रोता है।" चमइन रूखे स्वर मे उपेक्षा के भाव से बोली—"अच्छा, मै ज़रा अपने घर जा रही हूँ। थोडी देर मे आती हूँ।"

चमइन के जाने के बाद अनुराधा शारदा के पास पहुँची। जग्गू भी प्रसूति-गृह के दरवाजे तक गया। वही से उसने झाँककर देखा—शारदा सो रही थी—निष्प्राण। कोठरी मे काफी अंधेरा था इसलिए वह शारदा का चेहरा स्पष्ट नही देख सका।

चमइन की बात सच निकली। दस बजते-बजते नवजात शिशु चल बसा। अनुराधा ने शारदा को सही बात का पता भी नही लगने दिया। उससे कह दिया गया कि बच्चा जनमते ही मर गया था, और जग्गू उस नवजात मृत शिशु को गोद मे लेकर गडक-किनारे मिट्टी के नीचे सुला आया। जन्म, जीवन और मृत्यु के इस भयकर अनुभव का आकस्मिक बोझ जग्गू झेल नही पाया। वह देर तक गडक के किनारे चुपचाप बैठा नदी का प्रवाह देखता रहा और उसकी आँखो से अविरल अश्रुधार प्रवाहित होती रही।

२१

जग्गू नदी-किनारे से सीधा घर पहुँचा। वहाँ गाँव की पाँच-छ बूढी और प्रौढ स्त्रियो को देखकर जग्गू का माथा ठनका। जग्गू को देखते ही सभी औरते घुस-फुस करने लगी लेकिन जग्गू से किसी ने कुछ नही कहा। जग्गू चुपचाप उस कोठरी की ओर बढा जिसमे शारदा रहती थी। कोठरी के भीतर दरवाजे के पास ही जग्गू अचानक रुक गया। वही अनुराधा अपने दोनो घुटनो मे सिर छुपाये बैठी थी। पास मे रूपनसिंह की स्त्री खडी-खडी अनुराधा को फटकार रही थी। जग्गू को देखते ही वह स्त्री चुपचाप एक ओर हटकर खडी हो गयी। जग्गू ने अनुराधा को देखा—वह सिसक-सिसककर रो रही थी। उधर शारदा भी रोये जा रही थी। जग्गू ने समझा कि यह रोना-धोना और जमघट शारदा के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए है। फिर भी उसने किंचित चिता और दु ख के स्वर मे पूछा—

"क्या बात है ?"

जग्गू का स्वर सुनते ही अनुराधा ने सिर उठाकर देखा। उसका आँसुओ से भीगा चेहरा और आँखे देखकर जग्गू किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। जग्गू को देखते ही अनुराधा फफक-फफककर रो उठी।

"अरे! यह तो रोये ही जा रही है!"—जग्गू ने अपनी परेशानी छिपाने के लिए कृत्रिम हँसी मे हँसते हुए कहा—"कुछ बोलोगी भी या रोती ही जाओगी ?"

"यह नाटक करती है नाटक! कलमुँही, माँ-बाप-भर्तार को खाकर भी भूख से छिछियाती फिरती है। आग लगे ऐसी जवानी मे!"—दरवाजे के बाहर खडी रूपन-बहू ने अपने हाथ झमकाकर घृणा के स्वर मे कहा। स्थिति समझते ही जग्गू उस औरत पर चीख उठा—"चुप रहोगी या नही ?

कौन बुलाने गया था तुम लोगो को ? चली जाओ सबकी सब नही तो ठीक नही होगा !"

औरतो की घुस-फुस बन्द हो गयी। जग्गू की आकृति और उसकी गर्जना सुनकर सभी औरते सहम गयी लेकिन गाॅव की ईर्ष्यालु औरतो से ही शायद प्राचीन नाटको मे स्वगत भाषण की परम्परा आयी है। वे औरते जोर-जोर से अपने-आप भद्दी-भद्दी गालियाॅ बकती हुई बाहर निकल गयी।

कुछ देर के लिए घर मे सन्नाटा छा गया। अनुराधा अभी तक सिर झुकाये बैठी थी। जग्गू का क्रोध पूरी तरह प्रकट नही हुआ था। ऐसे मौको पर सरल व्यक्ति का क्रोध स्वजन पर तीव्रता से प्रकट होता है। जग्गू ने अनुराधा से आक्रोशपूर्ण स्वर मे कहा--

"इसीलिए कहता था कि यहाॅ से चली चलो। यह गाँव अब रहने योग्य नही है। लेकिन तुम सुनो तब तो। तुम्हे तो मेरी बेइज्जती ही भाती है। यह तीसरा मौका है कि तुम्हारे चलते मुझे बेआबरू होना पडा है।"

अनुराधा ने कातर दृष्टि से जग्गू को देखा। जग्गू उस दृष्टि को देखकर मन-ही-मन पसीज उठा। उसे अपने अंतिम वाक्य पर आप ग्लानि हुई लेकिन ऊपर से वह ज्यो-का-त्यो कठोर बना हुआ बोला--

"मुँह क्या ताक रही हो ? अभी भी इस गाॅव को छोडने के लिए तैयार हो या नही ?"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"तो ठीक है, शारदा के स्वस्थ होते ही हम लोग यहाँ से चल देगे। यह गाॅव अब गाॅव नही रहा, उचक्को और गिद्धो का अड्डा बन गया है।"

अनुराधा की स्वीकृति से जग्गू को राहत मिली। लेकिन उसके मन के भीतर कही कुछ खलबली मच उठी, अज्ञात वेदना के बादल से उसका भविष्य आच्छादित हो उठा और न जाने क्यो आगत, अदृश्य घटनाओ के धुँधले सकेतो से वह आशकाओ से भर गया। लेकिन ऊपर-ऊपर से सुदृढ और क्रुद्ध आकृति लिए घर के बाहर निकल आया। अनायास ही उसके पैर गुमटी की ओर बढ गये।

तीसरा पहर बीत चुका था। हवा का नामोनिशान भी नही था। मन को उबा देनेवाली ऊमस से मौसम बेजान हो रहा था। जग्गू अनमने भाव से भावो के तूफान मे बहा चला जा रहा था कि गोपाल की आवाज सुन चौक उठा—

"क्यो जग्गू चाचा, आप भी मेरी कमाई नही देख सके ?"

"क्या मतलब ?"—जग्गू चौंककर रुकता हुआ बोला—"तुम्हारी कमाई से मुझे क्या लेना-देना है ?"

"यही तो आश्चर्य की बात है।" गोपाल अपने दोनो हाथ अपने वक्ष-स्थल पर बॉधता हुआ चुनौती की मुद्रा मे बोला। जग्गू व्यग्य से हँसता हुआ बोला—

"तुम्हे आजकल कोई जवान पहलवान लडने को नही मिलता क्या ज़ो मुझसे रगड लेने आये ?"

"आपसे ज्यादा जवानी इस गाँव मे और किसमे मिलेगी ?"

"बकवास बन्द करो, गोपाल !"

"अरे रे रे आप तो नाराज हुए जा रहे है। मै तो आपकी तारीफ कर रहा था। खैर, छोडिये इन बातो को। आपने अपने बूते-भर तो कोशिश कर ही ली कि मुझ पर माटी-कटाई का गलत माप देने के जुर्म मे मुकदमा चल जाये। लेकिन गोपाल उतना बुद्धू नही है जितना आपने समझ लिया था। उल्टे आपके रामपाल साहब ही यहाँ से दफा हो गये। अब यह बताइए कि मिठाई कब खिला रहे है ?" गोपाल की बाते सुनकर और उसके ढग पर जग्गू क्रोध से तिलमिला उठा। उसकी समझ मे नही आया कि वह क्या कहे और क्या करे ! एक अदना-सा लौडा उसे अपमानित करता जा रहा था और वह बेबस जैसा टुकुर-टुकुर मुँह देख रहा था। उसकी सहनशीलता को गोपाल कायरता और दुर्बलता समझकर बोलता रहा—

"आपके घर मे तो, सुना, रोज जल्सा होता रहता है। लेकिन ऐसे मौको पर आप अपने भतीजे को ही भूल जाते है !"

"यह सब क्या बक रहे हो गोपाल ? तुम्हे हो क्या गया है ?"

"उसे क्या होगा ? तुम्हारे सिर पर काल नाच रहा है जो गाँव की नाक कटाने पर तुले हो।"—रूपनसिह ने आते ही तीर छोडा।

"गाँव की नाक कटने से पहले इनकी नाक काट ली जायेगी।" गोपाल ने रूपनसिह की बात पर अपनी बात जड दी। जग्गू को वस्तुस्थिति समझते देर नही लगी। लेकिन वह अपनी मान्यता, अपने विचार और अपनी प्रेम-भावना का इतना कायल था कि उन लोगो की बाते उसे अनर्गल, अनैतिक और अपमानजनक लगी। प्रेम की तीव्रता मनुष्य को जागरूक बना देती है। जग्गू क्रोध और प्रतिकार से अभिभूत होता हुआ भी परिस्थिति के प्रति चेतन बना रहा। उसने सहज स्वर मे कहा—

"यदि तुम्हे अपनी नाक की इतनी चिता है तो कौओ से सावधान रहो।"

"मै तो कौओ के पख ही काट देनेवाला हूँ।"—गोपाल ने दम्भ से भरकर कहा।

"इतना अहकार तुम्हे शोभा नही देता गोपाल! लेकिन तुम भी क्या करोगे! समय, सगति और रुपया आदमी को पागल बना ही देता है। इसलिए मुझे कुछ नही कहना है। तुम्हे जो मन मे आए, करो।" यह कहकर जग्गू गुमटी की ओर जाने लगा कि गोपाल उसके सामने आ खडा हुआ और बोला—

"जान छुडाकर आप भागना चाहते है सो भागने नही दूँगा। अब तक मै आपका लिहाज करता आया लेकिन आपने हम लोगो की अच्छाई का नाजायज फायदा उठाया। गाँववाले आपको ठीक ही गुप्त गुडा कहते है।"

"तो तुम भी कहो। कौन किसे रोकने जाता है।"—जग्गू ने विषादपूर्ण हँसी हँसकर कहा। जग्गू के धीरज ने गोपाल के दम्भ को और अधिक उभार दिया। वह अकडकर बोला—

"लेकिन मै कहने-सुनने मे विश्वास नही करता। मै तो जय या क्षय मे विश्वास करता हूँ। आप अपनी गुडागर्दी बन्द कीजिए।"

"मैं क्या गुडागर्दी करता हूँ! मेरी बाते किसी से छिपी नही है। मै किसी के यहाँ डाका डालने नही जाता, बेईमानी नही करता, किसी को सताता नही—क्या ये सब बाते नही करना गुडागर्दी है ? तुम होनहार

नौजवान हो, पढे-लिखे हो और साफ आदमी हो इसीलिए मै तुमसे दो बाते भी कर रहा हूँ। जानता हूँ कि बिसेसरसिह जैसे लोगो ने तुम्हे पथ-भ्रष्ट कर दिया है। लेकिन तुम्हे अपना विवेक नही खोना चाहिए।"

"अपना उपदेश अपने पास ही रखिए।"—गोपाल चिढकर बोला।

"अच्छी बात है।"—जग्गू फिर जाने को तैयार हुआ कि गोपाल ने तमककर कहा—

"आपने मेरे सवाल का जवाब नही दिया।"

"किस सवाल का ?"

"अरे बनो मत जग्गू! गाँव को कटरा बना रखा है और ऊपर से पूछते हो किस सवाल का ?"—रूपनसिह ने व्यग्य से कर्कश स्वर मे मुँह टेढा कर कहा। तभी गोपाल भी उसकी हाँ-मे-हाँ मिलाता हुआ बोला—

"आप अनुराधा और शारदा से अपने सारे सम्बन्ध तोड लीजिए।"

"यह असभव है। अनुराधा मेरी पत्नी है और शारदा मेरी बहन। यह बात मै किसी के सामने भी कह सकता हूँ। साँच को आँच क्या ?"

"यह सब अनाचार इस गाँव मे नही चलेगा।"—गोपाल ने कहा। जग्गू का धीरज जाता रहा। वह फुत्कार कर उठा—

"तो गाँववालो से कह दो कि मै उनका दिया नही खाता। और तुम जो अपनी पहलवानी के घमड मे चूर होकर मेरा रास्ता रोकने आये हो सो क्या मुझे दूध-पीता बच्चा समझ लिया है ? तुम्हारे जैसे दो-चार लौडे अभी भी मेरी भुजा मे लटक जाये—फिर भी कुछ बनने-बिगडने को नही है।" यह कहकर जग्गू अचानक ही बाये हाथ से गोपाल को एक ओर धकेलकर गुमटी की ओर बढ गया। गोपाल ने ऐसी स्थिति की कल्पना भी नही की थी सो जग्गू के हाथ का झटका लगते ही वह लडखडाकर दूर पुल पर जा गिरा। उसके सिर से रक्त की धारा फूट पडी। रूपनसिह घबराकर चीखने-चिल्लाने लगे। लेकिन गोपाल शर्म के मारे अपना प्रतिकार लेना भूल गया। 'गाँववाले जब सुनेगे कि जग्गू ने गोपाल को एक ही झटके मे चित्त कर दिया तब वह कौन-सा मुँह दिखायेगा'—यह सोचकर गोपाल ने रूपनसिंह

को शोरगुल करने से मना कर दिया और थोडी देर तक वह वही पुल पर बैठकर साँस लेने लगा।

जग्गू गुमटी पर न जाकर, स्टेशन पर मुनिदेव की दुकान पर पहुँचा। मुनिदेव जैसे उसी की प्रतीक्षा कर रहा था, देखते ही बोल उठा—

"आओ यार, तुमने तो पूरे गॉव मे धूम मचा रखी है। कहाँ तो जिन्दगी-भर ऐसे अलग-अलग रहे कि लोग महीनो-वर्षों तक तुम्हारा नाम भी भूले रहते थे और अब तुमने ऐसा पल्टा लिया है कि गॉव के बच्चो तक की जुबान पर तुम्हारा ही नाम टँका होता है। आओ, बैठो।"

"इसी को दुर्गति कहते हैं मुनिदेव! पहले मै हैरानी से हर चीज को देखता था और अब निश्चितता से देखता हूँ।"—जग्गू ने किंचित् व्यंग्यात्मक मुस्कराहट के साथ कहा। शायद अपने झूठ पर ही वह मुस्करा रहा था। मुनिदेव इन बुझौवलो से हमेशा दूर ही रहना चाहता। उसने चट पूछ लिया—

"सुना, रात अनुराधा तुम्हारे यहाँ आई थी ?"

"क्यो, यह नही सुना कि शारदा का शिशु जनमते ही मर गया ?"

"नही, ऐसा तो नही सुना। हाँ, लोग यह जरूर कह रहे थे कि शारदा ने अपना गर्भ नष्ट करा दिया।" यह सुनते ही जग्गू के दाँत कटकटा उठे। दबे क्रोध के अतिरेक से उसकी आँखे छोटी हो आयी। मुनिदेव ने वातावरण की गम्भीरता को टालने के विचार से कहा—

"मारो गोली इन गाँववालो को! ये साले ऐसे ही बक-बक करते रहते हैं। वह देखो, बिसेसरसिंह आ रहा है।" दोनों मित्र इधर-उधर की बाते करने लगे। बिसेसरसिंह ने आते ही मधुर स्वर मे पूछा—

"आजकल कहाँ रहते हो जग्गू भाई कि तुम्हे देखने को मै तरस जाता हूँ।" ठीक उसी समय राघव भी कही से आ धमका और छूटते ही बोल उठा—

"बात यह है बिसेसर बाबू कि आप अपनी धुन मे लगे रहते है और हमारे जग्गू भाई अपनी धुन मे। दोनो मे से किस को फुर्सत है कि एक-दूसरे की खोज-खबर ले। यह सब काम तो हम जैसे लोगो के कन्धे पर है।"

"ठीक कहते हो राघव। तुम ठहरे आजाद आदमी और हम लोग ठहरे गृहस्थ। बीस तरह के झंझट हमारे सामने खडे रहते है।" बिसेसरसिंह सहज स्वर मे बोले लेकिन उनकी आकृति और मुद्रा की अत्यधिक गम्भीरता, उनके मन मे छिपी घृणा का सकेत दे रही थी।

"जी हाँ, आपको बीस तरह के काम तो होते ही है—एक-से-एक मुश्किल और एक-से-एक महान काम!" जग्गू ने व्यग्य से कहा। मुनिदेव अपनी आदत के अनुसार झल्ला उठा—

"फिर तुमने बकवास शुरू कर दी?"

"अरे बोलने दो भाई। इसे भी अपनी भडास निकाल लेने दो। मेरा क्या बिगड़ता है।" बिसेसरसिंह ने हँसते हुए कहा। जग्गू सोच रहा था कि जहाँ वह जाता है, कोई-न-कोई झंझट उठ खडा होता है। राघव ने मुनिदेव को निमित्त मात्र बनाकर कहा—

"तुम बहुत ही ओछे आदमी हो इसीलिए बात-बात पर झल्ला उठते हो। जरा बडे-बड़े नेताओ के साथ घूमो-फिरो, उनसे नाता-रिश्ता बैठाओ, फिर बात करने का ढग सीखोगे।"

जग्गू इन लोगो की बातचीत सुनकर भी कुछ नही सुन रहा था। उसका ध्यान कही और था। देर तक राघव व्यर्थ ही बिसेसरसिंह और मुनिदेव से उलझता रहा। अन्त मे मुनिदेव राघव को अपनी दुकान से निकाल बाहर करने मे सफल हुआ। बिसेसरसिंह की जान मे जान आयी लेकिन ऊपर से स्थितप्रज्ञ बनने का स्वाँग करते हुए बोले—

"पागल है।" फिर जग्गू की ओर रुख करके बोले—

"कुछ सामान खरीदने आया था सो इस झमेले मे भूल ही गया। तुम तो अभी यहाँ बैठोगे?"

"हाँ।"

"तो बस मैं आता हूँ। फिर साथ चलेगे।"

बिसेसरसिंह के चले जाने पर जग्गू ने मुनिदेव को उस दिन की सारी बाते बता दी और यह भी बता दिया कि अब वह गाँव छोडकर जल्दी ही

चला जायेगा। मुनिदेव ने बहुत समझाया-बुझाया लेकिन जग्गू अटल बना रहा। निदान, मुनिदेव ने पूछा—

"कहाँ जाने का इरादा किया है ?"

"पता नही।"

"शारदा का क्या करोगे ?"

"उसे उसके घर पहुँचा दूंगा।"

"और खाओगे क्या ?"

"यहाँ की सारी जमीन जायदाद बेच दूंगा और उसी पूँजी से कही छोटी-सी दुकान खोल लूंगा। कुछ न हुआ तो दरबान की नौकरी तो मिल ही जायेगी।"

· तभी बिसेसरसिंह आ गये। जग्गू ने न जाने क्यो, किंचित् सहमते हुए कहा—

"बिसेसर बाबू, आप मेरा एक उपकार करेंगे ?"

"आज्ञा करो।" बिसेसरसिह ने तपाक से कहा। जग्गू क्षण-भर कुछ सोचता रहा। फिर बोला—

"मै अपना घर और जमीन बेचना चाहता हूँ।"

"क्यो, क्यो ? क्या बात हुई ?"

"यो ही। सोचता हूँ," तभी मुनिदेव ने आँखो से सकेत किया। जग्गू तथ्य छिपाता हुआ बोला—

"सोचता हूँ पता नही कब क्या हो जाये। मेरे पीछे उसे भोगनेवाला तो कोई है नही। इसलिए क्यो न अभी से छुट्टी पा लूँ। रुपया हाथ आयेगा तो जरा तीर्थो का भी चक्कर लगा आऊँगा।"

"ठीक है, जब कहोगे तभी हो जायेगा।" बिसेसरसिह ने तपाक से कहा लेकिन उनकी मुद्रा से प्रकट हो रहा था कि वह किसी विचार मे पड़ गये हैं।

रात हो आयी। बाजार मे लालटेन, पेट्रोमेक्स और दिये जल उठे। थोडी चहलपहल बढ गयी। आस-पास के गाँव के कुछ छोटे रईस पान-पत्ती के लिए या यो ही चकल्लस के लिए बाजार में इधर-उधर नजर आने लगे।

बिसेसरसिह जा चुके थे। मुनिदेव ने मुस्कराते हुए पूछा—

"आज हो जाये ताडी की एकाध गोली।"

जग्गू का हृदय रो रहा था। वह राहत ढूँढ रहा था। द्वन्द्व से उसका मस्तिष्क फटा जा रहा था। व्यक्षोभ मे मनुष्य प्राय भोगवादी बन जाता है, क्योकि व्यक्षोभ मानसिक शक्ति की अतिम प्रक्रिया है या यो कहिए कि बुद्धि की विफलता का स्पष्ट सकेत है। ऐसी दशा मे बडे-बडे सम्बुद्ध भी ढीले पड जाते है। जग्गू सम्भावित सघर्ष के निमित्त अपने को सशक्त बनाना चाहता था लेकिन उसका मन, उसकी बुद्धि और उसका सस्कार उसे हिला रहा था। मुनिदेव का प्रस्ताव अनुचित होते हुए भी जग्गू को स्वीकार कर लेने की इच्छा हुई और उसने 'हाँ' भी कर दी।

दस बजे की गाडी का सिगनल डाउन हो चुका था। मुनिदेव और जग्गू प्लेटफार्म पर चक्कर काट रहे थे। जग्गू ताडी के नशे मे झूमता हुआ चल रहा था। उसे मौसम अच्छा लग रहा था। कुछ देर तक तो वह मुनिदेव के सामने रोया भी लेकिन फिर उसमे उत्साह और उमग व्याप गया; और एक नयी स्फूर्ति और नयी उमंग लेकर वह मुनिदेव के साथ खुलकर बाते करता हुआ घूमता रहा। उस दिन उसके सामने से एक नया पर्दा उठ गया, एक नया दृश्य पनपता दीख पडा। गाडी स्टेशन पर आकर लगी ही थी कि मुनिदेव ने कहा—

"वह देखो मुनेसरा फस्ट-क्लास डिब्बे से एक बक्सा लेकर उतर रहा है। साला चारों ओर उचक-उचककर देख कैसे रहा है? निश्चय ही वह किसी पसिजर का बक्सा मारकर भागना चाहता है।" मुनिदेव की बात पूरी ही हुई थी कि गाडी पूर्णतया रुक गयी और मुनेश्वर बडे इतमीनान से चमडे का बक्सा हाथ मे लटकाए स्टेशन के दरवाजे से न होकर, उस ओर बढा जिस ओर देसौरा गाँव की गुमटी पडती थी। जग्गू ने लपककर बक्सा-सहित उसकी कलाई पकड ली। ठीक उसी समय फस्ट क्लास डिब्बे से एक नेतानुमा बाबू चिल्लाता हुआ निकला और जग्गू की तरफ दौडा। जग्गू ने उस बाबू की ओर देखा ही था कि मुनेश्वर राघव से अपनी कलाई छडाकर

भाग खडा हुआ। बक्सा जग्गू के हाथ मे रह गया। जग्गू और मुनिदेव मुनेश्वर को पकडने के लिए दौडे तब तक वह नेतानुमा बाबू 'चोर-चोर' चिल्लाता हुआ वहाँ आ पहुँचा। लोगो ने जग्गू को ही चोर समझकर पकड लिया। मुनेश्वर तब तक प्लेटफार्म के परे अधकार मे विलीन हो चुका था जग्गू ने लाख समझाने की कोशिश की लेकिन शोरगुल के बीच उसकी सफाई उसी के विरुद्ध सबूत बन गयी।

गाडी स्टेशन पर रोक दी गयी। जग्गू को पकडनेवालो की गवाही ली गयी, स्टेशन मास्टर की गवाही ली गयी, फर्स्ट-क्लास के बाबू का बयान लिया गया और गाडी के साथ चलनेवाली रेलवे पुलिस ने जग्गू के हाथ मे हथकडी डालकर अपने साथ ही गाडी मे बैठा लिया। जग्गू लाख सफाई देता रह गया कि उसने चोरी नही की है। लेकिन किसी ने उसकी बात नही सुनी। अचानक ही यह सारी घटना घट गयी। क्या से क्या हो गया!

दस बजे की गाडी स्टेशन से चल पडी——खटखटाती-छकछकाती। जग्गू खामोश होकर बैठा रहा और खिडकी से बाहर, अधकार मे, देखता रहा—गहरा काला धब्बा, नीला, कही-कही दूर पर हलकी रोशनी, छोटा क्षणिक धब्बा—तेजी से गुजरता रहा और जग्गू उन्हे एकटक देखता रहा। बीच-बीच मे इजिन चीख पडता—भयावने ढग से—लेकिन जग्गू अधकार मे देखना बन्द नही करता। थोडी-थोडी देर पर हडाक् से कोई गुमटी, अधकार के ठोस टुकडे की तरह, नजर से निकल भागती। जग्गू फिर भी अन्धकार मे देखता रह जाता।

२२

जग्गू को छ: महीने की सख्त सजा हो गयी। मुजफ्फरपुर जेल, शहर के बाहर स्थित थी। जग्गू उसी जेल मे बन्द कर दिया गया। उसकी चेतना जाती रही। जो कुछ करने को उससे कहा जाता, चुपचाप उस काम मे वह जुट जाता। एक भयकर डाकू सभी कैदियो का 'मेट' था। उसी के जिम्मे निरीक्षण का कार्य सुपुर्द था। सभी कैदी उससे भय खाते, उसकी खुशामद करते और उसकी सेवा मे जुटे रहते। जग्गू भी उसके अधीन था। लेकिन जग्गू ने कभी महसूस भी नही किया कि वह 'मेट' भयकर है, बदमाश है या डाकू है। वह चुपचाप अपने काम मे जुटा रहता। जग्गू थोडा पढा-लिखा था इसलिए सभी कैदी उसकी इज्जत करते, उसे मौनी बाबू कहकर पुकारते। जग्गू इस तथ्य से भी अनभिज्ञ-सा रहता। वह कभी-कभी अखबारो मे पढ लेता कि देश मे क्या कुछ हो रहा है—गाँवो के सुधार के लिए स्कूल खोले जा रहे है, स्कूलो को बुनियादी स्कूल मे बदला जा रहा है, बाँध बनाया जा रहा है, नदियाँ बाँधी जा रही है, सडकें पक्की की जा रही है, गाँवो मे बिजली उपलब्ध की जा रही है और तब जग्गू के मस्तिष्क मे, उसकी पुरानी छोटी-सी गुमटी उभर आती वैसी ही नीरस, उदास, जड और एकाकी ! जग्गू स्पष्ट देखता कि गुमटी ज्यो-की-त्यो है, रेल की पटरी वैसी ही बनी है और उस गुमटी के आस-पास के तमाम लोग भी तन-मन से वैसे ही है जैसे पहले थे ·

और जब अनुराधा या शारदा की याद आती तब उसका सिर चक्कर खाने लगता, उन लोगो की स्थिति की कल्पना करते ही जग्गू की आँखो के आगे अँधेरा छा जाता। एक-से-एक भयकर, वीभत्स और हृदय-विदारक श्य अनचाहे ही उभरकर सामने स्पष्ट हो उठते और फिर अधकार

तिरोहित हो जाते।

साढे पाँच महीने बाद ही जग्गू जेल से रिहा कर दिया गया। जेल के बाहर निकलते ही जग्गू को ऐसा लगा जैसे अब वह सचमुच ही निहग हो गया। फिर भी, जाने क्यो, वह सीधा स्टेशन आया और वहाँ से अपने गाँव का टिकट कटाकर गाडी मे बैठ गया। भयावह तस्वीरो और विचारो से जूझने मे ही उसका रास्ता कट गया।

सयोग ऐसा कि मुनिदेव प्लेटफार्म पर ही खडा था। नजर उस पर जा पडी। दोनो का मिलन भी अजीब ढग से हुआ। मुनिदेव दु ख, ग्लानि और हर्ष के अतिरेक से घुटा जा रहा था तो जग्गू आशकाओ और जिज्ञासा के ऊफान से बेचैन हो रहा था। दोनो ने एक-दूसरे से कोई विशेष बात नही की। स्टेशन के बाहर आकर जग्गू ने देखा कि बाजार मे दो-तीन हैण्ड-पाइप लग गये थे, सडक पक्की बन गयी थी और सडक के एक ओर बिजली के खम्भे गाडे जा रहे थे। मुनिदेव ने जान-बूझकर विहँसते हुए कहा—

"इधर इस इलाके मे काफी काम हुआ है। अब तो यहाँ बिजली भी आ जायेगी। कुछ गाँवो का तो नक्शा ही बदल गया है।" जग्गू ने वेदना-मिश्रित मुस्कान से मुनिदेव को देखा जैसे पूछना चाह रहा हो कि तन का हालचाल रहने दो, मन का हालचाल क्या है? लेकिन जग्गू कुछ बोला नही। बाजार मे कई जान-पहचानवाले मिले। जग्गू सबो से विहँसकर मिला। सबों को वह वेदनायुक्त प्रश्नवाचक दृष्टि से देखता—बोलता या पूछता कुछ नही।

आखिर मुनिदेव ने ही बात छेड़ दी।

"अच्छा किया जो जमीन-जायदाद नही बेची। अब तुम खेती-गृहस्थी मे जुट जाओ।" जग्गू ने मुनिदेव की ओर कातर दृष्टि से देखा। मुनिदेव उस दृष्टि को सह नही सका और उसने आँखे नीची करते हुए कहा—

"जो होना था सो हो चुका।"

"क्या हो चुका?" जग्गू ने कृत्रिम गम्भीरता से पूछा। मुनिदेव किंचित् सकपकाकर बोला—

"यही नौकरी छूटने की बात कह रहा हूँ।"

"शारदा कहाँ है ?"—यह प्रश्न सुनते ही मुनिदेव घबरा उठा और अपनी घबराहट छिपाने के उद्यम मे वह उपेक्षा से बोला—

"शारदा ? वह अपने किये का फल भोग रही है।"

"क्या मतलब ?"

"भई, बात यह हुई कि "

"अरे जगदेव बाबू !" मुनिदेव अभी असमजस मे ही पडा हुआ था कि राघव आ पहुँचा—"कब आये ? खबर भी नही दी ?" राघव उल्लास-पूर्वक जग्गू के दोनो कधो को पकडकर झकझोरता हुआ बोला। कोई और अवसर होता तो मुनिदेव झल्ला उठता लेकिन उस समय राघव का आना मुनिदेव को देवदूत के आने जैसा लगा।

"सजा पूरी हो गयी तो चला आया।"—जग्गू ने हँसकर कहा लेकिन उसकी हँसी मे वेदना सजीव हो उठी थी।

"कैसी सजा ? गलत बात। मै जानता हूँ कि चोरी किसने की। लेकिन अफसोस, मेरी किस्मत मे हाथ मलने के सिवा और कुछ नही। दिन-दहाडे यहाँ लूट और हत्याकाड मची हुई है लेकिन कोई देखनेवाला नही। तुम समझते होगे कि गुरुजी के घर मे अपने-आप आग लग गयी। लेकिन वह सही नही है। अनुराधा को जलाकर मार डालने के लिए लोगो ने आग लगा दी और अनुराधा बेचारी उसमे तडप-तडपकर मर गयी। यह क्या आदमी का काम है ? अरे ये गाँववाले आदमी नही—जानवर है जानवर ! बल्कि जानवर से इनकी तुलना करके जानवर को अपमानित करना है। यह तो खैरियत हुई कि शारदा यहाँ से भाग निकली नही तो ' " राघव ने अपनी बात पूरी भी नही की थी कि जग्गू चुपचाप उठ खडा हुआ। उसके चेहरे पर कोई भाव नही था, आँखे स्थिर थी, होठ खुले हुए थे और अग-प्रत्यग अर्धशिथिल से हो रहे थे। मुनिदेव घबरा उठा। उसने दाँत पीसकर राघव की ओर देखा और फिर जग्गू की बाँह पकडकर बोला—

"कहाँ जा रहे हो ? बैठो न।"

"कही नही जा रहा हूँ। यही हूँ। जाऊँगा कहाँ ?" स्वप्नवत स्वर मे जग्गू बोला और दुकान से बाहर निकल आया।

शाम हो चुकी थी। बिजली के खभे जमीन मे निष्प्राण गडे थे जो बडे मनहूस से लग रहे थे।

इसके बाद बहुत दिनो तक· न जाने किस उम्मीद मे

जग्गू दिन-भर, स्कूल के अहाते मे बैठकर, बच्चो को देखा करता। उन्हे खेलते-कूदते, पढते-लिखते देखकर जग्गू को, न जाने क्यो एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती। उन्हे देख-देखकर सब-कुछ भूल जाता—गुमटी, गुमटी मे घटित घटनाएँ, सद्य स्नाता शारदा के रूप, यहाँ तक कि अपना अस्तित्व भी और यदि कभी कोई बच्चा या बच्ची उसके पास चली आती तो वह महसूस करता कि जैसे भगवान ही उसके पास चले आये हो। वह विभोर होकर उन लोगो से व्यर्थ की बाते करता, उनके साथ हँसता-बोलता और बीच-बीच मे उन लोगो से रूठ जाने का भी अभिनय करता। बच्चे तालियाँ बजा-बजाकर नाच उठते तो वह भी हँसने लगता · उसके घर मे, जहाँ शारदा बैठा करती थी, वहाँ वह घटो बैठा रह जाता, उसमे थोडा भी साहस नही था कि शारदा के बाबत कुछ सोच-विचार करे—बस वह प्रतीक्षा मे डूबा रहा।

शाम होते ही वह, गुमटी के निकट, सडक के पुल पर बैठ जाता और वही से घटो गुमटी को निरुद्देश्य निहारा करता। गाडियाँ आती, चली जाती, रोशनी के छोटे-बडे टुकडे बिजली की गति से उसके सामने से गुजर जाते, खट्-खटाक्, खट्-खटाक् की भयंकर लय जमीन को कँपाती हुई आती और क्षण-भर मे दूर अन्धकार की असीमता में खो जाती। लेकिन छोटी-सी गुमटी ज्यो-की-त्यो गुम-सुम खडी रहती। अनुराधा की सरलता और सवेदनशीलता मूर्तिमान हो उठती। जग्गू उसे देखकर तादात्म्य-भाव मे विभोर हो उठता। कभी-कभी तो अकारण ही, उसकी आँखो से, आँसू की धार बँध जाती। गुमटी की तस्वीर, विकृत होकर, काँपने लगती। मूर्तियाँ डोलने लगती—जैसे अभी बोलेगी। जग्गू की आँखे बन्द हो जाती, उसके

ओठ काँपने लगते। आस्था और आशा की आभा से जग्गू पुलकित हो उठता।

गाँववाले उसे पागल कहते। बिसेसरसिंह के शब्दो मे वह 'बेचारा' था। लेकिन जग्गू के लिए इन बातो का कोई अर्थ नही था। गुरुजी के घर की माटी की दीवारे रक्तिम और छिन्न-भिन्न हो गयी थी। उनमे जगह-जगह दूब उग आयी थी। रात को अधेरे को भेदती हुई किसी की स्वर-लहरी हवा मे काँप उठती—

जेहि बाटे कृष्णऽऽऽ गइले ‥ ....
दूबियो जनमी गइले, आहो—आहो कीऽऽऽऽऽ
सेही देखी जियरा मोरा फाटे रेनकी ....

और तब जग्गू की आँखो से आँसुओ की धारा प्रवाहित होने लगती।